श्रीनीलकण्ठचतुर्धरकृतं

।। मन्त्ररामायणम् ।।

(स्वोपज्ञमन्त्ररहस्यप्रकाशिकाव्याख्यायुतम्)

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक
डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी
उपाचार्य, संस्कृत-विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान
लखनऊ

श्रीनीलकण्ठचतुर्धरकृतं

॥ मन्त्ररामायणम् ॥

(स्वोपज्ञमन्त्ररहस्यप्रकाशिकाव्याख्यायुतम्)

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक
डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी
उपाचार्य, संस्कृत-विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-संस्थानम्
लखनऊ

विषयानुक्रम

आत्मनिवेदन

परमश्रद्धेय पद्मभूषण आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय के आदेश से , मैं, उत्तर प्रदेश संस्कृत-संस्थान के लिए, श्रीनीलकण्ठचतुर्धर द्वारा सङ्कलित और 'मन्त्ररहस्यप्रकाशिका' नामक स्वोपज्ञ संस्कृत व्याख्या से संवलित 'मन्त्ररामायण' का हिनदी-अनुवाद करने में प्रवृत्त हुआ। इस कार्य के लिए आचार्य जी के निजी पुस्तकालय में सुरक्षित वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई से बहुत समय पहले मुद्रित इस ग्रन्थ की छाया-प्रति उपलब्ध करायी गयी, जिसमें मूल के अतिरिक्त कुछ भी न था। जब मैंने कार्य के स्वरूप पर विचार किया तो मुझ अल्पज्ञ के लिए यह कार्य दुरूह ही प्रतीत हुआ। कार्य की सफलता कें लिए मैंने श्री वेदभगवान् और श्रीसीताराम को सिर नवाया तथा श्रद्धा-सम्बल लिए जा पहुंचा ज्ञानियों में अग्रगण्य भक्तशिरोमणि श्रीहनुमान् की शरण में।

सर्वप्रथम मैंने ऋग्वेंदमन्त्रानुक्रमणी से मन्त्ररामायण के सभी मन्त्रों का सन्दर्भ ढूँढ़ा। दो मन्त्र ऋग्वेद में न मिले। बाद में उनमें से एक मन्त्र यजुर्वेद की वाजसनेयिसंहिता में प्राप्त हुआ और एक अन्ततः अप्राप्त ही रहा (मैं खोजने में असफल रहा)। अनुवाद कार्य प्रारम्भ हुआ। विषय को स्पष्ट करने की दृष्टि से यथावसर टिप्पणियों की योजना भी आरम्भ की। कार्य मन्थर गति से चल रहा था। इसी बीच, मैं प्रतिवर्ष की भाँति 'कालिदास-समारोह' में भाग लेने के लिए विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन गया। वहाँ संस्कृत-विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक डॉ. विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र 'विनय' से चर्चा में संयोगवश ज्ञात हुआ कि उनके निर्देशन में एक छात्र, नीलकण्ठचतुर्धरकृत 'मन्त्रभागवत' पर शोधकार्य कर रहा है। मैंने उन्हें बताया कि मैं नीलकण्ठकृत 'मन्त्ररामायण' का हिन्दी-अनुवाद कर रहा हूँ। तब उन्होंने कहा कि इसका एक हिन्दी-अनुवाद वाराणसी से ही प्रकाशित है। मैंने वापस वाराणसी आकर प्रयत्नपूर्वक प्राच्यप्रकाशन, वाराणसी से मुद्रित और श्रीरामकुमार राय द्वारा अनूदित 'मन्त्ररामायण' प्राप्त किया। इसके प्रारम्भ में डॉ. लक्ष्मीनारायण तिवारी द्वारा लिखित विस्तृत प्रस्तावना भी है, जो विषय की दृष्टि से उपयोगी है।

यह पुस्तक प्राप्त करके मैं जितना प्रसन्न हुआ था, उसका हिन्दी-अनुवाद देखकर उतना ही खिन्न भी हुआ। एक पश्चात्ताप भी हुआ। यदि यह पुस्तक पहले मिल गयी होती मुझे मन्त्रों का सन्दर्भ खोजने में समय और श्रम न गंवाना पड़ता। अस्तु, मैंने नीलकण्ठकृत संस्कृत व्याख्या साथ हिन्दी अनुवाद मिलाते हुए पूरी पुस्तक पढ़ डाली और निःसन्देह इससे मुझे लाभ भी हुआ किन्तु निराशा भी हुई; क्योंकि अनुवादक महोदय ने जो हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया है, उसमें अनेकत्र मन्त्र और संस्कृत-व्याख्या से विसङ्गतियाँ हैं। कहीं-कहीं तो हिन्दी अनुवाद मन्त्र से असम्बद्ध ही परिलक्षित होता है। यह सब देखकर मुझें लगा कि 'मन्त्ररामायण' के हिन्दी-अनुवाद का मेरा श्रम व्यर्थ नहीं होगा।

'मन्त्ररामायण' के माध्यम से रामकथा की वैदिकता सिद्ध करने के लिए नीलकण्ठचतुर्धर ने जो अद्भुत अध्यवसायपूर्ण श्रम किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है; किन्तु मेरी दृष्टि में उनके विवेक पर उनका हठ भारी पड़ा है। उन्होंने ऋग्वेद के विभिन्न सूक्तों से मन्त्रों को लेकर उनका स्वाभीष्ट अर्थ, जिस प्रकार निकाला है, उसके विषय में मैं अधिक कुछ न कहकर मात्र इतना ही कहूँगा-"कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा।"

'स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया'-न्यायानुसार, नीकण्ठ की इस अद्भुत कृति का हिन्दी-अनुवाद करने में मैं उत्साहपूर्वक लग गया। अपने जीविकाधर्म का निर्वाह करता हुआ, अन्य सारस्वतकार्यों को सम्पन्न करता हुआ तथा गार्हस्थ्यप्रपञ्चों में भी व्याप्त रहता हुआ, यथाशक्ति-यथामति मैंने यह अनुवाद कार्य पूरा किया। डरते-डरते इसमें प्रवृत्त हुआ था और वह डर अब भी बना हुआ है कि सुधी विज्ञ जन इसे देखकर क्या कहेंगे।

श्रीराम के अलौकिक अनुग्रह के बिना तो कुछ भी सम्भव नहीं। यह कार्य उन्हीं की भक्ति का प्रसाद है। उनके वरद हस्त की छाया मुझ पर बनी रहे-यही प्रार्थना है। मैं अत्यन्त सङ्कोचपूर्वक निवेदन करता हूँ-"त्वदीयं वस्तु हे राम! तुभ्यमेव समर्पये।" परमश्रद्धेय गुरुवर्य प्रो. अमरनाथ पाण्डेय (पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, म.गां.काशी विद्यापीठ, वाराणसी), परमश्रद्धेय ऋषिकल्प पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय (पूर्व अध्यक्ष, उ.प्र. संस्कृत-अकादमी) और परमश्रद्धेय डॉ. राजदेव मिश्र (पूर्वकुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि. वि. वाराणसी) के शुभाशीर्वादों से ही यह कार्य पूर्ण हुआ है। इन महानुभावों के श्रीचरणों में सादर प्रणामाञ्जलि निवेदन करता हूँ। इस कार्य में उदार सहयोग करने के लिए सम्मान्य डॉ. वामदेव मिश्र (प्रोफेसर-अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, म.गां. काशी विद्यापीठ, वारा.) के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। इस कार्य के लिए अवसर प्रदात्री श्रीमती अलका श्रीवास्तव डा. (निदेशक, उ.प्र. संस्कृत-संस्थान, लखनऊ) तथा प्रस्तुत मूलग्रन्थ की छायाप्रति उपलब्ध कराने के लिए डॉ. चन्द्रकान्त द्विवेदी (सहा. निदेशक, उ.प्र. संस्कृत-संस्थान) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्ततः उन सभी के प्रति विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ, जिनसे इस कार्य में किसी भी रूप में सहयोग प्राप्त हुआ।। इतिशम्।।

वाराणसी,
गणतन्त्रदिवस, २६ जनवरी, १९९८ ई.।

विदुषां वशंवद-
प्रभुनाथ द्विवेदी

प्रस्तावना

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणी कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

भारतीय समाज, साहित्य और संस्कृति को युगों-युगों से अनुप्राणित करने वाली रामकथा की अलौकिक महिमा को शब्द सीमा में बाँधना नितान्त असम्भव है। सभी वर्णों और सभी आश्रमों के लिए पुरुषार्थचतुष्टय की साधिका और मानव मात्र के लिए सञ्जीविनी रामनामामृतरसायन-परमपावन भक्तिसुधारसस्रोतस्विनी रामकथा अनिर्वचनीय परमपद प्राप्त कराने वाली है। रामकथा में निबद्ध आदर्श चरित्र और अनुकरणीय महनीय चरित केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु समस्त विश्व के लिए समान रूप से मङ्गलप्रद और कल्याणकारी हैं। मानवीय संवेदना के उत्स से आविर्भूत रामकथा समस्त मानवीय गुणों के उदात्तानुदात्त पक्षों से संवलित होकर मानव व्यवहार का दर्पण बनती है-'रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्।'

रामकथा में जिन चरित्रों का उपनिबन्धन हुआ है, वे चरित्र केवल अतीत की वस्तु नहीं है; अपितु आज भी हमारे समाज में अनुभूत तथा काम्य हैं। श्रीराम का आदर्शोज्ज्वल चरित्र मारे समाज में मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में अवतरित हुआ है। इस चरित्र की आज भी इतनी प्रतिष्ठा है कि राम-नाम के श्रवण-सङ्कीर्तन मात्र से जन्म-जन्मान्तर के पापपुञ्ज विगलित हो जाते हैं। सीता तो पतिव्रता स्त्रियों की आदर्शभूता हैं। यह रामकथा महर्षि आदिकवि के ही शब्दों में सीता का महनीय चरित ही है-'सीतायाश्चरितं महत्।' रामायाण में चित्रित भक्ति, भ्रातृप्रेम, वात्सल्य आदि ऐसे अमूल्य तत्त्व हैं, जिनका लवमात्र प्राप्त कर जीवन की कृतार्थता सिद्ध हो जाती है। यही कारण है कि सनातन धर्मों परिवारों में जीवन का कोई ऐसा क्षण नहीं है जो राममय न हो।

शाश्वत मूल्यों की सहज प्रतिष्ठा और उदात्त गुण-गौरव-ख्याति के कारण ही रामकथा देश और काल के बन्धन से निर्मुक्त होकर विश्वसाहित्य में छा गयी है। जब हम भारत समेत दक्षिण पूर्व एशिया तथा संसार के अन्य देशों की विभिन्न भाषाओं में विरचित और प्रचलित रामकथा को देखते हैं, तो गोस्वामी तुलसीदास की मान्यता-'रामायन सत कोटि अपारा'-में कहीं भी अतिशयोक्ति की प्रतीति नहीं होती। इस विषय पर अनेक विद्वानों और अनुसन्धाताओं ने व्यापक गवेषणापूर्ण मौलिक कार्य करके विपुल रामायण-साहित्य का उद्घाटन किया है।

वर्तमानकाल में रामकथा सम्बन्धी जितना और जो भी साहित्य प्राप्त होता है, उसका उपजीव्य आदिकवि महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' माना जाता है। यह केवल रामकथा

का वर्णन करने वाला धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं है;अपितु यह अनुपम काव्य वैशिष्ट्य से मण्डित 'महाकाव्य' है जिसमे चौबीस हजार श्लोक हैं। यह प्राणिमात्र के कल्याण के लिए जीवन के विविध पक्षों को उपकृत करने वाली शास्त्रीय एवं व्यावहारिक सामग्रियों से समृद्ध आकर ग्रन्थ है जिसमें रामकथा माला में पिरोई गई भास्वर मणियाँ जीवन पथ को सतत आलोकित करती हैं।

भारतीय सनातन परम्परा में रामायण-महाभारत-पुराणादि का प्रामाण्य उनकी वेदमूलकता के कारण ही है। यह परम्परा इन सभी को वेदार्थविस्तारक के रूप में मान्यता प्रदान करती है अर्थात् ये सब वेदतत्त्व का व्याख्यान करते हैं-'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' भारतीय मनीषा वेदों को आनादि और ईश्वर के निःश्वास के रूप में मानती हैं।[१] आधुनिक विद्वान् भी वेद को विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय मानते हैं। वेद केवल धर्म के ही मूल[२] नहीं अपितु समस्त भारतीय वाङ्मय के मूल हैं। अतः यदि रामकथा का बीजानुसन्धान वेद में किया जाता है अथवा वेद को रामकथा का (मूल) उत्स माना जाता है तो इसमें अनुचित क्या है ?

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने स्वयं ही रामायण को वेदमूलक स्वीकार किया है। वे इसे वेदतत्त्व का उपबृंहण मानते हुए कहते हैं कि यह रामायण महाकाव्य समस्त वेदानुकूल है। यह सम्पूर्ण पापों का प्रशमन तथा दुष्टग्रहों का निवारण करने वाला है-

रामायणं महाकाव्यं सर्ववेदेषु सम्मतम्।
सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम्।। [३]

रामकथा की वेदमूलकता का उद्घोष करते हुए रामायण में ही स्पष्टतः कहा गया है-

कुशीलवौ तुधर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ।।
स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।।
काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः।। [४]

अर्थात्, यशस्वी, धर्मज्ञ, मधुरस्वरवाले और आश्रम में निवास करने वाले दोनों भाइयों-राजकुमार कुश और लव को मेधावी तथा वेदनिष्ठ जानकर महर्षि वाल्मीकि ने वेद

---

१. यस्य निःश्वसिता वेदाः।
२. वेदोऽखिले धर्ममूलम्।
३. वाल्मीकिरामायण (माहात्म्य), १. १६.
४. वाल्मीकि रामायण, १.४.५.-७

का अर्थ-विस्तार करने के लिए सीता के महान् चरित्र से युक्त रावण वध नामक महाकाव्य का समग्रतया अध्ययन उन दोनों भाइयों को कराया।

उपर्युक्त कथन से प्रमाणित होता है कि वाल्मीकि ने रामायण की रचना वेद का उपबृंहण (अर्थ-विस्तार) करने के लिए ही की है। 'मन्त्ररामायण' के प्रथम श्लोक (मङ्गलाचरण) की स्वोपज्ञ व्याख्या में भी नीलकण्ठ ने उपर्युक्त (वाल्मीकिरामायण के) श्लोकों को उद्धृत करते हुए रामकथा की वेदमूलकता सिद्ध की है। इसी प्रसङ्ग में उन्होंने अगस्त्यसंहिता के अधोलिखित वचन को भी उद्धृत किया है-

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।
तस्माद् रामायणं देवि वेद एव न संशयः।।

अर्थात्, वेदैकगोचर परमात्मा, जब दशरथ के पुत्र राम के मानव रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए तब प्रचेतापुत्र वाल्मीकि के मुख से रामायण के रूप में साक्षात् वेद भी प्रकट हुए। अतः, हे देवि! रामायण वेद ही है-इनमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

रामकथा के कुछ पात्रों के नाम वैदिक वाङ्मय (संहिता, ब्राह्मण एवम् उपनिषद्) में यत्र तत्र पाये जाते हैं किन्तु न तो वहाँ उनका वह रूप है जो रामकथा में प्रसिद्ध है और न ही कोई क्रमबद्ध रामकथा ही है। यह सर्वविदित है कि राम का अवतार (जन्म) प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंश में हुआ था। इक्ष्वाकु का उल्लेख ऋग्वेद के दशम मण्डल में हुआ है-'यस्येक्ष्वाकुरूपव्रते रेवान् भरायूयेधते'[1]। इक्ष्वाकु का नामोल्लेख अथर्ववेद में भी एक बार हुआ-'त्वा वेद पूर्वं इक्ष्वाको यम्।'[2] दशरथ का उल्लेख ऋग्वेद में एक बार प्राप्त होता है-'चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।'[3] अश्वपति केकय का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[4] और छान्दोग्योपनिषद्[5] में हुआ है और दोनों स्थलों पर प्रसङ्ग समान है।

जनक का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में ब्रह्मवादी राजर्षि के रूप में हुआ है तथा वे ब्रह्मोद्य सभाओं में महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ उल्लिखित हैं। शतपथ ब्राह्मण में चारस्थलों[6] पर जनक का उल्लेख हुआ है तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक स्थल[7] पर। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी जनक का उल्लेख है।[8]

१. ऋग्वेद, १०. ६०.४.
२. अथर्ववेद, १६. ३६. ६.
३. ऋग्वेद, १. १२६. ४.
४. शतपथ ब्राह्मण, १०. ६. १. २.
५. छन्दोग्योपनिषद्, ५. ११. ४.
६. (शतपथ ब्राह्मण, ११. ३. १. २-४; ११. ४. ३. २०.; ११. ६. २. १-१० तथा ११. ६. ३. १.)
७. तैत्तिरीय ब्राह्मण, ३. १०. ६.
८. बृहदारण्यक उपनिषद-७.३. १. १-२.

सीता-सावित्री उपाख्यान तैत्तिरीय ब्राह्मण में उपलब्ध होता है।[1] इसमें सीता प्रजापति की पुत्री कही गयी है। 'सीता' शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय संहिता,[2] काठक संहिता[3] कपिष्ठण्ल संहिता[4] और मैत्रायणी संहिता[5] में तथा शतपथ ब्राह्मण[6] में हुआ है। आलोचक वैदिक विद्वानों ने यहाँ सीता से लाङ्गल पद्धति का अभिप्राय लिया है अथवा उन्हें कृषि की अधिष्ठात्री देवता के रूप में माना है। रामकथा में भी जनकनन्दिनी सीता के रूप में विख्यात देवी की उत्पत्ति राजर्षि जनक द्वारा हलकर्षण से ही हुई मानी जाती है। अतः उपर्युक्त उल्लिखित सीता का ऐक्य रामकथा की सीता से प्रतिपादित करना अनुचित नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, अथर्ववेद में सीता की प्रार्थना अधोलिखित मन्त्र द्वारा की गयी है-

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः।।

(अथर्ववेद, ३. १७. ८)

उपर्युक्त मन्त्र ऋग्वेद (४.५७.६) में भी किंचित्परिर्वनके साथ उपलब्ध है।[7] रामकथा के सर्वप्रधान पात्र, नायक श्रीराम का उल्लेख ('राम' शब्द से) राजा के रूप में ऋग्वेद में प्राप्त होता है-

प्र तद् दुःशीमे पृथावाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्।।

(ऋ., १०, ६३, १४)।

इसके अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण (७.२७.३४), शतपथ ब्राह्मण (४.६.१.७) तथा जैमिनीय उपनिषद् (३.७.३.२ और ४.६.१.१) में भी 'राम' का उल्लेख हुआ है। प्रश्नोपनिषद् में एक महत्त्वपूर्ण स्थल में कौशल्य राजपुत्र 'हिरण्यनाभ' का उल्लेख हुआ है- "भगवन् हिरण्यनाभः कौशल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत[8]।" रामकथा के सन्दर्भ में 'हिरण्यनाभ' का अपना विशिष्ट महत्व है क्योंकि वाल्मीकि रामायण में 'हिरण्यनाभ' स्पष्टतः 'राम' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है-'हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः।[9]'

---

१. तैत्ति. ब्रा., २. ३. १०
२. तैत्तिरीय संहिता, ५. २. ५. ५.
३. काठकसंहिता, २०. ३.
४. कपिष्ठण्लसंहिता, ३२. ५-६.
५. मैत्रायणी संहिता, ३.२. ४-५.
६. शतपथ ब्राह्मण, १३. ८. २. ६-७.
७. द्रष्टव्य, मन्त्ररामायण, मन्त्रसंख्या ३३.
८. प्रश्नोपनिषद्, ६.१
९. वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड, ७५.१३

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामकथा को स्पष्टतः वेदमूलक घोषित करने और वैदिक वाङ्मय के विभिन्न स्थलों में रामकथा के महत्त्वपूर्ण पात्रों के नामों का उल्लेख प्राप्त होने से, "रामकथा का बीज वैदिक वाङ्मय में निहित है"- यह कथन सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। अस्मद्देशीय और वैदेशिक विद्वानों की मान्यताओं का अनुशीलन करने के पश्चात् भी उपर्युक्त कथन का निहितार्थ बाधित नहीं होता। बौद्धों और जैनों के यहाँ भी उनकी अपनी रामकथायें हैं और पाश्चात्त्य विद्वान् उनमें से 'दशरथजातक' को विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं। रामकथा के सम्बन्ध में फादर कामिल बुल्के, यॉकोबी, हॉपकिन्स, विन्टरनित्स, वेबर आदि पाश्चात्त्य विद्वानों ने बाल की खाल निकालने में कोई कसर नहीं छोड़ी है और उन्होंने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसका तत्वोन्मीलन करने के पश्चात् जब हम सहस्रों वर्षों से चली आ रही अपनी रामकथा की परम्परा की ओर दृष्टिपात करते हैं तो भी हमें रामकथा की वेदमूलकता मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं दिखाई देती। अतः निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि रामकथा वेदमूलक है।

रामकथा की वेदमूलकता का प्रश्न कोई आधुनिक काल की समस्या नहीं है, अपितु यह विषय प्राचीन काल में भी विद्वानों के वैचारिक मन्थन में प्रमुख रूप से छाया रहा होगा। इस अनुमान का निदर्शन है- 'मन्त्ररामायण' नीलकण्ठ चतुर्धर ने निश्चय ही रामकथा की वेदमूलकता सिद्ध करने के लिए ही 'मन्त्ररामायण' की रचना की तथा ऐसा करके उन्होंने रामकथा की वेदमूलकता सम्बन्धी प्रश्न का सर्वथा समाधान करने का अनुपम प्रयत्न किया। मन्त्ररामायण के द्वारा रामकथा की मुख्य घटनाओं को संक्षिप्ततया प्रस्तुत करने का उपक्रम किया गया है और रामकथा के सभी महत्त्वपूर्ण प्रमुख पात्रों को रामकथा के परम्परागत तारतम्य में नियोजित कर उपस्थित किया है।

मन्त्ररामायण

नीलकण्ठ चतुर्धर ने 'मन्त्ररामायण' का मङ्गलाचरण, रामायण के गायत्री-स्वरूप का उल्लेख करके, किया है। हमारी आर्ष मान्यता है कि रामायण के चौबीस हजार श्लोकों में प्रत्येक हजार के प्रथम श्लोक का प्रथम अक्षर उद्धृत करके क्रमशः योजना करने से गायत्री (सावित्री) मन्त्र बन जाता है। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो इस प्रकार होगा कि गायत्री मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को लेकर आरम्भ किए गए श्लोक समेत हजार-हजार श्लोक की रचना करके रामायण का निर्माण किया गया है-

'प्रतिश्लोकसहस्रादौ मन्त्रवर्णाः समुद्धृताः।'

विद्यारण्य मुनि ने वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग को गायत्री स्वरूप ही माना है-

'गाय-याश्च स्वरूपं तद्रामायणमिति स्मृतम्।'

रामायण को 'गायत्रीबीज' कहकर नीलकण्ठ ने रामायण की वेदमूलकता प्रतिष्ठित की है। तत्पश्चात् 'रामरक्षास्तोत्र' की योजना करके उसकी व्याख्या के माध्यम से भी रामकथा के वेदमूलकत्व को स्थापित कियाा है। 'मन्त्ररामायण' का मूल कलेवर १५७ मन्त्रों द्वारा निर्मित है। मुख्य रूप से ऋग्वेद के विभिन्न सूक्तों से स्वाभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाले १५५ मन्त्रों को सङ्कलित किया गया है। एक मन्त्र (क्रम सं. ६५) वाजसनेयि संहिता से उद्धृत है और एक मन्त्र (क्रम सं. १५६) किसी अन्य संहिता से ग्रहण किया गया है।

'मन्त्ररामायण' की रचना वस्तुतः नीलकण्ठ की वेद के प्रति अगाध श्रद्धा और रामकथा के प्रति उनकी असीम भक्ति का प्रतिफल है। ऋग्वेद के १०४१७ मन्त्रों में से ऐसे १५५ मन्त्रों का चयन करना, जो रामकथापरक अर्थ को व्यक्त करने वाले हों, कोई साधारण कार्य नहीं है। इसके लिए नीलकण्ठ को अपूर्व श्रम करना पड़ा होगा; किन्तु जब सामने महान लक्ष्य हो तो मनस्वी पुरुष श्रम-श्रान्ति की परवाह किये बिना उसमें लग जाता है और सच बात तो यह है कि जब मन रम जाता है तो श्रम की अनुभूति होती ही नहीं। फिर मन नीलकण्ठ का रमा कहाँ? राम में और वेदमें। जब दोनों हाथ में लड्डू हों तो व्यक्ति की प्रसन्नता कितनी होगी- यह सहज ही अनुमेय है। निश्चय ही, इस कर्तृत्व के द्वारा नीलकण्ठ का श्रेय और प्रेय- दोनों सिद्ध हुआ। मन्त्ररामायण, नीलकण्ठ की असाधारण प्रतिभा, उत्कृष्ट धारणा शक्ति, असीम धैर्य, उदात्त भक्ति, अप्रतिम कर्मनिष्ठा और दृढ़ सङ्कल्प का परिचायक है। विभिन्न वैदिक देवताओं की स्तुति में लिखे गये पृथक्-पृथक् मन्त्रों को रामकथा के प्रसङ्गोचित क्रम में सुयोजित कर उससे रामकथा के बीजरूप वैदिक स्वरूप का आकार प्रदान करना, स्वयं में एक अद्भुत सारस्वत अनुष्ठान है। रामकथा की वेदमूलकता सिद्ध करने के लिए समर्पण भाव से किए गए इस महनीय कर्तृत्व की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम ही है।

यदि नीलकण्ठ ने मन्त्ररामायण के रूप में इन मन्त्रों को सङ्कलित करने मात्र से ही अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली होती, तो सम्भवतः उनका उद्देश्य और मन्त्ररामायण का प्रयोजन पूरा न होता। क्योंकि सङ्कलित मन्त्र तो भिन्न वैदिक अर्थ वाले हैं। अतः उन मन्त्रों मे निहित रामकथा के तत्तत् प्रसङ्गों को उद्घाटित करने के लिए उन्होंने मौलिक मेधा के बल से 'मन्त्ररहस्यप्रकाशिका' नामक स्वोपज्ञ व्याख्या लिखकर रामकथाभक्त जिज्ञासु अध्येताओं का अपूर्व उपकार किया है। यदि मन्त्ररामायण की यह नीलकण्ठी टीका न होती तो रामकथापरक गूढ़ मन्त्रार्थ का अवगम अत्यन्त दुष्कर होता। यद्यपि (मेरी निष्पक्ष) धारणा है कि नीलकण्ठ द्वारा किए गए मन्त्रार्थ शब्दशक्तियों के साथ संघर्ष करके ही प्राप्त किए गए हैं और उन्हें सहज तथा प्रसन्न अर्थ नहीं कहा जा सकता तथापि श्रीरामप्रभु का प्रसाद मानकर उन्हें शिरोधार्य करना ही समीचीन है। अनुमान है कि नीलकण्ठ ने मन्त्ररामायण की रचना उन प्रतिपक्षियों का मुंह बन्द करने के लिए की होगी,

जो रामकथा को वेदमूलक नहीं मानते होंगे। मन्त्ररहस्यप्रकाशिका के उपोद्घात में अपने उद्देश्यगत विषय को स्पष्ट करने का पूर्णतः प्रयास करते हुए उन्होंने स्पष्टतः कहा है - "नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यतीति न्यायेन त्वयि वेदार्थानभिज्ञे सति न रामायणमपराद्ध्यति।।" यही कारण है कि आग्रह विशेष (हठ) पूर्वक उन्होंने सायास मन्त्रों के अर्थ रामकथा परक किए हैं। मन्त्ररहस्यप्रकाशिका में अर्थ सम्बन्धी जटिलतायें स्पष्टतः देखी जा सकती हैं। नीलकण्ठ द्वारा की गयी शब्द-व्युत्पत्तियाँ भी अपूर्व ही हैं।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि मन्त्ररामायण अपनी तरह की अद्वितीय रचना है।

नीलकण्ठ चतुर्धर

'मन्त्ररामायण' के कर्ता का नाम नीलकण्ठ चतुर्धर है। इसके कर्तृत्व का प्रकाशन उन्होंने स्वयं मन्त्ररामायण के अन्त में स्वोपज्ञटीका की समाप्ति में लिखी गयी पुष्पिका में किया है-

'इतिश्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविन्दसूरिसूनोः श्रीनीलकण्ठस्य कृतिः स्वोद्धृतमन्त्ररामायणव्याख्या मन्त्ररहस्यप्रकाशिकाख्या समाप्तिमगमत्।।'

इस उल्लेख के अनुसार इनके पिता श्री गोविन्दसूरि चतुर्धर (चौधरी) ब्राह्मणवंश के शिरोमणि थे। वे व्याकरण मीमांसा और न्याय शास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। उनके नाम के आगे लगी 'सूरि' की उपाधि भी इनकी प्रकृष्ट विद्वत्ता का बोधक है। श्रीनीलकण्ठ की माता का नाम फुल्लाम्बिका था और इनका परिवार गोदावरी तट पर स्थित कूर्पर ग्राम में निवास करता था। सम्प्रति यह स्थान महाराष्ट्र प्रान्त के अहमदनगर जनपद में 'कोपारगांव' नाम से जाना जाता है। कालान्तर में इनका कुटुम्ब कूर्पर ग्राम से आकर काशी में बस गया। विद्वानों ने श्रीनीलकण्ठ की कृतियों के रचनाकाल के आधार पर इनका स्थितिकाल १६५० से १७०० ई. माना है। इनके पुत्र-पौत्रों का भी उल्लेख वंशमर्यादानुरूप अच्छे विद्वान् लेखकों के रूप में प्राप्त होता है।

संस्कृत साहित्य में नीलकण्ठ एक उत्कृष्ट टीकाकार के रूप में विख्यात हैं। महाभारत पर 'भारतभावप्रदीप' नामक इनकी टीका अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, जो विद्वन्मण्डली में 'नीलकण्ठी टीका' के नाम से प्रसिद्ध है। नीलकण्ठ ने इस टीका को लिखने से पूर्व, महाभारत पर प्राप्त अपने पूर्ववर्ती टीकाकारों की प्रायः सभी टीकाओं को यत्नपूर्वक समग्र भारत से प्राप्त कर उनका गहन अध्ययन किया था तथा महाभारत के मूलरूप को प्रकाशित करने के उद्देश्य से अपनी टीका में सर्वोपयुक्त पाठों का निर्धारण किया था-

'बहून् समाहृत्य विभिन्नदेश्यान्
कोशान् विनिश्चत्य च पाठमग्र्यम्।

प्राचां गुरुणामनुसृत्य वाच-
मारभ्यते भारतभावदीपः ।।'

इन्होंने अपने 'भारतभावप्रदीप' में महाभारत के पूर्ववर्ती प्रमुख टीकाकारों - देवबोध, विमलबोध, अर्जुनमिश्र, रत्नगर्भ, सर्वज्ञनारायण आदि का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा स्वीकृत पाठों को उद्धृत किया है।[1] महाभारत के अतिरिक्त 'गणेश गीता' तथा 'शिवताण्डव' पर भी इन्होंने टीकायें लिखी हैं।

नीलकण्ठ ने मन्त्ररामायण की पद्धति में 'मन्त्रभागवत' नामक ग्रन्थ की भी रचना की है। मन्त्रभागवत में भी ऋग्वेद से मन्त्रों का संकलन करके इस प्रकार उन्हें प्रस्तुत किया है कि उन मन्त्रों से सम्पूर्ण भागवत की क्रमबद्ध संक्षिप्त कथा व्यक्त हो जाती है। ऋग्वेद के उन मन्त्रों का भागवतकथापरक अर्थ करने के लिए नीलकण्ठ ने 'मन्त्रभागवत' पर भी स्वोपज्ञ व्याख्या लिखी है।

'भारतभावप्रदीप' के जो हस्तलेख उपलब्ध होते हैं, उनका प्रतिलिपि काल १६८७ ई. से १६९५ ई. तक है। नीलकण्ठ कृत शिवताण्डव टीका का रचनाकाल १६८० ई. तथा गणेशगीता की टीका का रचनाकाल १६९३ ई. है। अनुमान किया जाता है कि महाभारत की टीका का समय १६८० ई. से पूर्व ही रहा होगा। मन्त्ररामायण और मन्त्रभागवत का रचनाकाल उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः उनकी रचना नीलकण्ठ ने महाभारतादि की टीकाओं के बाद की होगी।

श्री नीलकण्ठ चतुर्धर के पुत्र का नाम भी गोविन्द था। इस गोविन्द के पुत्र अर्थात् नीलकण्ठ के पौत्र शिव ने पैठण में निवास करते हुए सन् १७४६ ई. में 'धर्मतत्वप्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

---

१. श्रीरामकुमार राय द्वारा सम्पादित तथा अनूदित मन्त्ररामायण में डा. लक्ष्मीनारायण तिवारी द्वारा लिखित प्रस्तावना, पृष्ठ- २७।

।। श्रीः ।।

श्री जानकीवल्लभो विजयतेतराम्

अथ

।। श्रीमन्त्ररामायणम् ।।

(संस्कृतटीकया हिन्दीभाषानुवादेन च संवलितम्)

।। श्री गणेशाय नमः ।।

रामायणद्रुमं नौमि रामरक्षानवाङ्कुरम् ।
गायत्रीबीजमाम्नायमूलं मोक्षमहाफलम् ।। १ ।।

अत्र रामरक्षायाः रामायणद्रुमाङ्कुरत्वं स्पष्टमवगम्यते तत्स्थानां राघवादिपदानां क्रमेण रामायणार्थसूचकत्वात् तस्याः गायत्रीबीजत्वं देवमूलत्वं चोपपादनीयम्। तेन रामायणस्यापि तदुभयं सिद्ध्यति। अत एव रामायणे चतुर्विंशतिसाहस्र्यां चतुर्विंशतिर्गायत्र्यक्षराणि वाल्मीकिना सङ्गृहीतानीत्यभियुक्तप्रसिद्धं सङ्गच्छते। तथा रामायणस्य वेदत्वोक्त्या प्रत्यक्षवेदमूलतत्त्वोपपादकम्-''वेदवेद्येपरे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना।। तस्माद् रामायणं देवि वेद एव न संशयः।।'' - इत्यगस्त्यसंहितावचनम्। ''स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदार्थपरिनिष्ठितौ। वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।। काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्'' इति तस्य वेदोपबृंहणप्रयोजनकत्वं प्रतिपादयदार्षवचनं च सङ्गच्छते। तत्र गायत्र्यर्थस्तावत्सवितुः ब्रह्माण्डवृक्षप्रसवभूमेः तत् प्रसवितृरूपं भूस्थानीय वरेण्यं वरणीयं मोक्षकामैर्ब्रह्माण्डवृक्ष-प्रविलापनेनानुसर्तव्यम्; एवं च, ''तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति''- इति श्रुतेस्तत्पदोदिते ब्रह्मणि सवितृपदेन कार्यमात्रमध्यारोप्य वरेण्यपदेन तदपोद्य निष्प्रपञ्चं ब्रह्मणः पारमार्थिकं रूपं निरूपितं तथा तस्यैव सवितुर्भर्गो भाभिर्गतिरस्येति व्युत्पत्त्या सूर्यमण्डलान्तःस्थं नारायणाख्यं ज्योतिः ''य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः'' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं मायाविरूपमुपास्यं निर्दिष्टं धीमहीत्यनेनान्वयात् तथा देवस्येति तस्यैव ब्रह्माण्डान्तर्नानावतारैः क्रीडतो रामकृष्णादिरूपं तृतीयं रूपमुक्तं तथा धीमहीति विरोधपूर्वकं स्वार्थमुभयार्थमीश्वरार्थं चेति चतुर्धा भजनं दर्शितं तथा तृतीयपादे बहिर्मुखस्वभानायाबुद्धेः अन्तर्मुखतया प्रकर्षेण प्रेरणे प्रत्यगात्मावसाने कैवल्यरूपेऽप्यस्य हेतुत्वप्रदर्शनेन तस्यैव सकलकर्मोपास्तिफलप्रयोजकत्वमुक्तम्। एवञ्च, गायत्र्यां काण्डत्रयं दर्शितं तथा च मैत्रायणी श्रुतिः-''तत्सवितुर्वरेण्यमित्यसौ वा आदित्यः सविता स वा एवं प्रवरणीय आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनः'' इति। भर्गोदेवस्य धीमहीति सविता वै देवस्ततो

योऽस्य भर्गस्तं चिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिन इति। "धियो यो नः प्रचोदयादिति बुद्धयो वै धियस्ता योऽस्माकं प्रचोदयादित्याहुर्ब्रह्मवादिनः" इति। अत्रात्मकामेन प्रवरणीय इति सवितुः प्रत्यगात्मत्वं ज्ञानकाण्डार्थ उक्तश्चिन्तयामीति चिन्तायोग्यत्वमुपासनाकाण्डार्थ उक्तः। धिय इत्यनेकाकारधीप्रेरकत्वं कर्मकाण्डार्थ उक्तः। तत्राद्य उपेयः परः सन्निकृष्टविप्रकृष्टौ तत्प्राप्त्युपायौ। एवं वेदमातुर्गायत्र्याः काण्डत्रयात्मकत्वेन तज्जानां वेदानां तन्मूलकानां रामायणादीनां च तथात्वं ज्ञेयम्। एत एवार्थाः राघवादिविंशतिनामभी रामरक्षायामवयवार्थद्वारा प्रदर्श्यन्ते।

भाषानुवादक का मङ्गलाचरण

प्रथमं शरणं यामि विद्याकल्पतरुं गुरुम् ।
मम सर्वार्थासिद्ध्यर्थं सदयो यः प्रसीदति ।। १।।

नौमि गुरुकृपापूर्णं रामं बीजाक्षरद्वयम् ।
श्रुतौ नामामृतं यस्य भवग्रन्थिविमुक्तये ।। २।।

रामारामे वसन्नित्यं रामनामपरायणः ।
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तः प्रसादमधिगच्छति ।। ३।।

मन्त्ररामायणं नौमि रामं तद्बीजसंज्ञकम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण सिद्धाः सर्वमनोरथाः ।। ४।।

हिन्दीभाषानुवाद - गायत्रीमन्त्र (पवित्र सवितृमन्त्र) जिसका बीज है, वेद जिसकी जड़ें हैं, जो रामरक्षारूपी नवीन अङ्कुर (का बृहदाकार रूप) है और जो मोक्ष रूपी श्रेष्ठ (सर्वोत्तम) फल से युक्त अर्थात् फल-प्रदाता है, (ऐसे) रामायण रूपी (अलौकिक कल्प-) वृक्ष को नमस्कार करता हूँ।

तथा हि -

शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ।
कौशलयेयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती।। १।।

घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ।
जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।। २।।

रङ्घति नाशं गच्छतीति रघुः व्यष्टिसमष्टिरूपोऽन्नमयः कोशस्तत्र विदितो राघवो ब्रह्माण्डाभिमानी मम ब्रह्माण्डरूपं शिरः पातु। स एव दशरथस्य दशभिरिन्द्रियाश्वैर्युक्तस्य मनोमयकोशरूपस्याऽऽत्मेवात्माकार्य प्राणमयः कोशस्तज्जस्तेनाऽन्नमयादान्तरः प्राणमयस्ततोऽप्यान्तरो मनोमय इति पूर्वयोः प्रविलापनं

सिद्धम्,; स च वासनातन्तुसन्तानात्मा मनोमयो ब्रह्माण्डात् सृष्टिक्रमेणार्वाचीनं भालदेशं ब्रह्मलिपिस्थानं मे पातु। कुशलैव कौशल्या, स्वार्थे ष्यञ्, सर्वार्थावद्योतनसमर्थाबुद्धिस्तस्यां भवः कौशल्येयो विज्ञानमयस्ततोऽप्यान्तरः स मम दर्शनसाधने दृशौ पातु। एतेन मनोमयस्याप्यपवाद उक्तः। विश्वस्य मित्रं निरुपाधिप्रेमगोचरतया प्रेयान् आनन्दमयाख्य आत्मैव विश्वामित्रः तस्यापि प्रियः, 'सुषुप्तौसता सोम्यतदासम्पन्नो भवति' इति श्रुतेः प्राप्तः सन्नात्यन्तिकदुःखैनि-वृत्तिकरस्तदधिष्ठानभूत आनन्दः पुच्छब्रह्मापरपर्यायो मम श्रुती स्वधिगमद्वारभूते पातु। तदेवं प्रथमेन पादेन रामे ब्रह्माण्डमारोप्याऽन्त्यपादत्रयेणापोह्य च रामस्य शुद्धं रूपं गायत्रीप्रथमपादोक्तं दर्शितम्। अयं चार्थः कृत्स्नोऽपि वेदान्तप्रसिद्ध इति मूलवाक्यानि नोदाहृतानि। मखत्राताऽव्यभिचारेण क्रतुफलप्रदः फलमत उपपत्तेः इति न्यायादिति भावः। स मे क्रतुफलभूतदिव्य-गन्धरसाद्युपलब्धिकरणं घ्राणरसनादिकं पातु। सौमित्रिवत्सलः सुष्ठु मित्रं जीवपक्षिणः सखा ईश्वरस्तस्यापत्यं सोमित्रिर्हिरण्यगर्भस्तत्र वत्सलस्तेन तत्तादात्म्यं प्राप्तानामुपासकानामनुग्रहकर्तेत्युक्तम्। सौमित्रेर्मुख्यकार्यत्वात्तद्वत्सलो मे मुखं पातु। तावेतावन्तर्यामिसूत्रात्मानौ विद्यैकलभ्यौ न तु शुष्कतर्कगम्यौ इति विद्यावाप्तिद्वारभूतां मम जिह्वां विद्यानिधिः विद्यासम्प्रदायप्रवर्तकः पातु। विद्यापि यज्ञाद्यपूर्वप्राप्या, 'विविदिषन्ति यज्ञेन' इत्यादिश्रुतेः। अतो भरतैःकर्मठैर्वन्दितः शरणीकृतः। भरन्ति कर्मफलं सञ्चिन्वन्ति ते भरताः यजमानाः 'भरतमुद्धर' इति मन्त्रलिङ्गात् यज्ञश्च कण्ठस्थैरेव मन्त्रैः स्तोत्रशस्त्रादिभिर्निर्वर्त्यत इति यज्ञप्रियो मे मन्त्रोच्चारणस्थानं कण्ठं पातु। तदेवं यज्ञादिजन्येन पुण्येन प्राप्तोपासनामार्गो भर्गाख्यं सूत्रमीशं वा क्रममुक्तिद्वारं प्राप्नोतीति श्लोकद्वयतात्पर्यम्।। १-२।।

हिन्दी भाषानुवाद - राघव मेरे शिर की रक्षा करें। दशरथपुत्र (मेरे) मस्तक की (रक्षा करें)। कौशल्यासुत (मेरे) दोनों नेत्रों की (रक्षा करें)। विश्वामित्र के प्रिय (शिष्य) (मेरे) दोनों कानों की (रक्षा करें)।। यज्ञरक्षक (मेरी) नासिका की रक्षा करे। सुमित्रानन्दन (लक्ष्मण) पर स्नेह करने वाले (मेरे) मुख की (रक्षा करें)। विद्या के निधिरूप (मेरी) जीभ की (रक्षा करें)। भरत-वन्दित (मेरे) कण्ठ की रक्षा करें।।१-२।।

टिप्पणी - विनाशशील व्यष्टिसमष्टिरूप अन्नमयकोश की संज्ञा 'रघु' है। उस अन्नमय कोश में जो ब्रह्माण्डाभिनी है, उसे 'राघव' कहते हैं। वह राघव (ब्रह्म) ब्रह्माण्डरूप शिर की रक्षा करें। दशरथ अर्थात् दश इन्द्रियों से युक्त मनोमय कोश का आत्म प्राणमयकोश और उससे उत्पन्न वासनातन्तुसन्तानात्मा मनोमय कोश, ब्रह्माण्ड से सृष्टिक्रम द्वारा अर्वाचीन भालदेश अर्थात् ब्रह्मलिपिस्थान की रक्षा करें। सभी अर्थों का ज्ञान करने में समर्थ बुद्धि को 'कुशला' कहते हैं। कुशलाही ही कौशल्या है। अतः कौशल्या में जो हो, वह है कौशल्येय अर्थात् विज्ञानमयकोश। उस विज्ञानमयकोश का अन्तर्वर्ती

दर्शनसाधनरूप (मेरे) नेत्रों की रक्षा करें। विश्व का मित्र (अर्थात् निरुपाधि रूप से सबका प्रिय आत्मा से बढ़कर प्रिय अन्य कोई नहीं होता) आनन्दमयकोशस्थित आत्मा और उस आत्मा का भी प्रिय जो आनन्द है, वह पुच्छब्रह्मरूप आनन्द, स्वाधिगमद्वारभूत (स्वयं को जानने के लिए या स्वयं तक पहुंचने के लिए द्वार रूप) श्रुति अर्थात् कानों की रक्षा करें।। इस प्रकार, श्लोक के प्रथम पाद द्वारा 'राम' में ब्रह्माण्ड का आरोप करके पुनः शेष तीन पादों द्वारा क्रमशः अन्नमयकोशादि से पृथक् करके 'राम' का विशुद्ध रूप प्रदर्शित किया गया जो कि गायत्री के प्रथम पाद में कहा गया है।। १।।

मखत्राता अर्थात् यज्ञफल का प्रदाता, यज्ञफलभूत दिव्यगन्धादि के ग्रहणकर्ता नासिका की रक्षा करें। सुष्ठु मित्र - सुमित्र (अर्थात ईश्वर) की सन्तान सौमित्रि अर्थात् हिरण्यगर्भ; उस हिरण्यगर्भ के प्रति वत्सल अर्थात् तादात्म्यप्राप्त उपासकों का अनुग्रहकर्ता मुख की रक्षा करें। विद्यानिधि अर्थात् विद्यैकलभ्य विद्यासम्प्रदायप्रवर्तक, विद्याप्राप्ति की द्वारभूत जिह्वा की रक्षा करें। भरत अर्थात् यजमानों के द्वारा वन्दित अर्थात् शरणीकृत। कण्ठस्थ मन्त्रों द्वारा यज्ञ सम्पन्न कराया जाता है। अतः यज्ञप्रिय, मन्त्रोच्चारण स्थानभूत कण्ठ की रक्षा करें।। इस प्रकार यज्ञादिजन्य पुण्य से प्राप्त उपासनामार्ग वाला पुरुष, भर्ग नामक सूत्र या ईश रूप क्रममुक्ति द्वार को प्राप्त कर लेता है।। २।।

स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकामुर्कः ।
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।। ३।।

मानुषभावेऽपि ऐश्वरदिव्यायुधानां शार्ङ्गादीनां धारित्वाद्दिव्यायुध आयुधनिधानभूतौ स्कन्धौ मे पातु। तथा भुजबलेनैव भग्नेशकार्मुको भुजौ मे पातु। अत्र ईशकार्मुकं मेरुरूपम्- 'रथः क्षोणीयन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुः, इति त्रिपुरवधे तस्य कार्मुकत्वप्रसिद्धेः। एतेन मानुषभावेऽपि महेश्वरादप्यधिक्यं दर्शितम्। तथा वीर्यशुल्कायाः सीतायाः करग्राही सीतापतिः करौ मे पातु। अनेन नामद्वयेन विश्वामित्रदत्ताया बलाख्याया विद्यायाः फलं शारीरं बलाधिक्यं दर्शितम्। अतिबलायास्तु फलं मनःसङ्कल्पमात्रेण अलौकिकार्थसाधनं तच्च जामदग्न्यजिदिति ब्राह्मं वैष्णवं च तेजो दधानस्य जामदग्न्यस्य तपोराशिवधेन स्पष्टीकृतम्। अतएव हार्दबलवान् हृदयं मे पातु तादृशबलप्रदानेनेति भावः। एवं तृतीयं पारमेश्वरं रूपं ब्रह्मविष्णुशिवेभ्योऽप्यधिकं मानुषभावेऽपीति तृतीयश्लोकेन गायत्रीस्थदेवस्येति पदस्यार्थो दर्शितः।। ३।।

हिन्दीभाषानुवाद - दिव्यायुध (अलौकिक शस्त्रास्त्र को धरण करने वाले) (मेरे) कन्धों की रक्षा करें। भग्नेशकार्मुक (शिव का धनुष तोड़ने वाले) (मेरी) भुजाओं की रक्षा करें। सीतापति (मेरे) हाथों की रक्षा करें और जामदग्न्यजित् (परशुराम को जीतने वाले) (मेरे) हृदय की रक्षा करें।।३।।

टिप्पणी - रामावतार में मनुष्य भाव में होते हुए भी शाङ्र्गादि दिव्य आयुधों को धारण करने के कारण राम को 'दिव्यायुध' कहा गया। कन्धे आयुधादि के आलम्बनस्थान होते हैं। अतः दिव्यायुध से कन्धों की रक्षा की प्रार्थना की गयी है। त्रिपुरवध के प्रसङ्ग में मेरु को शिव का धनुष कहा गया है। उस शिव के धनुष को राम ने भुजाओं के बल से तोड़ा था। अतः शिव का धनुष तोड़ने वाले (भग्नेशकार्मुकः) राम ने भुजाओं की रक्षा करने के लिए प्रार्थना की गयी है। इस तरह राम को शिव से बढ़कर बताया गया। वीर्यशुल्का सीता का पाणिग्रहण करने वाले सीतापति से कराग्र की रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है। इन दोनों नामों द्वारा विश्वामित्र द्वारा प्रदान की गयी 'बला' विद्या का फल और शरीरिक बलाधिक्य प्रदर्शित किया गया है। अतिबलाविद्या का फल है- मन सङ्कल्पमात्र से अलौकिक अर्थों की सिद्धि 'जामदग्न्यजित्' पद से ब्राह्म और वैष्णव तेज धारण करने वाले परशुराम की तपोराशि नष्ट करने का अभिप्राय स्पष्ट ही है और इससे अतिबलाविद्या का फल भी राम में सिद्ध है। अतः वैसा ही बल प्रदान करने के द्वारा हार्दबलवान् राम हृदय की रक्षा करें- यह प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार तृतीय परमेश्वर का रूप मानुषभाव में होने पर भी ब्रह्मा, विष्णु और शिव से अधिक है। इसतृतीय श्लोक के द्वारा गायत्री में स्थित 'देवस्य' इस पद का अर्थ प्रदर्शित किया गया।। ३।।

मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः ।
सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ।। ४।।

तस्यैव चतुर्धा भजनमाह - मध्यमिति । खरादीनां द्वेषपूर्वकं रामं ध्यायताम् अध्याय्यपेक्षया श्रेष्ठत्वाद्भक्त्याद्यभावाच्च मध्यमत्वं तेषु निग्रहमुखो रामानुग्रहः सोऽपि मध्यमः। अतस्तत्कर्ता खरध्वंसी मध्यं नाभिना समसूत्रं पृष्ठप्रदेशं मे पातु। जाम्बवत आपत्काले स्वार्थमेव कामपूर्वकं ध्यायतो द्वेषांशाभावात्ततोऽप्यान्तरत्वमतो जाम्बवदाश्रयो मे नाभिं मध्यादाभ्यन्तरं पातु। सुग्रीवस्य तु 'देहि मे' 'ददामि ते' इति न्यायेन पूर्वं स्वार्थसम्पत्तिः पश्चादाराधनमिति वणिग्वद् भजतो जाम्बवदपेक्षया किञ्चिदूनत्वमतः सुग्रीवेशो बाह्यं मे कटिं पातु। हनुमतस्तु केवलं निष्काममीश्वरार्थमेव भजतोऽन्तरङ्गत्वाच्छिशुवत् प्रियत्वेनाङ्कमारोपयितुं योग्यत्वाद् हनुमत्प्रियो मे सक्थिनी अङ्कदेशं पातु। एवं व्यक्तस्य देवस्य चतुर्विधं ध्यानं चतुर्विधभक्तकृतं चतुर्थश्लोकेन दर्शितम्।। ४।।

हिन्दीभाषानुवाद - खरध्वंसी (खरनामक राक्षस को मारने वाले) (शरीर के) मध्यभाग की रक्षा करें। जाम्बवान् को अपने आश्रय में लेने वाले नाभि की रक्षा करें। सुग्रीव के स्वमी कटि (कमर) की रक्षा करें और हनुमान् के प्रभु दोनों जांघों की रक्षा करें।।४।।

टिप्पणी - खर, जाम्बवान्, सुग्रीव और हनुमान्- इन चारों के आश्रय से भक्तों के चार प्रकार बतलाते हुए, प्रस्तुत श्लोक में, श्री राम को चार प्रकार से भजना बताया गया है। जो द्वेषपूर्वक भी श्रीराम का स्मरण करते हैं, वे भी भक्त हैं और वे इसी प्रकार उनका भजन करते हैं जैसे खर। एक वे भी भक्त हैं, जो केवल विपत्ति में श्रीराम का स्वार्थवश ध्यान करते हैं। जैसे जाम्बवान। 'तू मुझे दे' तो 'मैं तुझे दूँ'' - इस प्रकार वणिग् बुद्धि से पहले स्वार्थसिद्धि और तत्पश्चात् आराधना करने वाले भी भक्त हैं, जैसे सुग्रीव। श्रेष्ठ भक्त वे हैं, जो निष्काम भाव से केवल श्रीराम की सेवा करने के लिए ही उन्हें भजते हैं, जैसे हनुमान्। इस प्रकार इस श्लोक में चार प्रकार के भक्तों द्वारा चार प्रकार से किए जाने वाले, श्रीराम के ध्यान का वर्णन किया गया है।।४।।

जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तक :।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः।। ५।।

अथ व्यक्तपरित्यागेनाव्यक्तालम्बनाया गतेः संसारसमुद्रसेतुरूपायाः प्रदाता सेतुकृत् जानुनी शिशोः प्रथमगतिसाधने मे पातु। अनेन स्थूलादेहातिक्रम उक्तः। अस्यामवस्थायां ध्यायी विदेह इत्युच्यते। तथा दश इन्द्रियाणि मुखानि भोगद्वाराणि यस्य स दशमुखो लिङ्गात्मा तस्यान्तको नाशकः प्रतिवलापयिता दशमुखान्तकः। ईषद्दृढाङ्गस्य शिशोः मन्दोर्ध्वगतिसाधने जङ्घे मे पातु। एतेन लिङ्गदेहातिक्रम उक्तः। अस्यामवस्थायां ध्यायी प्रकृतिलय इत्युच्यते। तथा विगतं भीषणं भयङ्करमज्ञानं यस्य स विभीषणो निरस्ताविद्यस्तस्मै श्रीः 'एषाऽस्य परमा सम्पत्'। इति श्रुतिप्रसिद्ध आनन्दः तस्याः प्रदाता विभीषणश्रीदो निघृष्टलतया शीघ्रगतिहेतू पादौ मे पातु। एतेनानर्थवृत्तिपूर्विका आनन्दावाप्तिरुक्ता। अस्यामवस्थायां ध्यायी मुक्त इत्युच्यते। रामः सर्वेश्वरतया ब्रह्माण्डमण्डपे रमणशीलो मम जीवन् मुक्तभावं कामयमानस्याऽखिलं वपुस्त्रिविधमपि शरीरं पातु समस्तयोगप्रतिपक्षनिरासेन ब्रह्मसाक्षात्कारक्षमं करोत्वित्यर्थः। तदेवं ब्रह्मणि राघवपदेनाध्यारोपितस्य प्रपञ्चस्य दशरथात्मजादिपदत्रयेणापोदितस्याधिष्ठानं प्राप्तुं ध्यानालम्बभूतं भगवतः समष्टिरूपं व्यष्टिरूपञ्च द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां प्रदर्श्य व्यष्ट्युपासनां चतुर्थेन समष्ट्युपासनां पञ्चमार्द्धेन च प्रदर्श्य शेषेणानर्थनिवृत्त्यानन्दावाप्ती जीवन्मुक्तिसहिते निरूपिते इत्यत्रैव कृत्स्नः शास्त्रार्थोऽस्तीति प्रदर्शनेन रामायणद्रुमाङ्कुरस्य रामकवचस्य गायत्रीबीजत्वमुपपादितम्। यथात्र कथांशः स्पष्टं सूच्यते, अध्यात्मांशस्तु परोक्षवृत्त्या गम्यते। एवं रामायणे तन्मूलभूते वेदे च तदुभयं ज्ञेयम्।। ५।।

हिन्दीभाषानुवाद - सेतु बांधने वाले (समुद्रबन्ध करने वाले) दोनों घुटनों की रक्षा करें। दशमुख (रावण) का अन्त (विनाश) करने वाले जांघों की रक्षा करें। विभीषण को (राज्य-) लक्ष्मी प्रदान करने वाले पैरों की रक्षा करें और श्रीराम सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें।।५।।

टिप्पणी - व्यक्त के परित्याग से अव्यक्त का आलम्बन करने वाली गति, जो संसार सागर की सेतुरूपा है, को प्रदान करने वाले, शिशु की प्रथम गति के साधनभूत घुटनों की रक्षा करें। (शिशु सर्वप्रथम घुटनो के बल ही चलता है) इसके द्वारा स्थूल देह का अतिक्रमण कहा गया। इस अवस्था में ध्याता को 'विदेह' कहा जाता है। दश इन्द्रियां ही जिसके मुख अर्थात् भोगद्वार हैं जिसके वह है दशमुख अर्थात् लिङ्गात्मा। उस लिङ्गात्मा का जो अन्त (= नाश) करे, वह है दशमुखान्तक। कुछ पुष्ट अङ्गों वाले शिशु की गति की साधन हैं जांघें। उन जांघों की, यह दशमुखान्तक रक्षा करे। यहाँ इसके द्वारा लिङ्गदेह का अतिक्रमण कहा गया। इस अवस्था में ध्याता 'प्रकृतिलय' कहा जाता है। जिसका भीषण अज्ञान (= अविद्या) समाप्त हो गया है, वह है विभीषण। ऐसे विभीषण को श्री अर्थात् आनन्द प्रदान करने वाले, दोनों पैरों की रक्षा करें। इससे अनर्थ की निवृत्तिपूर्वक आनन्द की प्राप्ति कही गयी। इस अवस्था में ध्याता को 'मुक्त' कहा जा सकता है। सर्वेश्वररूप से ब्रह्माण्ड मण्डप में रमण करने वाले श्रीराम, जीवन्मुक्तभावाभिलाषी मेरे सम्पूर्ण शरीर (अर्थात् तीनों ही प्रकार की देह- स्थूल, सूक्ष्म (लिङ्ग) और कारण)-की रक्षा करें। वे मुझे, समस्त योगविरुद्ध भावों को समाप्त करके, ब्रह्मसाक्षात्कार के योग्य बनायें-यह अभिप्राय है।

इस पञ्च श्लोकात्मक राम (रक्षा) कवच रूप रामायणद्रुमाङ्कुर का गायत्री बीजत्व उपपादित किया गया। यहां रामायण कथा को स्पष्टतः संङ्केतित किया गया है और परोक्षवृत्ति से अध्यात्मांश भी सूचित किया गया है। ब्रह्म के समष्टि और व्यष्टि रूप का निरूपण करते हुए जीवन्मुक्तिसमेत ब्रह्मसाक्षात्कार पूर्वक आनन्द (मोक्ष) की अताप्ति भी सूचित की गयी है।

इस पञ्चश्लोकात्मक राम (रक्षा) कवच में जिस प्रकार शिर से लेकर पैर तक क्रमशः शरीर के समस्त मुख्य-मुख्य अवयवों की रक्षा के ब्याज से सम्पूर्ण शरीर रूप अखिल ब्रह्माण्ड का निरूपण किया गया है, उसी प्रकार राम के तत्तद् विशेषण रूप पर्यायों की योजना करते हुए रामायण के मुख्य-मुख्य पात्रों अर्थ च विशेष कथांशों का सङ्केत करते हुए सूक्ष्मतया सम्पूर्ण रामायण कथा की सूचना दी गयी है। रामायण कथा को सूचित करने में भी क्रम का निर्वाह किया गया है। अतः इन पांच श्लोकों को रामायणद्रुमाङ्कुर कहना समीचीन है।।५।।

तथा हि -

'मन्त्रह्रदात्कथाकुल्या विद्याकेदारमागता ।
मोक्ष (रस) स्य च प्रसूर्मध्ये पीयते कर्ममार्गगैः।।'

इदमाम्नायते -

"तुग्रो (ह) भुज्युमश्विनोदमेधे रयिन्न कश्चिन्ममृवाम वाह्यः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ।।"

तुग्रो नाम कश्चिद्राजा भुज्युसङ्ज्ञं स्वपुत्रमुदमेधे समुद्रे आवाह्यः प्रापितवान्। तत्र दृष्टान्तः-रयिं न कश्चिन्ममृवानिति। यथा कश्चिन्मृतः पुरुषो रयिं धनं तद्वत्। 'न' शब्दोऽत्र उपमार्थे। तं तथाभूतं भो अश्विनौ युवां नौभिः बह्वीभिर्नौकाभिः ससैन्यम् ऊहथुः तीरं प्रापयामासथुः। कीदृशीभिः - आत्मन्वतीभिः आत्मा स्वामी विद्यते यासां ताभिः स्वीयाभिरन्तरिक्षे गगनतुल्येऽर्णवे प्लवन्ते ताभिरन्तरिक्षप्रुद्भिः, अपोदकाभिः अपगतजलाभिः इत्यश्विदैवत्ये कर्मणि विनियुक्तस्यास्य मन्त्रस्य याज्ञिकाभिमतोऽर्थः कर्मसमृद्ध्यर्थः 'एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्मक्रियमाणमृगभिवदति' इति ब्राह्मणाच्च। तत्कामैरेवमेवायं व्याख्येयः। तथा, 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।।' इति मन्त्रेण सर्वासामृचां सर्वेन्द्रियदेवताधिष्ठान-भूतपरमव्यो-मशब्दितब्रह्मपरत्वावधारणात्, अतद्विदोऽध्ययनादेर्वैयर्थ्याभिधा-नोच्चाऽध्यात्मपरतयाप्ययं मन्त्रो व्याख्येयः। तदायमर्थः - तुक् अपत्यं राति स्वीयत्वेदादत्ते इति तुग्रः। पुत्राद्येषणावान् भुज्युं भुङ्क्ते पूर्वार्जितं कर्मफलं यौति च क्रियमाणेन कर्मणा मिश्रीभवति। भुज्युरात्मा तम् उदमेधतुल्ये संसारसमुद्रे प्राक्षिपत् भो अश्विनौ 'यो वैतत्काम्यसूत्रं विद्यात्तं चान्तर्यामिणमिति स ब्रह्मवित्' इति श्रुतिप्रसिद्धौ सूत्रान्तर्यामिणौ युवामाचार्यरूपेण नौभिः- 'तत्त्वमसि'- आदिवाणीभिः आत्मन्वतीभिरात्मैव प्रतिपाद्यो विषयो यासु ताभिः अन्तरिक्षेऽनालम्बने मार्गे हार्दाकाशे प्लवन्ते सञ्चरन्ति ताभिः सगुणब्रह्मलम्बनाभिः अपोदकाभिः उनत्ति आर्द्रं करोति असङ्गमपि सङ्गिनं करोतीत्युदकम् अज्ञानं तद्विरोधिनीभिरिति शेषं पूर्ववत्।

अत्र कथामालम्ब्य देवता स्तूयते। तत्रालम्बनीभूतानां तुग्रादिपदार्थानामनित्यानां संयोगेन वेदस्यापौरुषेयत्वं 'मा बाधिष्ठ' इति देवताधिकरणेऽवान्तरतात्पर्येण तेषां प्रतिकल्पं समानरामरूपाणामुत्पत्तिमभ्युपगम्य व्रीह्यादिपदार्थानामिव प्रवाहानादित्वमुक्तम्। चमसाधिकरणे त्वेवंजातीयकानां कथारूपकेण ब्रह्मविद्यायां मुख्यं तात्पर्यमिति निश्चीयते। तत्र हि, अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' इत्यादिषु मन्त्रेषु अजादिशब्दानां श्रौतार्थपरिग्रहे मन्त्रस्यधिगतार्थगमकत्वेनाप्रामाण्याद्वैयर्थ्यं मा भूदिति तेषां 'न जायत' इति योगेन मूलप्रकृत्यादिप्रतिपादकत्वमाशङ्क्य मण्डपं भोजये' त्यादौ मण्डपस्थजनवन्मण्डपायिनो झटित्यनुप्रस्थानेन रूढिपूर्वकलक्षणातो योगस्य दुर्बलत्वात् छान्दोग्यस्थानां रोहितादिरूपाणामन्यत्रेत्यभिज्ञानात् पराभिमतप्रकृतिग्रहणे विशेषहेत्वभावाच्च तेजोबन्नात्मिकाभूतप्रकृतिरजेवाजेति अजारूपकेणात्र प्रतिपाद्यत इति सिद्धान्तितम्। एवं रामायणस्य तन्मूलभूतानां मन्त्राणां च अवान्तरतात्पर्येण कथापरत्वं महातात्पर्येण

विद्यापरत्वं च वक्तुं युक्तम्। ननु, 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति; 'नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति'; यो देवानां नामधा एक एव' इत्यादि श्रुतिभ्यः परमतात्पर्यविषयीभूतस्य रामस्य सर्वैर्देवतावाचकैश्शब्दैरभिधानं युक्तम्। अवान्तरतात्पर्ये तु व्यवस्थाया आवश्यकत्वान्नान्यदैवतयो मन्त्रो रामकथां प्रकाशयितुमीष्टे। अथ हठात्तत्परत्वं वर्ण्यते तर्हि एकस्य शब्दस्यानेकार्थता स्यात्। सा चानिष्टेति चेदुच्यते, यथा एकैव रेखा स्थानभेदात् एकदशशतसहस्रादिव्यपदेशान् लभते, एवमेकमेव पदं वाक्यं वा पदान्तरवाक्यान्तरसमभिव्याहारादनेकमर्थं प्रत्याययति न च तावातानानार्थत्वं शब्दस्य सम्भवति, अपि तु वृत्तिभेद एव। तथा हि, एकमप्यमृतपदम्- 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।'

इत्यत्र कैवल्यवाचि; 'अपाम सोमममृता अभूम' इत्यत्र देवभाववाचि; 'प्रजामनुप्रजायसे तदुते मर्त्यामृतम्' इत्यत्र सन्तानवाचि दृष्टम्। यथा, वा, 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा' इति वाक्यम्; 'अबध्नन् पुरुषं पशुम्' इत्यव्यवहितातीतमन्त्रावयवेन जीवस्य सूक्तदेवतालोचनया परमेश्वरस्य चोपस्थितेर्जीवो ब्रह्मणि प्रविलापनीय इत्यर्थे पर्यवस्यति तदेव 'तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्, मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च' इत्येताभ्यां वाक्याभ्यामन्वीयमानं बर्हिःस्थेन पशुसोमादिना इन्द्राग्न्यादयो देवता यष्टव्या इति ब्रवीति तदेवाग्निमन्थनीयानामृचां परिधानीयायां विनियुज्यमानम्, 'यज्ञेनैव तद्देवता यज्ञमयजन्त यदग्निनाग्निमयजन्त' इति ब्राह्मणे व्याख्यातमर्थं ब्रवीति तत्राऽऽध्यात्मिकोऽर्थो मुख्यः उपेयत्वात् आधिदैविकस्तु तत्प्रत्यासन्नदमुख्यः, तृतीयस्तु सन्ततावमृतत्ववत् ध्यानयज्ञाङ्गभूतकर्म-यज्ञाङ्गयोरग्न्योर्यज्ञत्वमतिजघन्यं भवति तथा इन्द्रादिशब्दोऽपि बलवता रामलिङ्गेनोपहितः तमिदम् इन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याक्षते 'इदि परमैश्वर्ये' इति श्रुतिस्मृतिनिर्दिष्टं मुख्यवृत्त्या स्वार्थमभिधन्ते, स एव देवतालिङ्गोपहितस्तत्प्रत्यासन्नं शचीपतिं ब्रवीति; लक्षणया स एव पुनः 'ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठेत' इति श्रुत्या गार्हपत्योपस्थाने विनियुक्तायामृचि दृष्टो गौण्या वृत्त्या गार्हपत्यमभिधत्ते। किं चान्यत्र रूढोऽपि शब्दो लिङ्गबलादन्यमर्थं ब्रवीति। यथा, 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते' इति सर्वभूतोपादानत्वलिङ्गाद् भूताकाशपरोऽपि आकाशशब्दो जगत्कारणं ब्रवीति। तस्मादवान्तरतात्पर्यविषये कथायामपि बलवल्लिङ्गोपहितोऽन्यदैवत्योऽपि मन्त्रो राममेव ब्रवीति, न चानेकार्थतादोषः परिहृतत्वात्। ननु चमसाधिकरणन्यायेन कर्मस्वविनियुक्तानामजादिमन्त्राणां कैमर्थ्याकाङ्क्षिणामस्तु विद्यापरत्वम्, तुग्रादिमन्त्राणां तु कर्मसु विनियुक्तानां निराकाङ्क्षत्वात्र तद्युज्यते मानाभावात्। 'सर्वे वेदा ऋचो अक्षरे' इति श्रुत्योरपि वेदानामृचां च कर्मपरम्परयाऽपि यदाक्षरपरत्वक्लृप्तेर्नैकस्य तुग्रादिमन्त्रस्यार्थद्वयकल्पने प्रमाणभावं भजते नापि 'यज्ञेन यज्ञम्' इत्यत्रेवात्र वाक्यान्तरसमभिव्याहारोऽस्ति, नापि 'इन्द्रो मायाभिः' इतिवदस्य विद्याप्रकरणे पुनः

पुनः पाठोऽस्ति येन तद्वशादस्यापि वैयर्थ्यं स्यात्। तथा सति इषेत्वादि मन्त्राणामपि तत्कल्प्यं स्यात्तेन चात्यन्तं श्रुतिपीडाकर्मकाण्डोच्छेदो स्यातां तस्मान्मन्त्राणां रामायणमूलत्वे सम्भवत्यपि अध्यात्मपरत्वं न युज्यत इति चेन्न, एकस्मिन्नेव विषये प्रतिपत्तृभेदेन प्रतिपत्तिभेददर्शनात्। तथा हि, एकं रज्जुखण्डं कश्चित्सर्प इति, कश्चिद्दण्ड इति, कश्चिद् रज्जुरिति प्रत्यक्षेण प्रत्येति। एकं वा घटं कश्चिदसत्त्वेन कश्चिदनिर्वचनीयत्वेन तर्कबलात्प्रत्येति, तथा- 'य एषोऽक्षणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्म' इति प्रजापतिवाक्यादेकमेवात्मानं देहादिविशिष्टमेवामृतादिगुणभाक्त्वेन विरोचनः प्रतिपेदे, इन्द्रस्तु तत एव क्लेशेन देहत्रयातीतं तादृक्त्वेनेति दृश्यते। यास्कोऽपि - 'बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश' इत्यस्य बहुप्रजाः कृच्छ्रमापद्यत इति परिव्राजकाः, वर्षकर्मेति नैरुक्ता इत्येकमेव निर्ऋतिपदं द्वेधा व्याचष्टे। वर्षकर्मेत्यस्य व्याख्याभूमिमापद्यत इति तत्रैव ज्ञेयम्। तस्मादस्ति प्रतिपत्तिभेदादर्थभेदो मन्त्राणाम्। अतएव यास्कः स्थालीपुलाकन्यायेन कांश्चिनमन्त्रानधिदैवतमध्यात्मं च व्याख्याय सर्वेषामचेतनदेवतानाम-भिरध्यात्मपरतया व्याख्यानं कर्तव्यमित्याशयेनाह -"माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयत एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्त्यपि च सत्त्वानां प्रकृतिभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः प्रकृतिसार्वनाम्न्याच्चेतरेतरजन्मानो भवन्तीतरेतरप्रकृतयः कर्मजन्मान आत्मजन्मानः आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्वा आत्मायुधमात्मेषवः सर्वं देवस्य देवस्य" इति। एतदेवाभिप्रेत्य व्यासोऽपि आश्वमेधिकाध्यात्मे 'वृत्रेण पृथिवी व्याप्ता' इत्यारभ्य।

'ततो वृत्रं शरीरस्थं जघान भरतर्षभ।
शतक्रतुरदृश्येन वज्रेणेतीह नः श्रुतम्।।' इति।

अत्र वृत्रशतक्रतुवज्रशब्दानज्ञानजीवविवेकेषु प्रायुङ्क्त। वनादिरूपकेण च ब्रह्मान्यरूपयत्तत्रैव क्वचिदधिलोके दृष्टमप्यर्थं मन्दाधिकारिणेऽधिदेवतपरतया व्याचष्टे। यथोक्तम्- "के ये ते स्त्रियौ धाता विधाता ये च ते सिताः कृष्णाश्च तन्तवस्ते रात्र्यहनी" इत्यादिना। विद्वांसस्तु-

"द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिधामृतस्य।
अपुत्राग्ने मिथिनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।"

इत्यादीनामृचां संवत्सरोऽहोरात्रमात्रपरत्वेनानुवादसरूपत्वं मा भूदितीत्थं व्याचक्षते। षडिन्द्रियाणि षड्ऋत्वः ऋतावृतौ द्वौ द्वामासाविव प्रतीन्द्रियं रागद्वेषौ प्रतिमासं द्वौ पक्षाविव प्रतिरागं प्रतिद्वेषं च पक्षद्वयं यथा धर्मे रागः शुक्लः अर्थे कृष्णः, एवं धर्मे द्वेषः कृष्णः अर्थे शुक्ल इति। प्रतिपक्षं पञ्चदशतिथयः ताश्च सूर्यचन्द्रयो य सन्निकर्षविप्रकर्षतारतम्याद्भवन्ति तत्र सूर्य आत्मा चन्द्रः षोडशकला मनोरूपी अहमर्थः

कलाश्च प्राणः १, श्रद्धा, २, खं३, वायुः ४, ज्योतिः ५, आपो ६, भूः ७, इन्द्रियम् ८, मनः ६, अन्नम् १०, वीर्यम् ११, तपः १२, मन्त्राः १३, कर्म १४, लोकाः १५, नाम १६ च। तत्र नाममात्रावशिष्टं मनः सुप्तौ प्रलये च यदात्मनि सर्वाभिः कलाभिः सह निलीयते सा केवलतमोमयी अविद्या रात्रिर्दर्शः। तत्र विवेकेन यथा यथा कलानामात्मनः पृथगूभावः तथा बोधचन्द्रो वर्द्धते, या तु सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिः सैव सूर्यचन्द्रयोरत्यन्तविश्लेषरूपाविद्या पौर्णमासीति। ऋतस्य कर्मणः फलभूतं संसारात्मकं चक्रं तस्माद्विद्वद्दृष्ट्या ऋचां साक्षादक्षरपरत्वमविद्वद्दृष्टया तु परम्परयेति सिद्धम्। तदयं सङ्ग्रहः-

"एकैकस्मिन् यथादर्शे प्रासादो मुहुरान्तरैः।
सहितो दृश्यते देवेष्वेवं लोकः सुरान्तरैः।। १।।

तस्मात् स्युर्देवताः सर्वाः प्रत्येकं विश्वयोनयः।
अन्योऽन्ययोनयश्चैव यथा यास्कमुनीरितम्।।
अतस्तासां स्तुतिः सर्वा रामस्तुतिरसंशयम्।। २।।

बलवद्रामलिङ्गायां यत्किञ्चिद्देवतामृतम्।
रामायणानुसारेण व्याकुर्वन्नैव दुष्यति।। ३।।

विनियोगानुगो गौण्या वेदं व्याचष्ट भाष्यकृत् ।
तत्त्वानुगो मुख्यवृत्त्या व्याकुर्वे यास्कवत्त्वहम् ।। ४।।

ननु रामायणीया कथा कस्याञ्चिदपि शाखायां वृत्रवधादिवन्न दृश्यतेऽतोऽस्याः श्रुतिमूलत्वमेव नास्तीति चेत्, नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति-इति न्यायेन त्वयि वेदार्थानभिज्ञे सति न रामायणमपराद्ध्यति। ननु वेदभाष्येऽपि न रामायणकथासूचकत्वं कस्यचिदपि मन्त्रस्य पश्याम इति चेत्। नैष दोषः, विनियोगानुसारिणः कर्मस्वव्युत्पादनार्थस्य भाष्यकारीव्याख्यानस्य निगमनिरूक्तानुसारितात्त्वि-कव्याख्यानादूषकत्वात्। किञ्चात्यल्पमिदमुक्तमायुष्मता मन्त्रार्थवादैरपि कर्मणि रुच्युत्पादनार्थमनुपपन्नोऽप्यर्थः प्रजाया अमृतत्वमात्मवपोत्खननमित्यादिरूपन्यस्यते- 'प्रजामनुप्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्' इति; प्रजापतिरात्मनो वपामुदखिदत् इति च। एवं च कर्मस्तावकार्थवादानुसारिभाष्यकारीयं व्याख्यानममुख्यम्। अतएवोक्तं भारते-

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।।" - इति

तत्रोपबृंहणं नामैकत्र मन्त्रे तृचे सूक्ते वा दृष्टस्यार्थस्य संक्षिप्तस्य नानास्थानेषु विप्रकीर्णानां तदनुगुणानामर्थानामुपसंहारेण पुष्टिकरणम्। तच्च येन कर्ममात्रं न श्रुतं तेन

कर्तुमशक्यम्। अतस्तस्मादल्पश्रुताद्वेदस्य भयं युक्तम्। भगवानपि 'यामिमां पुष्पितां वाचम्'- इत्यादिनाऽर्थवादानां मोहकत्वं ब्रुवन् तदनुसारिणो व्याख्यानस्यानादरणीयत्वं दर्शयति मन्त्रवर्णा अपि नीहारेण प्रावृता जल्प्या चेत्यल्पो जल्पो जल्पी तुच्छार्थप्रतिपादिका वाक् तया प्रावृता इति अज्ञानेनार्थवादैश्च वञ्चिता इत्यर्थः। नन्वेवं तिष्ठतु भाष्यकारीया मर्यादा द्रव्यदेवतादिप्रकाशनद्वारा विध्यर्थं स्मारयतो मन्त्रजातस्य कथं कथासूचकत्वमुपपद्यत इति चेत्, सुतरामिति ब्रूमः। तथा हि-सर्वोऽपि मन्त्र आध्यात्मिकीमाधिदैविकीं वा कथामुपजीव्यैव कमाङ्गं स्तुवन् विध्यर्थं स्मारयति। यथा-

'यत्कृष्णो रूपं कृत्वा प्राविशस्त्वं वनस्पतीन् ।
ततस्त्वामेकविंशतिधा सम्भरामि सुसम्भृत ।।'- इति मन्त्रः

कृष्णाख्यब्रह्मरूपस्त्वं रूपप्रपञ्चं निर्माय स्थावरजङ्गमात्मकं तं प्रविश्य तत्र तद्वस्तुतादात्म्यापत्या समिद्रूपोऽसि ततो हेतोस्त्वामेकविंशतिधा सम्भरामीति-'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्, तदनुप्रविश्य सच्चित्यच्चाभवत्'- इति ब्राह्मणोक्तकथाप्रदर्शनपूर्वकं समिधां कृष्णभावमापादयत् तासां सम्भरणं स्मारयति। यथा वा- 'यस्य रूपं बिभ्रदिमामविन्दद् गुहां प्रविष्टा 'सरिटस्य मध्ये। तस्येदं विहतमाभरन्त'-इति मन्त्रो यस्य वराहस्य रूपं धारयन् परमेश्वरो भूमिं समुद्रमध्ये निगूढस्थाने प्रविष्टामलभत् तेनेदमुत्खातं मृत्खण्डमाभरन्तो वयमिति वाराहावतारकथाप्रदर्शनपूर्वकं वराहविहितं स्तुवन् तत्सम्भरणं स्मारयति। ऐतनैव प्रकारेण- 'इषे त्वोर्जे त्वा' - इत्यादयोऽपि मन्त्रा व्याख्येयाः। तत्र हि-'इषे त्वोर्जे त्वा'- इति, 'शाखामाच्छिनति' इति विनियोगात्, हे शाखे भो स्वसृष्टशाखान्तःप्रवेशेन तत्तादात्म्यापन्नपरमेश्वर त्वाम् इषे अन्नाय, 'अन्नं विराडि'ति श्रुतेर्विराड्भवाय ऊर्जे रसाय, 'रसो वैसः', -इति श्रुतेः परमानन्दप्राप्त्यैव च्छेदनेनावाप्नवानीति। एतेन, 'ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीः, श्रृणोत ग्रावाणः, लोभभ्यः स्वाहा, चङ्क्रमणाय स्वाहा'-इत्यादयोऽचेतनार्थे सम्बन्धाभ्येतन-प्रवेशतत्तादात्म्यापत्तिपरतया व्याख्येयाः। एवं हि व्याख्याने क्रियमाणे, 'पुरुष एवेदं सर्वम्'; 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'; 'सर्वे वेदायत्पदमामनन्ति'; 'इमानि सर्वाणि यमाविशन्ति'; 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन' इत्यादयः श्रुतयः सर्वस्यात्ममात्रत्वे सर्वेषां शब्दानां तत्प्रतिपादनपरत्वं च दर्शयन्त्यः समञ्जसा भवन्ति। तत्र यः सम्भरणादिकं कर्मैव प्रशंसति स कर्मठोऽल्पश्रुतः, यो वराहं स उपासको मध्यमः, यः कृष्ठां स तत्त्वज्ञ उत्तमः, कर्मोपास्तिज्ञानकाण्डानामुत्तरोत्तरस्य प्रशस्तत्वात्, न हि येन सम्भरणस्य महत्त्वं सोऽर्थः सम्भरणादमहानिति सम्भवतीति सहृदयग्राह्यमेतत्। तत्रैवं सति भाष्यकारीयं व्याख्यानं-हे शाखे त्वां लौकिकयोरन्नरसयोः प्राप्त्यर्थं छिनद्मीति क्रियमाणच्छेदनप्रशंसार्थमीदृशमिदं शाखाच्छेदनं येनाऽन्नरसौ लभ्येते इति सोऽयमर्थः कर्मजडानां रुचिकरोऽपि पूर्वोक्तस्यार्थस्य प्रत्यक्षश्रुतिशिखरमूलस्य सहृदयग्राह्यस्य न

बाधकः। किञ्च, विनियोगमात्रात् स्वार्थमुत्सृज्य केवलकर्मपरत्वं मन्त्रस्य न वक्तुं शक्यते। तथाहि– 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्यपां सुरे' – इत्ययं मन्त्रो वाङ्नियमलोपप्रायश्चित्तार्थं जपे सर्वप्रायश्चित्तार्थमाज्यहोमे वैष्णवो (?) पांसुयाजस्य पुरोनुवाक्यत्वेन च विनियुज्यते; न चात्र तदनुकूलं किञ्चिल्लिङ्गं दृश्यते येन विनियोगभेदेन व्याख्यानभेदोऽत्र कल्पयितुं शक्यते, किन्तु केवलं विष्णोर्माहात्म्यमुच्यते, इदं त्रैलोक्यं पदत्रयेण विष्णुरतिक्रान्तवान्न तच्चित्रं यतस्तदस्य पांसुमति पदे पांसुरूपेण सम्यगारूढमिति ।न चैतेषां व्याख्यानम्– 'इषे त्वा'– इतिवद्विनियोगमात्र-विदायुष्करवराहवामनप्रादुर्भावान् ऐतिहासिकानजानता कर्तुं शक्यम्। द्वितीये, 'आज्यैः स्तुवते, पृष्ठैः स्तुवते, प्रउगं शंसति, निष्कैवल्यं शंसति'– इत्यादौ स्तुतशस्त्रयोस्तु संस्कारो 'याज्यावद्देवताभिधानत्वात्' इति सूत्रेण; यथा याज्या देवताभिधानरूपया दृष्ट्यैव द्वारा इष्टदेवतास्मारकत्वेन प्रधानयागसंस्कारार्था, एवं स्तोत्रशस्त्रे अपि मन्त्राणामन्यत्र क्लृप्ताया दृष्टार्थताया लङ्घनीयत्वादिति प्राप्याप्यपि वा श्रुतिसंयोगास्त्रकरणे 'स्तौतिशंसती क्रियोत्पत्तिं विदध्यताम्' इति सूत्रेण स्तुतेः श्रुतिप्रकरणाभ्यां प्रतीयमानं साध्यत्वमुल्लङ्घ्याश्रुतस्य संस्कारसाधनस्य कल्पनायोगात् याज्यायास्तु प्रकरणादिना यागाङ्गत्वसिद्धेर्दृष्टार्थत्वौचित्यात्तस्याचेण (?) होयागात्प्रधानकर्मणी स्तौतिशंसती इति स्तुतशस्त्राधिकरणे स्तोत्रशस्त्रयोः स्तुत्येकप्रयोजनत्वस्यसाधितत्वात्तत्सामान्यादितरस्यापि वेदभागस्य देवता स्तुतिप्राधान्येनैव प्रयोगसमवेतार्थस्मारकत्वमपि युक्तमेकरूप्यलाभात् तस्माज्जडानां कर्मसु यथा कथञ्चिद्रुच्युत्पादनार्थो भाष्यकारमते वेदे रामकथाया अदर्शनेऽपि निगमनिरुक्तोपबृंहणादिसिद्धायास्तस्या अपलापायोगात् अव्युत्पन्नाग्राह्यत्वेऽपि व्युत्पन्नग्राह्यत्वात्सिद्धं रामायणस्य श्रुतिमूलत्वमतस्तन्मूलमन्त्रेष्वपि रामायणे इव कथांशः प्रत्यक्षवृत्त्या लभ्यते, अध्यात्मांशः परोक्षवृत्त्येति भाष्यकारीयव्याख्यानेन सह एकैकस्य मन्त्रस्य त्रेधा व्याख्यानं क्रियते। तत्र 'कं नश्चित्रमिषण्यसि' इत्यादयः षट्, 'इषुर्न धन्वन्' इत्यादयः सप्तचत्वारिंशत्, 'तां सुते कीर्तिम्' इत्यादय एकविंशतिः, 'पूर्वापरं चरतः' इत्यादयोऽष्टाविंशतिरित्येवमादयः परः सहस्रं प्रघट्टका रामकथां प्रकाशयन्त्युर्वशीपुरुरवःसंवादादिवत् यथा 'ह्ये जाये मनसा' इत्यष्टादशर्चे सूक्ते उर्वशीपुरुरवसोः संवादरूपा कथा यथा वा, 'ओचित्सखायम्' इति चतुर्दशर्चे सूक्ते यमयम्योः संवादरूपा, तद्वत् तत्र 'कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्' इति द्वादशर्चं सूक्तं विखनसः पुत्रस्य वम्रस्यार्षं तथा चानुक्रातं कं नो वम्रो वैखानस इति विखनाः ब्रह्मा 'विखनसार्थितो विश्गुप्तये' इति भागवते तत्र विखनः शब्दप्रयोगदर्शनात् वम्रीपदेन च वम्रीभिरनुवित्तं गुहास्विति वल्मीकवया (?) सम्भरणमन्त्रलिङ्गात् वल्मीककारिणो जन्तुविशेषा उच्यन्ते। ताभिर्वल्मीकगर्भस्थतामापादितो मुनिर्वाल्मीकिः स एवात्र वम्र इत्युच्यते। यथा वल्मीकशब्दादपत्यप्रत्ययः एवं वम्रीशब्दादपि गोत्रप्रत्ययस्तस्य

लुक् शब्दसाधुत्वार्थं ज्ञेयः। वाल्मीकिश्च ब्रह्मपुत्रो रामायणस्य कर्तेति स्कान्दे पार्वतीं प्रतीश्वरवाक्यं स्मर्यते-

"वाल्मीकिरभवद् ब्रह्मा वाणी वाक् तस्य रूपिणी ।
चकार रामचरितं पावनं चरितव्रतः।।" इति ।।

ते कं न' इति सूक्तस्य रामायणस्य चैकार्षेयत्वं सिद्धम्। देवता तु तयोरिन्द्ररामशब्दाभ्यां निर्दिष्टः परमेश्वर एक एव। यथा च रामायणीये प्रथमेऽध्याये प्रश्नपूर्विका संक्षिप्ता रामकथाऽस्ति तथाऽस्मिन्नपि पञ्चर्चे इत्यनयोर्मूलिमूलभावः सिद्धो व्याख्याय प्रदर्श्यते। तत्रेयमाद्या ऋक् 'कं न' इति। अत्र वम्रः स्वस्य गुरुं कल्पयित्वा तु पृच्छान् तस्योत्तरमुखेनेश्वरं स्तौति-

(अथारभ्यते मन्त्ररामायण्)

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्
पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै।
कत्तस्य दातु शवसो व्युष्टौ
तक्षद्वज्रं वृत्रतुरपमपिन्वत्।। १।।

भो गुरो! त्वं चिकित्वान् स्तुत्यं पुरुषं जानन् कं चित्रादिगुणवन्तं वावृधध्यै वर्धयितुं पराक्रमादिभिः स्तोतुमस्मान् इषण्यसि प्रेरयसि। चित्रं रमणीयं पृथुग्मानं पृथून् निरवधिकनृतत्त्वयुक्तान् शौर्यवीर्यादीन् गतान् प्राप्तान् ब्रह्मादीन् मिमीते परिछिनत्तीति तं पृथुग्मानं निरतिशयैश्वर्यं वाश्रं वर्णनीयं तथा तस्य पुरुषस्य सम्बन्धिनः शवसः बलस्य व्युष्टौ प्रकाशे मया कृते सति तस्य कत् किं दातु दानं स्तुतः सन् सः नः किं फलं दास्यतीत्यर्थः। एवं कः स्तुत्यः किञ्च स्तुतिफलमिति पृष्ठे प्रथमं प्ररोचनार्थं फलं दर्शयति तक्षदिति। अश्वमेधपर्वणि -

'ततो वृत्रं शरीरस्थं जघान भरतर्षभ ।
शतक्रतुरदृश्येन वज्रेणेतीह नः श्रुतम् ।।'-इति कृष्णवाक्ये

इन्द्रवृत्रवज्रशब्दैरात्ममोहकविवेका उच्यन्ते। एतैरेव सङ्केतैः कृत्स्नो वेदो व्याख्येय इत्येवमर्थः। ततश्च वज्रं स्तोतुर्विवेकं तक्षत् तनुकुर्वन्। अमभावश्छान्दसः। तेन सूक्ष्मार्थभेदिना वृत्रतुरं स्वाज्ञानहन्तारं तमपिन्वत् अतर्पयत् स्तुत्या तुष्टः सन् तं विवेकं ददानि येनाज्ञाननाशादनर्थनिवृत्त्यानन्दावाप्ती भवत इति पक्षे ब्रह्म व्याहरन् ब्रह्मैव भवतीति विषयप्रयोजने दर्शिते।।१।।

हिन्दीभाषानुवाद - (हे गुरु!) महापौरूषसम्पत्र (निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न), विचित्र

(आश्चर्यमय) गुणों से अन्वित, वर्णनीय, स्तुतियोग्य किस पुरुष को जानते हुए पराक्रमादि से (उसकी) वृद्धि करने के लिए उसकी स्तुति करने के लिए हमें प्रेरित कर रहे हैं? (हमारे द्वारा) उनके बल का प्रकाशन किए जाने पर हमें उससे क्या (फल) प्राप्त होगा? (उत्तर) अज्ञान का हन्ता (विनाशक) वह स्तुति से सन्तुष्ट होकर सूक्ष्मार्थ का भेद करने वाला पैना विवेक (प्रदान करेगा)।।१।।

टिप्पणी - मन्त्र रामायण की प्रस्तावना में टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि जैसे वेद में संवादरूपा उर्वशी-पुरूरवा कथा अथवा यम-यमी-कथा वर्णित है, इसी प्रकार वेद में रामकथा भी उपनिबद्ध है।

मन्त्र रामायण का आरम्भ ऋग्वेद के दशम मण्डल के निन्यानबेंवे सूक्त के प्रथम मन्त्र से हुआ है। इस सूक्त के द्रष्टा ऋषि विखनस् के पुत्र 'वम्र' हैं। छन्द त्रिष्टुप् है और देवता इन्द्र हैं।

मन्त्र रामायण के टीकाकार ने विखनस् (विखनाः) का अर्थ ब्रह्मा किया है और 'वम्र' का अर्थ वाल्मीकि। वस्तुतः 'वम्र' का अर्थ होता है चींटी। चींटी मिट्टी के कणों से 'बांबी' (वल्मीक) का निर्माण करता है और उसी में रहता है। ऋषि भी उसी वल्मीकगर्भ में तपोनिरत रहने के कारण वम्र अर्थात् वाल्मीकि कहे गए। वाल्मीकि ब्रह्मा के (मानस-) पुत्र थे। अतः यहां विखनस् पुत्र वम्र का अर्थ ब्रह्मापुत्र वाल्मीकि ही है। यही वाल्मीकि रामायण के कर्ता हैं। स्कन्दपुराण में भगवान शिव ने पार्वती से कहा है कि वाल्मीकि ने पावन रामचरित का कथन किया है।

जिस प्रकार रामायण के प्रथम अध्याय में प्रश्नपूर्वक संक्षिप्त रामकथा का वर्णन किया गया है उसी प्रकार यहां मन्त्र रामायण के प्रारम्भ में भी रामकथा का आरम्भ प्रश्नपूर्वक हो रहा है। वहां वाल्मीकि ने देवर्षि नारद से लोकोत्तर गुणों से मण्डित महापुरुष के विषय में जिज्ञासा की है जिसके लोकपावन चरित का वर्णन वे करना चाहते हैं। मन्त्र रामायण (सङ्कलन) कर्ता ने भी यही दृष्टि यहां रखी है। टीकाकार ने इस विषय में स्पष्टीकरण दिया है कि वम्र अपने गुरु की कल्पना करके उनसे पूछते हुए उनके द्वारा प्रदत्त उत्तर से ईश्वर की स्तुति कर रहे हैं।

टीकाकार ने प्रस्तुत सूक्त और रामायण का (द्रष्टा और कर्ता) एक ही ऋषि (वम्र= वाल्मीकि को) सिद्ध किया है तथाउनका यह भी मानना है कि इन्द्र और राम इन दोनों के द्वारा निर्दिष्ट वही एकमात्र परमेश्वर है। इस प्रकार 'मन्त्र रामायण' के द्वारा रामकथा का बीज वेद में प्रमाणित किया गया है। टीकाकार के अनुसार इस मन्त्र में विषय और प्रयोजन प्रदर्शित किया गया है। विषय है ब्रह्म और प्रयोजन है ब्रह्मत्व की प्राप्ति। सिद्धान्त है- 'ब्रह्म की उपासना करते हुए ब्रह्म को जानकर ब्रह्म ही हो जाता है।'

स हि द्युता विद्युता वेति साम
पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद।
स सनीकेभिः प्रसह्यनो अस्य
भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः।। २।।

अथ स्तुतिस्वरूपं च दर्शयति- स हीति।। घनश्यामः पुरुषः राम इति कथासम्बन्धवशादवसीयते। हि प्रसिद्धः प्रत्यगात्मतवात्। द्युता स्वस्य दीप्त्या शक्त्या विद्युता तयैव विद्युद्वत् पृथग् विग्रहया सह साम अपगतं द्रोहं यथा स्यात्तथा वेति गच्छति देशान्तरमित्यर्थात् 'ऋभ्या सह गयम् आगात्' इत्युपसंहारात् ऋभ्या देव्या सीतया गयं गृहं तत्र च अस्य पृथुं पृथ्वीं योनिं जायां सीतां जायेदस्तंमद्यवत्सेदुयौनिरिति(?) महीं देवीं विष्णुपत्नीमजूर्यामिति च लिङ्गात् असुरत्वा आसुरधर्मेण चौर्यधर्मेणेत्यर्थः आससाद अर्थादसुरः रावणाख्यः चोरयित्वा नीतवानित्यर्थः। हनुमदादिभिः स रामः सनीडेभिस्समाननीडैः स्वलोकवासिभिः पार्षदैः अन्नं ' मुषायन्' इत्युपसंहारात् अन्नं पृथिवीं यसीतामित्यर्थः सह अस्य जायाहर्तुर्मायाः नागपाशबन्धादिरूपाः प्रसहानः प्रकर्षेण सहते तस्य सर्वाः मायास्तेन सह युद्धप्रसङ्गे नाशितवानित्यर्थः। तत्र हेतुः यतो मायाः ऋते सत्ये श्रीरामभद्रे न सन्तीति शेषः। मायावशं हि मायाः परकीया बाधन्ते न निर्मायमित्यर्थः। कथम्भूतस्यास्य सप्तथस्य सप्तमस्य भ्रातुर्भागहर्तुः सोदर्यौ हि भ्रातरौ पित्रा व्यवधानादन्योन्यस्मात्तृतीयौ तत्पुत्रौ पञ्चमौ पौत्रौ सप्तमौ तथा च विष्णोः कश्यपमरीचिब्रह्मपुलस्त्यविश्रवः क्रमेण रावणः सप्तमः सस्माच्च स इति इत्थमधिलोकं मन्त्रस्यार्थः, अयमेवाधिदैविकाऽर्थः।। २।।

हिन्दीभाषानुवाद - वह (श्रीराम) अपनी कान्ति और शक्ति (सीता) के साथ प्रसन्नतापूर्वक (वन में) चले गए (वहाँ) पृथिवी पुत्री (सीता) को आसुरधर्म ने प्राप्त कर लिया (अर्थात् रावण ने हरण कर लिया)। (तत्पश्चात्) उस (महापुरुष श्रीराम) ने अपने लोकवासी पार्षदों हनुमान् आदि की सहायता से भाई के भाग को छीनने वाले रावण की माया का सामना करते हुए (उस को विनष्ट कर दिया क्योंकि) सत्यस्वरूप राम में (माया का वश) नहीं (चलता)।।२।।

टिप्पणी - 'सप्तथस्य' का अर्थ 'सप्तमस्य' करते हुए टीकाकार ने इसे रावण के लिए संकेतित माना है। विष्णु से आरम्भ करके कश्यप, मरीचि, ब्रह्मा, पुलस्त्य, विश्रवा के क्रम से रावण सातवां हुआ।

टीकाकार ने 'वेति' का अर्थ 'गच्छति' किया है। 'वा गतिगन्धनयोः' (अदादि) और 'वा गतिसुखसेवनयोः' (चुरादि) (किन्हीं के मत में 'वात' भी) ये दो धातुयें हैं। प्रथम का रूप 'वाति'-इत्यादि बनता है। हेमचन्द्र के मतानुसार 'वेति' भी बनेगा।

स वाजं यातापदुष्पदायन्-
स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो
घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभिवर्पसाभूत।। ३।।

अथाध्यात्ममप्युच्यते स वाजमिति।। स निरस्तसमस्तमायः श्रीरामभद्रः अनर्वाश्वयुक्तवाहनहीनो वाजं सङ्ग्रामं याता गन्ताऽभूत्। कीदृशः? अपदुष्पदायन् अपगतं दुःस्थितं पदं स्थानं कष्टककर्दमसलिलाद्यनाक्रान्तं यस्मात्तेन अपदुष्पदा तेजरूपेण पथायन् गच्छन् लङ्कामित्यर्थात् स्वर्षात् इन्द्रादिलोकानां विभाजको विष्णुः शतदुरस्य शतद्वारस्य सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः द्वाववाञ्चौ नाभिर्दशमीति प्रतिवदनं दशद्वारत्वाच्छतद्वारो रावणो नाभ्यादिस्थानेष्वपि तत्तन्मुखद्वाराऽत्र रसागमनस्येष्टत्वात् मुखसङ्ख्यानि प्रच्छन्नापि द्वाराणि सन्तीति ज्ञेयम्। तस्य वेदो धनं लङ्काराज्यं सनिष्यन् तद्भ्रात्रे विभीषणाय विभजिष्यन् परिषदत् स्वेष्टजनेन परिवृतो न्यषीदत् उपविष्टवान्। कीदृशः? शिश्नदेवान् कामुकान् रावणादीन् घ्नन् नाशयन् वर्पसा स्वरूपेण अभ्यभूत् अभिभावितवान्। सेतुमार्गेण लङ्कां गत्वा दारहर्तारं हत्वा परिजनेनावृतः शत्रुधनानि तद्भ्रात्रे समर्पितवानित्यर्थः।। ३।।

हिन्दीभाषानुवाद - (सभी प्रकार की माया को समाप्त कर देने वाले) वे श्रीराम, अश्वयुक्तवाहन से हीन अर्थात् रथविहीन (पैदल ही) सेतुमार्ग से चलकर (लङ्का में पहुंचकर), अपने लोक के (स्वर्गलोक के) परिजनो से घिरे हुए, शतद्वार रावण के धन को उसके भाई (विभीषण) को बांटते हुए कामुक रावणादि का वध करके विराजमान हुए।।३।।

टिप्पणी - मन्त्र में आये हुए 'शतदुरस्य' पद का अर्थ 'शतद्वारस्य' करते हुए टीकाकार ने इसे रावण का वाचक कहा है। रावण 'शतद्वार' कैसे है? इसका विश्लेषण करते हुए टीकाकार ने रावण को दशवदन मानकर प्रत्येक वदन में दस द्वार निरूपति करके रावण को, १० x १० =१०० (शत) द्वार सिद्ध किया है।

टीकाकार ने मन्त्र में आये हुए 'शिश्नदेवान्' का अर्थ 'कामुकान् रावणादीन्' किया है। ऋग्वेद में अन्यत्र (७.२१.५) में भी यह पद आया हुआ है। इसका प्रयोग सदैव बहुवचनान्त है। ऋग्वेद में इसका अर्थ 'शिश्न = लिंङ्ग को देवरूप में मानने वाले' है। लिङ्गपूजा के प्रचलन का मूल इससे ही माना जा सकता है। रावण राक्षस होने के कारण देवयोनि का प्राणी (रक्षा देवयोनयः अमरकोष, १.१.११) और शिवलिङ्ग का पूजक भी था।

स यह्वोवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथाद्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ।। ४ ।।

अपदुष्पदायन्नित्येतद्विवृणोति स यह्व इति।। स रामो यत्र स्थाने घृतं क्षरणस्वभावं घृतं वाः वारि द्रोण्यश्वासः द्रोणयो नाव एवाश्वा इव गतिसाधनानि येषां सन्ति ते तथाभूताः एव ईरते गच्छन्ति यत्र च युज्यासः सखायो वानराः अपादः पादचाराभावात् पादहीना इव एवम् अर्थाः भवन्ति। तत्रापि महार्णवस्थाने यह्वः महतीः अवनी सस्रिर्विस्तीर्णान् भूप्रदेशान् संसार। 'अद्रिगमहन्' इति किन् प्रत्ययो लिङ्वद्भावश्च। जलेऽपि सेतुं कृत्वा स्थलत्वं सम्पाद्य चचारेत्यर्थः। यासु प्रधन्यासु सङ्ग्रामयोग्यासु गोषु भूमिषु अर्वागच्छन् आजुहोति अत्यर्थं दानहोमादिकं करोति ताः अवनीः सस्रिरित्यन्वयः । दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतं सेतुं कृत्वा सपरिवारस्तेन गच्छतीत्यर्थः।।४।।

हिन्दीभाषानुवाद - क्षरणशील जल से भरे हुए जिस (सागर) में सहायक (मित्र) वानरादि रथहीन और पदहीन (हो जाते हैं अर्थात् तैर कर जाते हैं) नाव रूप अश्व चलते हैं (गमन के साधन हैं); (उस महासागर में) उन श्रीराम ने सुविस्तृत भूमिका निर्माण किया और उन सङ्ग्रामयोग्य भूमियों में चलते हुए यज्ञादि सम्पन्न करने लगे।। ४।।

टिप्पणी - टीकाकार ने इस मन्त्र की व्याख्या में राम द्वारा सागर पर सेतु निर्माण रूप अर्थ का प्रतिपादन किया है। टीका के अन्त में निष्कर्षतः कहते हैं कि श्रीराम ने दश योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा सेतु बांधकर मित्र सेना समेत सागर के पार प्रयाण किया।

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा
हित्वी गयमारे अवद्य आगात्।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री
अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन्।। ५।।

स रुद्रेभिरिति ।। सः रामः रुद्रेभिः हनुमदादिभिः सहायैः ऋभ्वा ऋतेन भासनया देव्या सीतया सह गयं स्वस्थानम् आगात् आगतवान्। कीदृश? आरे अवद्य दूरनिरस्तदोषः सीतां रावणहृतां सर्वदेवसन्निधौ संशोध्यत्यर्थः। किं कृत्वा गयम् आगात्? अशस्तवारोहित्वी प्रतिकूलकाले गृहं हित्वा पुनर्देव्या सहागादित्यर्थः। एतत्सर्वं सभविष्यं रामायणं वम्रस्य वाल्मीकेः सम्बन्धिनौ शिष्यौ मिथुनौ द्वौ कुशलवौ विवव्री तस्मादधीत्य लोके विशेषेण वितृतवन्तौ इत्यहं मन्ये जानामीति मन्त्रद्रष्टुरुक्तिः। तत्र भविष्यमाह-अन्नमिति । मुषायन् स्तेनो रावणः अन्नं पृथिवीं तद्रूपां सीताम्।

अन्नशब्दः पृथिव्याम्; 'ता अन्नमसृजन्त' इति छान्दोग्ये। दृष्टः अभीत्य अभ्येत्य अरोदयत। रावणस्पर्शनिमित्तापवादपरिहारार्थं रामेण त्यक्ता सीता रोदनं कृतवतीत्यर्थः।। ५।।

स अत्र ऋभ्वा सह गयमगादित्युपसंहारो विद्युता सहवेतीत्युपक्रमस्य, अन्नं मुषायन्नित्युपसंहारो योनिमाससादेत्युपक्रमस्य, दूरे अवद्य इत्युपसंहारोऽसुर-स्पर्शनिमित्तकार्थिकानां कायाश्वानुकूल इत्युपक्रमोपसंहारयोरैक्यैकरुप्यादिदं मन्त्रचतुष्टयात्मकमेकं वाक्यं परमपुरुषप्रतिपादकं तद्विषयश्च प्रश्नः प्रथममन्त्र इति मन्त्रपञ्चकमिदं रामायणसङ्क्षेपपरमिति वाक्यार्थमर्यादाविदो विदांकुर्वन्तु।। ५।।

हिन्दीभाषानुवाद - प्रतिकूल समय में अपने घर का त्याग कर (वन में) गए हुए वे श्रीराम, अपने हनुमदादि सहायकों समेत सत्य के तेज से प्रकाशित सीता के साथ पुनः अपने घर (अयोध्या) वापस आ गए। (पुनः) रावण के स्पर्शनिमित्त अपवाद का परिहार करने के लिए श्रीराम द्वारा (वन में) परित्यक्त सीता रोने लगी। (मैं मन्त्रद्रष्टा, ऐसा) मानता हूँ कि यह सब रामायण-वृत्तान्त महर्षि वाल्मीकि के दोनों शिष्यों-कुश और लव ने उनसे जानकर लोक में विशेष रूप से विवृत किया (विस्तृत रूप से गाया, प्रचारित किया)।। ५।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त पांच मन्त्रों द्वारा रामायण की संक्षिप्त कथावस्तु (अथवा सारांश प्रस्तुत किया गया है। इन मन्त्रों का मूलस्थान ऋग्वेद के दशम मण्डल का ९९वाँ सूक्त है। उक्त सूक्त में मन्त्रों की क्रम-संख्या १ से ५ है।

प्रथम मन्त्र प्रश्नात्मक है, जिसमें परमपुरुष (ब्रह्म के अवतार) श्रीराम के विषय में जिज्ञासा की गयी है। शेष चारों मन्त्रों, 'विद्युतासह' से 'ऋभ्वा' सह गयमगात्' तक, 'योनिमाससाद' से 'अन्नं मुषायन्' तक, 'असुर-स्पश' से 'दूरे अवद्य' इत्यादि तक; की जो एक वाक्यता है, वह उसी परमपुरुष (की कथा) का प्रतिपादन करती है।

इस प्रकार यह 'मन्त्रपञ्चक' इस मन्त्ररामायण का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए, इसमें उपनिबद्ध रामकथा का प्रस्तावक भी है।

एवं मन्त्रपञ्चकस्य प्रत्यक्षवृत्त्या कथापरत्वेऽपि परोक्षवृत्त्या विद्यापरत्वमपि रामरक्षास्थराघवादिपदानामिवास्ति तत्प्रदर्श्यते स्थालीपुलाकन्यायेन कृत्स्नो वेद एवमेवाधिदैवमध्यात्मं च व्याख्येय इत्येवमर्थं तत्र प्रथममन्त्रे यो मुमुक्षूणां स्तव्यः पुमानुक्तस्तस्याध्यारोपाय चाद्याभ्यां तत्त्वं दर्शयति-स होत्यादिना। स हि स एव स्तुत्यः पुमान् द्युता प्रकाशमानया विद्यया, विद्युता विपरीतप्रकाशया अविद्यया च सहसामस्वसृष्टं कृत्स्नं जगत् वेति गच्छति अन्तर्यामिरूपेण जीवरूपेण च स्वसृष्टं समष्टिव्यष्टिरूपं क्षेत्रं प्रविशतीत्यर्थः सामशब्द ऋक्सामाख्यद्विष'[1] (?) वाची, 'सैव नाम

१. 'द्विपद'-पाठ रखने पर अर्थसङ्गति कुछ बन सकती है।

ऋगासीदमो नाम साम' इत्यवयवार्थमुक्त्वा 'यद्वैतत्सावाऽमश्च समभवतां तत्साम्नः सामत्वम्' इति निर्वचनश्रवणात्। ऋक्सामशब्दश्चाधिदैविकमाध्यात्मिकं च प्रपञ्चं वाक्ति-''इयमेवर्गाग्निः सामवागेवर्क्प्राणः साम'' इत्यादि श्रुतेः। एवम् अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य, 'नामरूपे व्याकरणवाणि' इति श्रुतेः। जीवेन सहितस्य नामरूपव्याकर्तुः परमेश्वरस्य प्रवेशोऽपि तेजोबन्नात्मके प्रपञ्चे गम्यते। तथा- पृथुं कारणापेक्षया स्थूलं योनिं प्रवेशस्थानं शरीरं 'योनिष्ठ इन्द्र निषदे अकारि' इति मन्त्रवर्णादत्र योनिः स्थानम् असुरत्वा असुषु प्राणेषु रममाणत्वेन विरोचनमतेन 'आत्मैवेहमहप्य' (?) इत्यादिना श्रुतेन आससाद प्राप्तवानविद्यावान् देहंप्रविश्य तद्रूपोऽभवत्। तथा च- ''ब्रह्माणं तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्'' इति मूर्तामूर्तप्रपञ्चात्मकोऽभवदित्यर्थः। ततश्च तमेव प्रेयासं मन्यते नात्मानमिति जीवस्य बद्धत्वमुक्तम्। ईश्वरस्य देहिनः प्रविष्टत्वेऽपि तदसङ्गित्वमाह-ससनीळेभिरिति। शुद्धसत्त्वोपाधिरीश्वरस्तस्य सनीडाः समानगृहाः निरतिशयधर्मज्ञानवैराग्यादयः सात्त्विकास्तैः सहायैः स ईश्वरोऽस्याविद्यावतो जीवस्य मायाः देहाद्यात्मभावान् प्रसहानः सोढवान् तैर्नाभिभूतोऽभून्नापि तान्प्रत्याख्यत् असङ्गोदासीन साक्षिरूपत्वात्। तत्र हेतुः ऋतेनेति- यतः ऋते अबाधितानन्दस्वरूपे न मायाः सन्तीति शेषः। कथम्भूतस्य सप्तथस्य सप्तमस्य। भ्रातुः तत्र प्रथमं सच्छब्दितं शुद्धं द्वितीयम् ईक्षितृमायाशबलं तृतीयचतुर्थपञ्चमानि तेजोबन्नानि षष्ठस्त्रिवृत्कृतानां तेजोबन्नानां सङ्घातः साक्षी वा। सप्तमो जीवः, भ्रातृत्वं चिद्रूपत्वेन बिम्बप्रतिबिम्बवत् सादृश्यात्। एवमध्यारोपितस्य प्रपञ्चस्यापवादार्थं द्वाभ्यां साधनकलापमाह- सवाजमिति। अत्र विद्यायाः सैनिकाः शमाद्याः अविद्यायाः कामाद्याः परस्परं सहजशत्रवः। तत्र पूर्वेषां दौर्बल्ये योगसङ्ग्रामस्य प्रसक्तिरेव नास्ति साम्ये त्वस्तीत्याह - स इति। स अविद्यावान् अपदुष्पदा मार्गेण यन् जं (?) याता यास्यति।

निषिद्धकाम्यकर्मणी हि नरकनश्वरसुखप्रदत्वाद्दुष्येते तद्वर्जितेन ईश्वराराधनमार्गेण सञ्चरन् योगयुद्धयोग्यो भवतीत्यर्थः। एतेन कर्मणां प्रत्यक्प्रावण्यार्थत्वं दर्शितम्। स एव स्वस्यैव शतदुरस्य विषयानन्त्यात् अनेकभोगद्वारस्य वेदाभोग्यं धनं शब्दादिविषयजातं सनिष्यन् श्रोत्रादिभ्यस्तद्वाहकेभ्यो विभाजयिष्यन् तेनैव हेतुना स्वर्षाता स्वः शब्दितानां शब्दादिप्राप्तिजानां साता विभाजयिता सन् परिसदत् सर्वं परित्यज्य निषीदन्नास्ते। यतः शब्दः श्रोत्रस्यैव विषयोऽतस्तज्जं सुखमपि तस्यैव न ममेत्युदास्ते इत्यर्थः। अतएव अनर्वा सर्वप्रवृत्तिशून्यः न अर्वति गच्छति प्रवर्तत इति योगात्। अतएव शिश्नेन दिव्यन्ति तान् कामादीन् घ्नन् हिंसन्नेव वयसा स्वरूपेण प्रकाशमानेन अभ्यभूत्। निःशेषकामविलय एव स्वरूपप्रकाशो मोक्ष इत्युच्यते।।३।। स यह्व इति। सः अर्वेवार्वा शीघ्रगतिः तीव्रसंवेगो योगी प्रधान्यासु योगयुद्धयोग्यासु

गोषु योगभूमिषु अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयाख्यासु सस्रिः सरबू (?) तं तं कोशमुपक्रामन् यश्च महतीः अवनीः स्थूलाः भूमिः आ इत्यभिविधौ सर्वाः जुहोति अर्थात् सूक्ष्मासु प्रविलापयतीत्यर्थः। न पुनरुत्तरामुपसङ्क्रामन् पूर्वामवशेषयतीति भावः। यत्र घृतं द्रुतं वारिवसमुद्रसलिलवदेकरसंवस्तु तत्र जूज्यासः योगिनः अपादो अरथा इत्याध्यात्मिकाधिदैविकालम्बनशून्यत्वं लक्ष्यते तादृशा अपि द्रोण्यश्वासः नौशब्दस्य वाङ्नामसु पाठात् द्रोणि शब्दिताः वागूरूपा नौरेवाश्ववत् गतिसाधनं येषां ते द्रोण्यश्वासः तत्त्वमस्यादिवाक्यनौकाबलेन ईरते गच्छन्ति आनन्दमयम् उल्लङ्घ्य षष्ठे पुच्छब्रह्मणि वाक्यार्थावगतिबलेनैव प्रतितिष्ठन्तीत्यर्थः।। ४।। कृत्स्नं पूर्वोक्तमर्थमुपसंहरत्यर्धर्चेन स रुद्रेभिरिति। स स्तुतः पुरुषः रुद्रेभिः रोदयद्भिरेकादशभिः षड्भिर्वा इन्द्रियशत्रुभिः सङ्गतोऽशस्तवारः घोरसंसारयातनानिमित्ततया अमङ्गलदिवसो भवति। स एव पुनः ऋभ्वा देव्या विद्यया आरेअवद्योनिरस्तानर्थो गयं स्वस्वरूपप्रतिष्ठारूपमधिष्ठानम् आगात् इन्द्रियोगो बन्धः, विद्यया तन्नाशो मोक्ष इत्यर्थः। एवं वम्रस्य वम्रं प्रतिमिथुनामिथुनौ आत्मानत्मानौ विवव्री विवृतवन्तौ स्वस्वरूपमिति शेषः। एवं समाधौ जडात्पृथक्कृतमात्मानं जानन्नपि व्युत्थाने अन्नं स्थूलदेहम् अभीत्य अभिमुखं प्राप्य मुषायन् स्वरूपानन्दमहरन् लब्धावसरः सन् अरोदयत् स एव रुद्रशब्दित इन्द्रियगण इत्यर्थात्। एतेन साक्षात्कृतात्मयाथात्म्यस्यापि दग्धपटवद्देहाद्यध्यासानुवृत्तेर्दुःखानुवृत्तिप्रदर्शनेन जीवन्मुक्तिः साधिता। अन्यथा ज्ञानसमकालमेव देहपातः स्यादित्यन्यत्र विस्तरः।। ४।। एवमाधिदैविकादेहस्यार्था-दाध्यात्मिकमर्थं विशुद्धसत्त्वैकगम्यं भाष्यकारैः सत्त्वशुद्ध्यर्थं यज्ञतदङ्गादिस्तावकतयाऽर्थो दर्शितः स भाष्यादेवावगन्तव्यः।। ५।।

पितुर्मातुरध्या ये समस्वर-
न्नृचा शोचन्तः सन्दहन्तो अव्रतान्।
इन्द्रिद्विष्टामपधमन्ति मायया
त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि।।६।।

अथ इषुर्नधन्वीये मन्त्रपञ्चके रामायणस्य उत्पत्तिनिमित्तं प्रदर्श्यते तच्च नारदस्य तु तद्वाक्यमित्यादिना सर्गत्रयेण उपबृंहितं तस्य तात्पर्यं कपर्दकान्वेषिणा रत्नमिव रामकथान्वेषिणां परं तत्त्वमभिलभ्यत इत्याख्यायिकामुखेन गम्यते। पितुर्मातुरिति पितुर्मातुश्चापेक्षया अधि अधिकं आ अत्यर्थं ये महान्तः जनहितं समस्वरन् सम्यगकीर्तयन्। बहुत्वं पूज्ययाम्। येन रामायणं कृतं स माता पितृशतादप्याप्ततमो हितोपदेष्टत्वादित्यर्थः। कीदृशास्ते ऋचा द्वात्रिंशदक्षरया अनुष्टुभा शोचन्तः शोकं कुर्वन्तः शोकेने द्वात्रिंशदक्षरं वाक्यमुच्चारयन्त इत्यर्थः। कीदृशाः अव्रतान् हिंस्रान् सन्दहन्तः तेनैव शोकाग्निना भस्मीकुर्वन्ति ते संस्वरन्तः स्वकृतेनैव

संस्वरेण मायया मूलाविद्यया सार्धं असिक्नीं कृष्णवर्णां तमोमयीं त्वचं शरीरम् अपधमन्ति दूरीकुर्वन्ति श्रोतृणामित्यर्थात्। कीदृशीं त्वचमूइन्द्रद्विष्टाम् इन्द्र आत्मा द्विष्टो नानायोनिनिपातेन दुःखवान् कृतो ययाताम् भूमनः भूलोकात्, दिवः द्युलोकाच्च परि परिच्युतामित्यर्थ।ः। मुक्तानां हि शरीरं लोकत्रयेऽपि नास्तीति स्पष्टम्- 'अशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' इति श्रुतेः।।६।।

हिन्दीभाषानुवाद - पिता-माता से भी आप्त (बढ़कर विश्वसनीय) हितोपदेष्टा रामायण के प्रणेता महर्षिवाल्मीकि ने (क्रौञ्चवध से दुःखी होकर (३२ अक्षरों वाले अनुष्टुप) छन्द (के उच्चारण) से हिंस्र व्याध को (शोकोत्पन्न शापाग्नि से) भस्म कर दिया। अविद्या के कारण नानायोनियों में पड़ने से दुःखी आत्मा को तमोमय शरीर से अलग करके मुक्त किया।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र से लेकर अगले पांच मन्त्रों में रामायण के प्रणयन (उत्पत्ति) का हेतु प्रदर्शित किया गया है। ये पांचों मन्त्र ऋग्वेद के नवम मण्डल के ७३वें सूक्त के ५ से ९ मन्त्र हैं। टीकाकार के मतानुसार इन पाँच मन्त्रों के तात्पर्यार्थ का उपबृंहण रामायण (के प्रारम्भ) में 'नारदस्य तु तद्वाक्यम्' इत्यादि से प्रारम्भ कर तीन सर्गों में किया गया है। जैसे कौड़ी खोजने वाले को रत्न मिल जाय, उसी तरह से रामकथा को चाहने वाले को परमतत्त्व (मोक्ष) की प्राप्ति हो जाती है।

प्रस्तुत मन्त्र में महर्षि वाल्मीकि की स्तुति करते हुए उन्हें माता-पिता से भी बढ़कर आप्त तथा जनहितोपदेष्टा कहा गया है। मन्त्र में प्रयुक्त 'ये' सर्व नाम बहुवचनान्त पद का अर्थ 'वाल्मीकि' करते हुए बहुवचन को आदरार्थक कहा गया है। टीकागत 'माता पितृशता-' पदरचना चिन्त्य है। यहाँ 'मातृपितृशता -' होना चाहिए।

मन्त्र की रामकथापरक व्याख्या करते हुए एक व्याध द्वारा क्रौञ्चवध की घटना की ओर सङ्केत किया गया है, जो रामायण और संस्कृत साहित्य में अन्यत्र भी बहूल्लिखित है। क्रौञ्चवध को देखने से करुणार्द्रहृदय महर्षि के मुख से सहसा छन्दोमयी वाणी आविर्भूत हुयी-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

इस घटना का सङ्केत महाकवि कालिदास ने भी अपने महाकाव्य रघुवंश (१४.७०) में किया है- 'निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः'

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने भी इस महत्त्व पूर्ण घटना का उल्लेख काव्यात्मतत्त्व के निरूपण के प्रसङ्ग में एक कारिका द्वारा किया है-

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।। (१.५)

जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकि की छन्दोमयी वाणी से प्रथमतः व्याध का प्रकारानतर से कल्याण हुआ और वह शाप वस्तुतः वरदान बन गया उसी प्रकार उस मूल हेतु से उत्पन्न रामायण के द्वारा पाठक- श्रोतृगण की अविद्या के नाश पूर्वक तमो (अज्ञान) निवृत्ति के द्वारा शरीरबन्ध से मुक्ति प्राप्त होती है।

प्रत्नानमानादध्याये समस्वरन्
श्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्वतः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत
ऋतस्य पन्थान्नतरन्ति दुष्कृतः।। ७।।

यत्प्रमाणमाश्रित्य ते समस्वरन् यया च ऋचा शोकमकुर्वन् यथा च ऋचः संस्वरणहेतुत्वम् एतत्त्रयं दर्शयति प्रत्नान्मानादिति। प्रत्नं पुरातनं मानं प्रमाणं वेदं वा 'स ईक्षत लोकान्नुसृजा' इति कालिकम् ऐश्वरमीक्षणं वाऽधिगम्य येऽधि अधिकं समस्वरन् श्रुतिं दिव्यां दृष्टिं वा प्राप्य रम्यं काव्यं कृतवन्त इत्यर्थः। ते श्लोक यन्त्रासः श्लोक एव यन्त्रवत् काव्यकरणे प्रवर्तको येषां ते श्लोकयन्त्राः शोकानुवादिकाया ऋच आलोचने कृते तस्याः श्लोकरूपत्वं दृष्ट्वा ईदृशैरेव श्लोकैर्नारदोपदिष्टं पुरुषं वर्णयामेति प्रवृत्ता अभूवन्नित्यर्थः। एतेन शोचिलोकककायिभिः (?) श्लोकशब्दो निष्पन्न इति दर्शितम्। अत्रापि बहुत्वं पूजायाम्। शोकानुवादिनीमव्रतदाहिकामृचं पठन्ति-रभसस्येत्यादि। अत्र 'इयादिपूरणः' इति स्मृतेरनुष्टुप्छन्दसि न्यूनमक्षरस्य इत्यत्र सिय इति वर्णद्वयकल्पनाया पूरणीयं तेन रभसरयेत्यादयो दुष्कृत इत्यन्ताः द्वात्रिंशत् वर्णा भवन्ति। अत्राकार्यं दृष्ट्वा शोकस्तत्कारिणः शापश्च दृश्यते। यथारभसस्य मन्वतः चित्तनदीवेगस्य मानयितारः। कामक्रोधादिवशाः अनक्षा सः कार्याकार्यविवेकाभावदन्धाः बधिराः शास्त्रश्रवणहीनाः। ऋतस्य सत्यस्य यथा मार्गम् अप अहासत दूरे त्यक्तवन्तः। अतएव दुष्कृतः पापफलात् नरकान्न तरन्ति न लङ्घयन्ति। तस्मादरे अकार्यकारिन्नव्रतत्वमपि दृष्कृतं न तरिष्यसीति भावः। एतदर्थकश्च श्लोको रामायणे दृश्यते-

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।" इति।

अत्र 'यद् गायत्री च पङ्क्तिश्च ते द्वे अनुष्टुभौ' इति श्रुतेश्चतुर्विंशति-चत्वारिंशदक्षरतया चतुःषष्टचक्षरयोर्गायत्रीपङ्क्त्या यथा- द्वे अनुष्टुभौ द्वात्रिंशदक्षरे भवतः", एवं जगत्यागमेऽपि रभसस्येत्यादिरनुष्टुबस्ति। यद्वा, रभसस्य मन्तवोपेत्यानुष्टुप्पादः अनक्षेत्यादि त्रिष्टुप्पादः ऋतस्येत्यादिर्जगतीपाद इति वा पादकल्पनया सर्ववृत्तसम्भवोऽत्र द्रष्टव्यः। तथा च श्रुतिः-एतानि वाव सर्वाणि छन्दांसि गायत्रं त्रैष्टुभं जागतमानुष्टुभमाचर्न्याति इति।। ७।।

हिन्दी भाषानुवाद - पुरातन प्रमाण (वेद) को आधार बनाकर (अतएव) दिव्य दृष्टि प्राप्त करके (काव्य निर्माण की प्रेरणा रूप प्राप्त श्लोक को यन्त्र (माध्यम-करण-साधन) बनाकर रामायण काव्य की रचना की। (अब शोक से श्लोक की निष्पत्ति रूप अर्थ को कहते हैं-) नदी के वेग के समान (अस्थिर चंचल) मन वाले, (कार्याकार्य के विवेक से हीन) अजितेन्द्रिय, शास्त्रश्रवणादिहीन, सत्यमार्ग से भ्रष्ट अतः पाप फल के कारण रूप नरक से पार नहीं उतरते।। ७।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मंत्र में पूर्व मन्त्र की वस्तु का उपबृंहण करते हुए शोक का श्लोकत्व प्रदर्शित किया गया है। महर्षि के द्वारा प्रदत्त शाप का फलितार्थ भी वर्णित है।

सहस्रधारे वितते पवित्र
आवाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रूद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः ।
स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ।। ८।।

अत्र संस्वरणं मधुस्वरेंण गानं कोकिलवदिति ध्वनितं तस्योपबृंहणम्-'कूजन्तं राम-रामेति' श्लोके श्लोकदर्शनप्रवृत्तैः किं कृतमत आह-सहस्रेति। आसमन्तात् वितते व्याप्ते महाविष्णो सहस्रधारे सोमांशुरूपेण तत्तदिन्द्रियवृत्त्यभिव्यक्तचिदा सा सरूपेण वानन्तप्रवाहे पवित्रे निमित्तभूते सति मनीषिणो जितचेतसः कवयः काव्यरचनसमर्थाः वाचं स्वीयां पुनन्ति भगवद्गुणगणकीर्तिनेन पवित्रीकुर्वन्ति वाल्मीकिप्रभृतयः। एषां कवीनां मध्ये रूद्रासः। बहुत्वं पूजायाम्। रूद्रो हनूमान् इषिरासः इषिरोऽद्भूदित्यर्थः। स च स्वञ्चः शोभनगमनः सुदृशः सम्यक्परीक्षकः । नृचक्षसः नरं सीतारूपं चष्टे पश्यतीति नृचक्षाः सीतां ददर्शेत्यर्थ । वभ्रवत् रूद्रोऽपि रामायणमकरोत्तत्र च रामदास्यमधिकम्। एवमन्येऽपि रामस्तोत्रेण वाचं दास्ये न देहं च पुनीयादिति भावः।। ८।।

हिन्दीभाषानुवाद - सर्वत्र व्याप्त, परमपूत परमेश्वर के अनन्त प्रवाह में, स्वाधीनचित्त मनीषी कविगण अपनी वाणी को पवित्र करते हैं। अर्थात् भगवद्गुणानुवाद करते हैं। इन कवियों में पूज्य, अद्रोही, अद्भुत-गति वाले, सुन्दर चाल वाले, सही परख वाले अपनी ऑखों से सीता को देखकर खोजने वाले, श्रीराम के (गुप्त)चर, रूद्रावतार श्री हनुमान् भी हैं।।८।।

टिप्पणी - भगवद्गुणकीर्तन करने वाले महाकवियों की अक्षुण्ण परम्परा है। वेदों से आरम्भ हुई यह परम्परा (पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति) की वाणी अमर है-

**'यावत्स्थस्यन्तिक गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।'**

रामकथा के अमरगायक भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है-

'रामायण सतकोटि अपारा।' केवल भारतीय भाषाओं में ही नहीं विश्व की अनेक भाषाओं में अनेक प्रकार के रामायण ग्रन्थ निबद्ध हैं।

प्रस्तुत मन्त्र की टीका में टीकाकार ने रामकथा के एक प्रमुख पात्र रूद्रावतार हनुमान् को कवि बताते हुए कहा है कि उन्होंने भी वाल्मीकि की तरह रामायण की रचना की थी।

वाल्मीकि-रामायण में (सुन्दर काण्ड,३२.७) हनुमान् को 'बुद्धिमतां वरिष्ठम्' कहा गया है और उनके मुँह से सीताहरणपर्यन्त रामकथा भी कहलवाई गई है (सु.का.,सर्ग ३१)।

वर्तमान काल में संस्कृत में एक महानाटक,'हनुमन्नाटक, नाम से उपलब्ध है। इसके रचयिता हनुमान् माने जाते हैं। किंवदन्तकी है कि हनुमान् ने रूपक के रूप में रामायण की रचना करके पत्थरों पर उसे उत्कीर्ण कर दिया था रामायण के प्रणेता वाल्मीकि ने जब इस महानाटक को देखा तो उन्हें लगा कि यदि लोक में इस नाटक का प्रचार हुआ तो मेरा रामायण महाकाव्य इसके समक्ष उपेक्षितहो जायगा। तब उन्होंने हनुमान् से अनुनय-विनय कर उसे समुद्र में तिरोहित करा दिया। विक्रमादित्य (अथवा भोजराज) के समय में इनमें से कुछ पत्थर समुद् से प्राप्त हुए और उनके आधार पर श्री मधुसूदन मिश्र और श्रीदामोदर मिश्र ने अलग-अलग दो नाटकों की क्रमशः 'महानाटक' और 'हनुमन्नाटक' नाम से रचना की। फलतः इस समय हनुमद्विरचित्र मूल नाटक के कुछ अंशों से बने इस नाटक के दो संस्करण प्रचलित हैं, जिनके आकार में असमानता होते हुए भी वस्तुगत समानता है तथा दोनों में तीन सौ श्लोक समान हैं।

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु-
स्त्रीषपवित्राहृद्यन्तरादतधे ।
विद्वान् स विश्वा भुवनाभि पश्य-
त्यवा जुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ।। ६ ।।

एवं परमेश्वरे वाचं पुनानस्य किं फलमत आह-ऋतस्येति। य एवंविधो भगवद्गुणगानेन वाचं पुनानस्य स ऋतस्य गोपाः दम्भाय न भवति, आत्मतत्त्वत्त्स्य रक्षकः विद्यामाहात्म्यादन्यैर्दभ्भनाय अभिभवितुंकं न शक्यते, निर्भयो भवत्यभयं प्राप्तो भवति इत्यर्थः। यतः सुक्रतुः शोभनाध्यानपरः स एवम्भूतः त्री त्रीणि पवित्राणि अन्तर्हृदि आदधे आहितवान्। तान्येवाह-विद्वानिति। स विद्वान् आत्मज्ञो भूत्वा विश्वा भुवानानि अभितः साकल्येन पश्यति। तथा-अजुष्टान् अप्रीतान् दीनानित्यर्थः। अवति अतिशयेन पालयति। 'क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ' इति लोट् तस्य च हिः- 'अतो हेः' इति हेर्लुक् च। तथा-अव्रतात् कर्मब्रह्मोभयभ्रष्टारं कर्ते कृन्तति छिन्दन्त्यस्मिन् इति योगात् सङ्ग्रामे

विध्यति तेन पापिष्ठेनापि सङ्ग्रामे शस्त्रमरण प्रापणेन उद्धरतीत्यर्थः। तस्य ज्ञानं, दया शैर्यञ्च लोकोपकारार्थं वर्धत इत्यर्थः। एतान्येव हि त्रीणि पवित्राणि अन्यत्राप्युक्तानि–'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते', 'न दयासदृशोधर्मः', 'लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि शस्त्रपूताः' इति निग्रहमुखोऽनुग्रहः शत्रुष्वपि परमो धर्मः इत्यभिप्रायः।।६।।

हिन्दीभाषानुवाद - (इस प्रकार भगवान् के गुणानुवाद से वाणी को पवित्र करने का फल बतलाते हैं) सत्य (रूप आत्मतत्त्व) का रक्षक, (विद्या के माहात्म्य से) दैन्य-दम्भादि से मुक्त (होकर निर्भय) हो जाता है। वह आत्मज्ञ होकर समस्त लोक को सम्यक् देखता है, दीनों की भलीभाँति रक्षा करता है और योग से अपने कर्मों को काट डालता है (नष्टकर देता है)। इस प्रकार वह तीन (बातों-ज्ञान, दया और शौर्य) को अपने हृदय में धारण करता है।। ६।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र में ईश्वर के गुणानुवाद से बाणाी को पवित्र करने का फल बताया गया है। जो ऐसा करते हैं, उनके ज्ञान, दया और शौर्य में तीन लोकोपकार के लिए नित्य बढ़ते हैं। सुभाषितों में भी 'ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय' कहकर इसी तत्त्व का प्रकारान्तर से प्रकाशन किया गया है। टीकाकार ने, 'लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूताः' को उद्धृत करते हुए लिखा है कि निग्रहमुख-अनुग्रह शत्रु पर करना भी परमधर्म है।

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र
आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त-
आशतात्रकर्तमवपदात्यप्रभुः।। १०।।

अथ रामकथापरं स्तुवन्नन्यं निन्दन्ति-ऋतस्य तन्तुरिति। ऋतस्य परमात्मनः प्रापको गन्तुं तन्तुरिव तन्तुरूर्ध्वपदारोहणसाधनः-'स यथोर्णनाभिस्तं तुनोच्चैरौत्' इति मैत्रायणीश्रुतिसिद्धोऽयं दृष्टान्तः। विष्णौ वाचः पवनरूपः कवीनां जिह्वाया अग्रे स्थितो वरुणस्य भोगमोक्षार्थिभिर्वरणीयस्य विष्णोर्मायया आ अत्यन्तं विततो विस्तारितः श्रीरामकथारूपोऽस्ति वरुणस्य जिह्वाया अग्र इति वा योज्यम् वरुणपुत्रस्य प्राचेतसापरनाम्नो वाल्मीकेरित्यर्थः। धीराश्चित् ध्यानवन्त एव, तत् तं तन्तुं साामिनक्षन्तः सम्यक् कात्स्न्येन व्याप्नुवन्तः न त्वेकदेशेन आशत प्राप्नुवन्। अत्र रामकथाधिगमे स्वाधीनेऽपि यः अप्रभुः जिह्वां व्याापारयितुमशक्तः, स कर्तम् हिंसास्थानम् अपिपत्रवनारव्यं नरकं अवपदाति नीचैरवपद्यते। 'पद-गतौ' लेटि। आडागमः। तामेव रामकथां प्रस्तौति-तां सुत इत्यादिना। सूक्तत्रयेण अत्रानुक्रमणी तां सुषट्, बृहदुक्थो, वामदेव्याो, दूरेष्ठा, विन्दते सप्त, वैश्वदेवं तु चतुर्थ्यद्यास्तिस्रो जगत्यः पूर्वयोरिन्द्रो देवता त्रिष्टुप्छन्दः। हे मघवन् धनवन् लक्ष्मीपते तां प्रसिद्धान्ते तव सुकीर्तिं शोभनं यशो महित्वा माहात्म्येन ब्रवीमीति शेषः।।१०।।

हिन्दीभाषानुवाद - सत्य (रूप आत्मतत्त्व) तक पहुँचने के लिए पवित्र तन्तु अर्थात् पवित्र साधन के रूप में रामकथा (रामायण) उसी परब्रह्म (राम) की माया (प्रेरणा रूप शक्ति) से प्रचेता (वरुण) पुत्र वाल्मीकि के द्वारा विस्तारित की गयी। धीर (विद्वान् ध्यानूवान्) जन उसे अच्छी तरह अपना कर परम पद प्रापत करते हैं और जो उससे विमुख रहते हैं वे असमर्थ लोग अधोगति (अर्थात् नरक) को प्राप्त होते हैं।। १०।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र में रामकथा के कीर्तन-श्रवण करने और न करने के फल बताये गये हैं।

तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा
यत्वा भीते रोदसी अह्वयेताम्।
प्रावो देवाँ अतिरोदासमोजः
प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र।। ११।।

तामेवाह-यदिति। यत् यदा त्वा त्वां भीते राक्षसेभ्यस्त्रस्ते रोदसी द्यावा पृथिवीस्थे प्रजे त्राहीति आह्वयेताम् आहूतवत्यौ तदा त्वं देवान् प्रावः प्रकर्षेण पालितवानसि दासं च रावणादिरूपं पूर्वं जयविजयादिसंज्ञं स्वपार्षदम् आजः ओजसा सामर्थ्येन अतिरः तिरस्कृतवानसि। वधप्रापणेन तथा त्वस्यै अन्यस्यै प्रजायै मानुषरूपायै राजा भूत्वा हे इन्द्र परमेश्वर यत् अशिक्षः अशिक्षयः वर्णाश्रमधर्मांश्च शिक्षितवानसि। तां ते कीर्तिमित्यन्वयः। अत्र रोदस्युद्वेजकदासक्षपणकमुचितं प्रजाशिक्षकत्वं मुख्यं रामादन्यत्र भगवदवतरान्तरे नास्ति। यद्वा-अभिषेकानङ्गीकारात् इन्द्रे चासकृत् पराभवदर्शनान्नमुख्यं मघवत्त्वं श्रुतिप्रसिद्धेन्द्रशब्दार्थभागित्वं चास्ति, अतो नान्यपरो मन्त्रः। किञ्चात्र तां सुते कीर्तिमित्यारभ्य स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादापरेष्वित्यन्तानामेकविंशतिमन्त्राणाम् उपक्रमपरामर्शोपसंहारेषु रामलिङ्ग्ान्येव दृश्यन्तें। तत्रोपक्रमो व्याख्यात एव, उपसंहारेऽपि बृहदुक्थो महाकर्मा रामः स्वां प्रजां सन्तानरूपां च महित्वा स्वप्रभावेनालौकिकेन क्रमादवरेषु भूस्थानेषु आदधात्। परेषु वैकुण्ठस्थानेषु च आदधादिति प्रजानां नेतृत्वं राम एव दृष्टम्। अत्र बृहदुक्थऋषिः प्रत्यगभिन्नस्य रामस्य कर्माण्यात्मन्यारोप्य वदति। अहं मनुरभवं सूर्यश्चेत्यादि वामदेववत् अन्ये चात्रमप (?) स्था मन्त्राः कथाक्रमेण यथास्थानमेव व्याख्यास्यन्ते। अध्यात्मं तु द्वयूयाहप्राजापत्या देवाश्चासुराश्चेति बृहदारण्यकादौ शमदमादिषु देवपदप्रयोगात् कामादिषु चासुरपदप्रयोगात् इत्थमस्य मन्त्रस्यार्थः प्रत्येतव्यः। सकलसंसरानर्थमुलात्कामाद्भीतैर्देवमनुष्यैः शरणीकृत ईश्वरः कामं हत्वा शमादींस्त्रातवान् मुमुक्षूंश्च सदाचार्यरूपेण तद्व्यवहारं शिक्षितवानिति दिक्।।११।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे राम! जब द्युलोक और पृथिवीलोक की प्रजाओं (देवों और मनुष्यों) ने राक्षस (रावण) से त्रस्त होकर, आपके उस प्रजापालक यश की पूजा करके (सादर

स्मरण करके) आपका आह्वान किया तब आपने अपने अपने अलौकिक सामर्थ्य से उस नीच (अथवा पूर्व जन्म में पार्षद=सेवक रहे) रावण को पराभूत करके देवों (और मनुष्यों) की भलीभाँति रक्षा की तथा (अवतारी होकर मनुष्य रूप में) राजा होकर अपनी प्रजाओं को वर्णाश्रम धर्म की शिक्षा दी।।११।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद में दसवें मण्डल के चौवनवें सूक्त का प्रथम मन्त्र है। टीकाकार ने 'मघवा' का अर्थ राम किया है। अतः 'मघवन्' इस सम्बोधन पद की सङ्गति टीका में प्रदर्शित की गयी है। इसी प्रकार स्वतन्त्र 'इन्द्र' पद को भी 'परमेश्वर' का वाचक लिखा गया है। मन्त्र में आए हुए 'दास' पद से रावण का अर्थ ग्रहण करते हुए टीकाकार ने विष्णु के पार्षदों जय-विजय की कथा की ओर संकेत किया है जो मुनिशापवश राक्षस के रूप में पैदा हुए थे। ऋग्वेद में अन्यत्र भी 'दास' पद का प्रयोग हआ है ('दासं वर्णं अधरः गुहाकः'- ऋ० २.१२., इत्यादि) जहाँ उसका अर्थ नीच अथवा निकृष्ट बताया गया है।

इस मन्त्र का अध्यात्म पक्ष में अर्थ है कि बृहदारण्यक उपनिषद् में शम-दम को देव तथा काम आदि को असुर कहा गया है। समस्त संसार के अनर्थमूल काम से भीत देव-मनुष्यों द्वारा ईश्वर के शरणागत हो जाने पर उन्होंने काम का उच्छेदन करके शम-दमादि की रक्षा की और मुमुक्षुजनों को सदाचार्यरूप से उनके व्यवहार (मोक्षमार्ग) की शिक्षा दी।

आसूर्यो यातु सप्ताश्वः
क्षेत्रं यदस्योर्विपादीर्घयाथे रघुः।
श्येनः पतयदन्धो अच्छा-
युवाकविर्दीदयद्गोषु गच्छन्।।१२।।

आह्वानं विवृणोति-आसूर्य इति। यत् क्षेत्रं शरीरम् अस्य आगन्तुः उर्विपा श्रेष्ठत्वेन अभिमतम्, दार्घयाथे महति संसारमार्गे, तत् सूर्यः सप्ताश्वः स्वसन्तानरूपेणायातु। सूर्यवंशे शरीरं धारयत्वित्यर्थः। तत्रापि रघुः रघुवंश्यो भूत्वा, श्येनः ईश्वरः पक्षी, अन्धो अच्छ अन्नमयं पिण्डमभिमुखः पतयत् पततु। स च युवा कविश्च सन् गोषु भूप्रदेशेषु गच्छन् सञ्चरन्, दीदयत् दीप्यताम्; रघुवंशे शरीरं धृत्वाऽस्मानवत्वित्यर्थः। पक्षे, सूर्यवत्सर्वावभासकबोधरूपी श्येन ईश्वरः रघुः 'तद्धावतोऽन्यानत्येतीति श्रुत्यन्तरात् शीघ्रगतिः नरम् आयातु स च बोद्धा धीबलात् सनकादिवद्युवा कविश्च सन् लोकाननुगृह्णातु। सप्ताश्वत्वं तु यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहाराख्याः पञ्च धारणाध्यानसमाध्यात्मकः संयमः, षष्ठः प्राणायामः, प्रत्याहारो ध्यानम्, धारणा तर्कः, समाधिः षड्ा इति मैत्रायणीयश्रुतेस्तर्कश्चोपसंहार्य इति सदा अश्वा आगमनसाधनानि यस्य स सप्ताश्वः, शेषं प्राग्वत्।। अत्रापि आश्रृण्वतीण्य इति आज्ञाकारी समुद्र इति तन्नियन्तृत्वमनन्तरमन्त्रे

श्रुतं रघुपदसमुच्चितं राम एव दृष्टम्। नान्यत्रागस्त्येऽन्यत्र रघुवंश्ये वा इति दाशरथिपरत्वमेवास्य मन्त्रस्यावसेयम्।।१२।।

हिन्दीभाषानुवाद - इस संसाररूपी महान् मार्ग में आने के लिए (ईश्वर का) जो श्रेष्ठ शरीर अभिमत है, वह अपने सन्तानरूप से सूर्यवंश में आये। वहां भी रघुवंश में वह अन्नमय शरीर धारण करके युवा (शक्ति-ओज सम्पन्न) और कवि (क्रान्तद्रष्टा -त्रिकालज्ञ) रूप से पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए अपने तेज से प्रकाशित हो।।१२।।

टिप्पणी - यह मन्त्र ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के पैंतालीसवें सूक्त का नवम (मन्त्र) है। टीकाकार ने रामकथा परक अर्थ के साथ ही अध्यात्म-परक अर्थ भी दिया है। सूर्य कहे जाने से सर्वावभासक बोधरूपी वह ईश्वर शीघ्र मनुष्यरूप में अवतार ग्रहण करके अपने बुद्धिबल से सनकादि की तरह युवा और कवि रूप से लोक पर अनुग्रह करे।

स जातो गर्भो असि
रोदस्योरग्रे चारूर्बिभृत ओषधीषु।
चित्रः शिशुः परितमां
स्यक्तून् प्रमातृभ्योधिकनिक्रददूगाः।। १३।।

एवं प्रार्थितस्येश्वरस्य वह्निरेव शरीरत्वं गत इत्याह-स जात इति। हे अग्ने त्वं रोदस्योर्द्यावापृथिव्योरेव मध्ये न तु मातापित्रोः शरीरे शुक्रशोणितरूपेण गर्भो जातोऽसि। यतः ओषधीषु आग्नेयचरुरूपासु बिभृतः मन्त्रतिदूभिर्धृतः चारुः सुन्दरः चित्रोऽनेकाश्चर्यमयः, शिशुः तमांस्यक्तून् तमोमयीर्मोहरात्रीः परिमोहहीनः परिरत्रवर्जनार्थः। चरुरूपी शिशुः मातृभ्यः कौशल्यादिभ्य एता प्राप्य। अधिकनिक्रदत् आह्वयन् प्रकर्षेण अधिगाः अधिगतवानसि। कर्मसम्भृतचरुप्रशानमात्रादेव गर्भधारणोक्तेरलौकिकं रामस्य जन्मेति दर्शितम्। अत्रापि भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं तारो अभ्येति पश्चात् सुप्रकेसैर्युभिरग्निर्वितिष्ठनुशदूभिर्वर्णैरभि राममस्थादिति षोडशे मन्त्रे लिङ्गदर्शनात्। बहुमातृकत्वसमुच्चितो रामशब्दो नैकमातृके जामदग्न्ये द्विमातृके वासुदेवे वा समवेति दाशरथिपर एवायं प्रघट्टकः, तत्रापि कतिपये मन्त्राः कथोपयोगिनो यथास्थानमेवोदाहृत्य व्याख्यास्यन्ते। पक्षेऽग्निविज्ञानधातुः स हि इष्टादिकारिणां स्वर्गतानां कर्मशेषेण भूमिमुपेयुषां वृष्टिद्वारा ओषधिसम्पर्कं प्राप्तानामनुशायिनां सम्बन्धी भूत्वा प्रथममोषधीषु बिभृतः सन् पश्चाद्रोदस्योर्द्यावापृथिव्योः द्यौः पिता पृथिवी मातेति मन्त्रवर्णात् मातरि शोणितरूपेण पितरि रेतोरूपेण परिणतः सन् तयोः संयोगान्मातृभ्यो जातो भवति, तेन ओषधिसम्बन्धेन पूर्वजन्मलिङ्गेन मातृभ्यो इति बहुवचनेन च संसारस्यानादित्वं दर्शितम्। चित्रः शिशुर्जातः सन् तमांस्यक्तून् परिदेहाद्यात्मबुद्धिरूपा अज्ञानरात्रीः परिप्राप्य दुःखितोऽस्तीति प्रकर्षेण कनिक्रदत् रुदन् अधिगाः अधिगत-वानसि। अत्र विज्ञानस्यैव तमोभिर्भूतत्वं भोगभाक्त्वं शोकभाक्त्वं वोक्तम्।। १३।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे अग्नि! वह (परमेश्वर-शरीर रूप) तुम द्युलोक और पृथिवी के मध्य उत्पन्न हुए हो (न कि माता-पिता में शुक्र-शोणित रूप गर्भ से), क्योंकि मन्त्रवेत्ताओं द्वारा आग्नेय चरु रूप धारण कर सुन्दर और विचित्र (आश्चर्यमय-अलौकिक) शिशु कौसल्यादि माताओं को प्राप्त करके रोने लगा।। १३।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पहले सूक्त का दूसरा (मन्त्र) है। इस मन्त्र के द्वारा रामजन्म-विषयक अलौकिक घटना का वर्णन किया गया है। पुत्रेष्टि यज्ञ के सम्पन्न हो जाने पर अग्नि द्वारा प्रदत्त चरु के भक्षण से ही कौसल्यादि माताओं ने गर्भ धारण किया था-यह अलौकिक वृत्तान्त लोक-प्रसिद्ध है। इसके आधार पर टीकाकार ने आग्नेयचरु के माध्यम से श्रीराम को अग्नि के रूप में अयोनिज सिद्ध किया है।

विष्णुरित्था परममस्य विद्वा-
ञ्जातो वृहन्नभि याति तृतीयम्।
आसायदस्य पयोकृतं स्वं
सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र।। १४।।

एवं मातृभिश्च रुद्रप्राशने कृते सति किमभूत्तदाह-विष्णुरिति। विष्णुर्नारायणः एवमस्याग्नेर्गर्भभूतस्य परमं रक्षोवधाद्युत्कृष्टं चिकीर्षितं विद्वान् जानन् जातस्तत्र गर्भे आविर्भूतः जलचन्द्रवत् स च बृहन् ब्रह्मैव सन् विज्ञान् गुणान् तम आदीन् अस्पृशन्नेव। तृतीयं शुद्धकारणापेक्षया त्रयाणां पूरणं कार्यदेहम् अभियाति धत्ते। अस्य विग्रहस्य आसा आस्ना आस्येन एतद्रूपभजनद्वारेत्यर्थः। 'पद्दन्' इत्यादिना आस्यशब्दस्यासन्नादेशे सुपां सुलुगिति तृतीयैकवचनस्य ड्डादेशः। पयः क्षीरधिं स्वं स्वीयम् अकृत कृतवन्तः, उपमन्युप्रभृतयो भक्ता इति हेतोः सचेतसो धीमन्तोऽत्रैव तृतीये रूपे श्रद्धालवो विष्णुमभ्यर्चन्ति। एतेनास्य भक्तानुग्रह एव मुख्यं प्रयोजनं दुष्टनिग्रहस्तुतच्छेषभूत इति गम्यते। पक्षे, विष्णुरन्तर्यामी परमं मोक्षरूपं प्रयोजनम् अस्येत्यादि सर्वनामत्रयस्य मानुषदेह एवार्थः, शेषं सुगमम्।। १४।।

हिन्दीभाषानुवाद - इस प्रकार विष्णु (नारायण) ने राक्षसवधादि कारण को जानते हुए, ब्रह्म होने पर भी तम आदि गुणों से रहित तृतीय शरीर (अर्थात् कारण और सूक्ष्म से अतिरिक्त कार्यरूप स्थूल शरीर) को धारण किया; क्योंकि क्षीरसागर में अवस्थित उनके विष्णुरूप इस तृतीय (कार्य) देह की बुद्धिमान् श्रद्धालु (भक्त) जन पूजा करते हैं।।१४।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पहले सूक्त का तीसरा (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार इस मन्त्र में ब्रह्म (विष्णु) द्वारा तृतीय शरीर (स्थूल शरीर) धारण करने के कारण का उपन्यास किया गया है। इस अवतार के ग्रहण करने का मुख्य प्रयोजन

है भक्तों पर अनुग्रह करना। दुष्ट निग्रह तो आनुषङ्गिक प्रयोजन है

अत उत्वा पितुभृतो जनित्री-
रन्नावृधं प्रतिचरन्त्यन्नैः।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा
असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता।। १५।।

अत इति। अत उक्तहेतोस्त्वा त्वां विष्णुम् उ निश्चितं पितुभृतोऽन्नपुष्टाः जनित्रीर्मातरः अन्नावृधं विराजोऽपि वर्धकम् अन्नैः क्षीराद्यैः प्रतिचरन्ति पुष्यन्ति। ताः मातृः त्वं पुनरन्यरूपाः पूर्वमाराधयित्रीः सतीः पश्वादाराध्यरूपाः सन् प्रत्यन्वेषि आराधयसि। यतस्त्वं मानुषीषु विक्षु प्रजासु होताऽपि यज्ञादिसदाचारप्रवर्तकोऽपि। अतो मातृर्देवतावन्मानयसीत्यर्थः। पक्षे, त्वत्तः सुखाशावतीर्मातृः दुखिताः सतीरन्वेषि। एतेन निषिद्धकर्माचरणतो मोह उक्तः। अक्षरयोजना स्पष्टा। अन्नादवृधम् अन्नावृधम्। विश्वायुषमिति निपातनाद् दैर्घ्यं पूर्वपदान्तस्य।। १५।।

हिन्दीभाषानुवाद - अतएव मताओं ने निश्चितरूप सें तुम्हारा (विष्णु का) विराज होने पर भी अन्नों अर्थात् दुग्धादि के द्वारा पोषण किया। पूर्व में तुम्हारी (प्राप्ति की कामना के कारण) आराधयित्री वे मातायें बाद में तुम्हारी आराध्या हो गयीं, क्योंकि तुम मानवी प्रजाओं में यज्ञ आदि सदाचार के प्रवर्तक हो। (इसीलिए माताओं को देवता की तरह मानते हो।।१५।।

तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्र-
देक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे
विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्।। १६।।

जनित्रीणामाकाङ्क्षितं सङ्ख्याविशेषमाह-तिस्र इति। तिस्रः कौसल्याकैकेयी-सुमित्रासंज्ञाः मातृः त्रीन् पितॄन् जनयितारं दशरथम्, वसिष्ठमुपनेतारं विश्वामित्रं विद्याप्रदतारं चेति त्रीन् बिभ्रत् पालयन् त्रिमातृकत्वादनेकदेहोऽपि एक एव ऊर्ध्वं विज्ञानधर्मेषु शोकायासादिष्वनिमग्न एव तस्थौ। अत एव ईं एनं ते मात्रादयः न अवग्लापयन्ति ग्लपयन्ति। ग्लापयन्तीत्यादेर्दैर्ध्यम्। देहप्रदानात् तत्कृतेन दुःखेन नाभिभवन्ति। अत्र हेतुमाह-मन्त्रयन्त इति। दिवः पृष्ठे मेरुमूर्धानि अमुष्य प्रतिपादिकां वाचम् उपनिषिदं ब्रह्मादयो मन्त्रयन्ते विचारयन्ति। विश्वं वेदयति तां विश्वविदम्। अविश्वमिन्वां विश्वस्माद्व्यावृताम्। एक विज्ञानात्सर्वविज्ञानप्रदायाः नेति नेतीति मूर्तामूर्तप्रपञ्चनिषेधिकायाः ब्रह्मादिभिरप्यन्वेषणीयायाः वाचो विषयमिमं मात्रादिजो देहो न बघ्नातीत्यर्थः। अत्रापि ईश्वरस्य सतः त्रिमातृकत्वं दाशरथावेव दृष्टम्। पक्षे, तिस्रो मातरः समष्टिस्थूल-सूक्ष्मकारणरूया उपाधयः। त्रयः पितरस्तदभिमानिनश्चिदाभासाः वैश्वानर-

हिरण्यगर्भान्तर्यामिसंज्ञाः। तज्जो विज्ञानधातुरपि व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणरूपेण त्रिविधः तदभिमानिनश्चिदाभासा अपि त्रयो विश्वतैजसप्राज्ञसंज्ञाः। एतेषामधिष्ठानभूतोऽपि न विक्रियत इत्यर्थः, अक्षरयोजना पूर्वोक्तैव।। १६।।

हिन्दीभाषानुवाद – तीन माताओं और तीन पिताओं का पालन करते हुए वे एक राम (विष्णु) शोकायास से अप्रभावित होते हुए धर्मपालन-रूप उच्चपद पर आसीन रहे। इसीलिए इन मातादिकों को भी कभी दुःख न हुआ। स्वयं संसार से अनासक्त तथापि संसार में व्याप्त, संसार को भलीभाँति जाननेवाले उस विष्णु की प्रतिपादिका वाणी के सम्बन्ध में ब्रह्मादि मेरुशिखर पर स्थित होकर (अत्यन्त उच्च भावस्थ होकर) विचार करते हैं।।१६।।

टिप्पणी – यह मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६४ वें सूक्त का दसवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार ने मन्त्र में आए हुए पदों की व्याख्या करते हुए रामादि की तीन माताओं कौसल्या, कैकयी और सुमित्रा के साथ उनके तीन पिताओं का भी उल्लेख किया है- जन्मदाता दशरथ, उपनयनकर्त्ता (मन्त्रदाता) वसिष्ठ और विद्याप्रदाता विश्वामित्र। यदि इस प्रकार की योजना करनी ही है तो तीन पिताओं की गणना एक अन्य प्रकार से भी की जानी उचित होगी। उपनयनकर्त्ता और विद्याप्रदाता को हम पितृतुल्य तो कह सकते हैं किन्तु उन्हें पितृकोटि में रखना बहुत उचित नहीं जान पड़ता। रामादि की उत्पत्ति के मूल में जो तीन हैं वही पितृकोटि कहे जा सकते हैं और वे हैं- लोकसिद्ध पिता दशरथ, पुत्रेष्टि यज्ञ करानेवाले महर्षि ऋष्यशृङ्ग और स्वयं चरुप्रदान करने वाले अग्नि। राम ने इन सभी के साथ अपने सम्बन्ध की समुचित रक्षा की।

चत्वारि ते असुर्याणि नामा-
दाम्यानि महिषस्य सन्ति।
त्वमंगतानि विश्वानि वित्से
येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ।। १७।।

बहुमातृकस्यापेक्षितं रूपभेदं तां सुतीयमन्त्रेणाह-चत्वारि त इति। नाम निश्चितम्। नामोपलक्षितानि रूपाणि वा। विभक्तिलोप आर्षः। चत्वारि रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाख्यानि असुर्याणि असुराणामप्युक्तरीत्या हितानि अदाम्यानि अनधिभाव्यानि महिषस्य महतस्तव सन्ति। हे अङ्ग तानि विश्वानि सर्वाणि नामानि त्वं त्वमेव वित्से लभसे। येभिर्यैः रूपैः मघवन् लक्ष्मीपते कर्माणि इन्द्रजिल्लवणवधादीनि चकर्थ। लक्ष्मणादयस्त्वत्तो नातिरिच्यन्ते, मृद इव बीजाङ्कुरद्रुमा इत्यर्थः। अयं भावः-यथा कौसल्याकैकेयीभ्यामर्धमर्धं चरुं प्राप्य स्वस्वचरुभागस्यैकैकोऽशः सुमित्रायै दत्तः। तेन सुमित्रा द्वौ पुत्रौ लेभे। इतरे त्वेकमेकमेवेति चत्वारः पुत्राः, एवं कार्यकारणरूपयोर्विराडन्तर्यामिणोर्मध्ये सूत्रात्मा उभयधर्मानुसारीति तत्र प्रतिफलितं चैतन्यमप्युभयविधं तत्र कार्यांशप्रतिबिम्बः शत्रुघ्नः, कार्योपाधिं भरतमन्वेति। कारणांशप्रतिबिम्बो लक्ष्मणः, कारणोपाधिं राममन्वेति।। १७।।

हिन्दीभाषानुवाद - (निग्रहमुखेन) असुरों का भी हित करने वाले, सर्वातिशायी प्रभाववाले ये चारों (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) नाम निश्चित ही आप महामहिमशाली के हैं। हे मघवन् (लक्ष्मीपते)! आप उन सभी नामों को प्राप्त करतें हैं (धारणकरते हैं) जिनके द्वारा (रावण-मेघनाद-लवणासुर आदि के वधरूप) (यशस्वी और महान्) कर्म किया है।। १७।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के चौवनवें सूक्त का चौथा (मन्त्र) है। टीकाकार ने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को विष्णु का ही स्वरूप मानते हुए उनके इन नामों की एकता भी कही है। जैसे मिट्टी से बीज, अङ्कुर, वृक्ष पुथक् नहीं हैं, वैसे ही लक्ष्मण आदि भी विष्णु (राम) से अलग नहीं हैं। यही नहीं भक्तों के कल्याण और असुरों के विनाश रूप जितने भी महान् कार्य हैं, उन सबके योग से विष्णु के अनन्त नाम हैं।

अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे मनीषा
सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीतसवान-
तूर्तो राजा श्रव इच्छमानः।। १८।।

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄनित्युक्तं तत्र मुख्यं पितरं मुख्यां मातरञ्चाह। अमन्दानिति सप्तर्चेन सूक्तेन। तत्र प्रकृतोपयोगि मन्त्रचतुष्टयं व्याक्रियते। भाव्यपुत्रेण स्वनयापरनाम्ना रथदशकप्रदानाद्दशरथाख्यत्वं गतेन राज्ञा तोषितः कक्षीवान् वक्ता, अमन्दानिति कक्षीवान् दानतुष्टः पञ्चभिर्भावयव्यं तुष्टावान्त्ये अनुष्टुभौ भावयव्यरोमशयोर्दम्पत्योः संवाद इति अनुक्रमणिकायां भावयव्य इति चतुरक्षरं नामावगतम्, तत्रमध्यमवर्णद्वयलोपेन भावयव्य एव भाव्यः; तत्रेयमाद्या ऋक् अमन्दानिति। तस्य भाव्यस्यार्थे अमन्दान मानुषत्वे जीवभावाप्राप्तेरमूढान् स्तोमान् स्तुत्यान् वंशसङ्घान् पुत्रानित्यर्थः। मनीषया सङ्कल्पेनैव प्रभरे प्रकर्षेण सञ्चिनोमि। कीदृशान् सिन्धौ समुद्रेऽपि अधि अधिकं क्षियतः ऐश्वर्ययुक्तान्, उपरि सेतुं कृत्वा निवसत इति वा। समुद्रदमनसमर्थान् पुत्रान् भाव्यस्यार्थे कल्पयामीत्यर्थः। यो भाव्यो मे मह्यं सहस्रं गवाम् अमिमीत सङ्ख्यातवान् दातुं सर्वान्। वर्णद्वयलोप आर्षः। सननं विभजनं दानं तद्वान्। अतूर्तोऽहिंसितः श्रवः कीर्तिम् इच्छमानः सवान् यज्ञानिति। यथा भाष्यं वा।।१८।।

हिन्दीभाषानुवाद - जो राजा (दशरथ) अहिंसित यज्ञों से यश की इच्छा करने वाला है, जो मुझे सहस्र गायों के दान से सन्तुष्ट करने वाला है; उस राजा को मैं मनुष्य भाव में प्राप्त, ऐश्वर्यसम्पन्न, समुद्र का दमन करने में समर्थ पुत्रों की प्राप्ति सङ्कल्प मात्र से ही कराऊँगा।। १८।।

टिप्पणी - ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १२६वें सूक्त में सात ऋचायें (मन्त्र) हैं। उनमें से प्रकृतोपयोगी चार मन्त्रों को यहाँ (मन्त्ररामायण के प्रस्तुत प्रक्रम में) सङ्कलित करके उनकी व्याख्या की गयी है। यह मन्त्र उक्त सूक्त का प्रथम (मन्त्र) है।

टीकाकार के अनुसार इन मन्त्रों में महाराज दशरथ द्वारा दान से सन्तुष्ट रोमश दम्पती का संवाद है। उपर्युक्त मन्त्र में उन्हीं का कथन निरूपित है।

मन्त्र में आये हुए पद 'भाव्यस्य' के 'भाव्य' की सिद्धि करने के लिए मूल पद 'भाव-यव्य' के मध्यमवर्णद्वय का लोप करते हुए इस वर्णलोप को आर्ष बताया गया है। भावयव्य=भाव्य का अभिप्राय दशरथ से लिया गया है।

उप मा श्यावाः स्वनयन दत्ता
वधूमन्तो दशरथासो अस्थुः।
षष्टिः सहस्रमनुगव्यमागात्
सनत् कक्षीवां अभिपित्वे अह्नां।। १६।।

उप मेति। स्वनयेन राज्ञा दत्ताः श्यावाः कृष्णकाष्ठजाः दशरथासो रथाः वधूमन्तः प्रत्येकं शकटीयुक्ताः मा उपास्थुः मम समीपे स्थितवन्तः। तथा-षष्टिः सहस्रं गव्यं गोयूथं च रथाननु आगात् आगतं मां प्रति; अतः कक्षीवानहं अह्नां क्रतून् अभिपित्वे सर्वतः पालयितारे सत्पात्रे ईश्वरे वा सनत् धनानि विभजन् अस्मीति शेषः। दशरथपदप्रवृत्तिनिमित्तं प्रागुक्तं ज्ञापयन्नयं मन्त्रः प्रसङ्गादुपन्यस्तः।। १६।।

हिन्दीभाषानुवाद - राजा ने काली लकड़ी से बने (अतएव सुदृढ़) दसरथ, बैलों से युक्त कर मुझे दान में दिये जिनके पीछे साठ हजार गायों का समूह भी मुझे प्राप्त हुआ। (अतएव उनके इस दान से सन्तुष्ट मैं) कक्षीवान् यज्ञ द्वारा सत्पात्र (प्रजापालक) में धन को विभक्त करुँगा अर्थात् दशरथ को पुत्र प्रदान करूँगा।। १६।।

टिप्पणी - उपर्युक्त सूक्त का यह तृतीय मन्त्र है।

मन्त्र में 'स्वनयन' पद आया हुआ है। टीका में 'स्वनयेन' लिखकर उसका अर्थ 'राज्ञा' किया गया है। अतः मन्त्र का मूल पाठ 'स्वनयेन' होना चाहिए।

चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः
सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्
कक्षीवन्त उदमक्षन्त पज्राः ।। २०।।

चत्वारिंशदिति। दशरथस्य राज्ञो यज्ञे लब्धाः चत्वारिंशत्संख्याः शोणा अरुणाश्वाः सहस्रस्य सहस्राश्ववाह्यस्यापि रथस्याग्रे पुरस्तात् श्रेणिं रथनेमिपङ्क्तिं नयन्ति प्रापयन्ति, अतिवेगवत्वात् तांश्च मदच्युतः श्च्योतन्मदान्, कृशनावतः कृशनं कर्शनं नियन्त्रणं तद्वतः सुशिक्षितानित्यर्थः। अत्यान् अतिक्रम्य गन्तुमर्हान् मण्डूकगतीनित्यर्थः। कक्षीवन्तः पुत्राः

उदमृक्षन्त सादिनो भूत्वाऽश्वगुणसन्तुष्टाः स्कन्धदेशे मार्जितवन्तः प्रेम्णा परामृशन्नित्यर्थः। यतः पूर्वं पज्राः पद्भ्यामेव जीर्यन्त इति पज्राः पादचारेण खिन्नाः। पक्षे, पूर्वं ब्रह्मणि षष्णामुपाधीनां चिदाभासानां चारो य उक्तः तदपवादेन निर्विशेषं वस्त्वधिगन्तुं योग्यता-सिद्ध्यर्थममन्दनितिमन्त्रद्वयेन दशरथस्य दानादिकमुक्तम्। तेन योऽतिमहति कुले जातः, महान्ति यज्ञदानादीनि करोति स एव ब्रह्मज्ञानयोग्यो भवतीति गम्यते। तथा च श्रुतिः-'विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन' इत्यादि। तृतीये तु मन्त्रेऽपवाद उच्यते। तत्रायमक्षरार्थः दशभिरिन्द्रियाश्वैर्युक्तो मनोमयः कोशो दशरथः, तस्य च शोणाः रागाः प्रतीन्द्रियार्थं प्रसुप्ततनुछिन्नोदारभेदेन चतूरूपाः सन्तश्चत्वारिंशत्, ते च तावन्तोऽपि सहस्याग्रे सहस्रादप्यधिकं श्रेणिं रागपङ्क्तिं नयन्ति प्रापयन्ति, विषयाणामानन्त्यादनन्ता इत्यर्थः। 'अनन्तं वै मनः' इति श्रुतेः। मदच्युत इति-तेषामुदारावस्था। कृशनावत इति-कृशनं कार्श्यं तद्वत इति तन्वचस्था। अत्यानीति प्रसुप्तविच्छिन्नावस्थे च दर्शिते। तांश्च सर्वान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पांसुरेखावदुन्मार्जितवन्तः। यतः पज्राः इन्द्रियाश्वान्नारोहन्तीत्यर्थः। एतेन इन्द्रियनिर्मुक्तमनोमात्रावस्थानेन योगिनः स्वप्नस्थस्येव अन्नमयप्राणमययोरप्रतिसन्धानेन प्रविलय उक्तः।। २०।।

हिन्दीभाषानुवाद - दशरथ के (यज्ञ में प्राप्त) मतवाले, सुशिक्षित और अत्यधिक वेगशाली चालीस लालरंग के घोड़े, हजार घोड़ों से खींचे जाने वाले रथ के आगे-आगे कतार बनाकर चलते हैं। पैदल चलने से खिन्न (कक्षीवान् के) पुत्रों ने उन पर सवार होकर, अश्वगुणों से सन्तुष्ट होकर प्रेमपूर्वक उनके कन्धों को सहलाया।। २०।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह चतुर्थ मन्त्र है। इस मन्त्र में भी दशरथ के दान की चर्चा की गई है। टीकाकार का कथन है कि जो महान् कुल में उत्पन्न होता है और यज्ञ-दानादि करता है, ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होता है। मन्त्र का अध्यात्म पक्ष में अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि दश इन्द्रिय रूपी अश्वों से युक्त मनोमय कोश ही 'दशरथ' है। प्रत्येक इन्द्रिय के प्रति जो राग है, वह प्रसुप्त-तनु-छिन्न उदार भेद से (१०x४=४०) चालीस हैं। वे हजारों से भी बढ़कर रागों के प्रकार उत्पन्न करते हैं, क्योंकि मन तो अनन्त है। इन्द्रियों के वश में न रहने वाले योगि-जन उप पर नियन्त्रण करके उन रागों को धूलि की तरह हटा देते हैं।

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।। २१।।

एवं कक्षीवता दशरथस्य पुत्रप्रदाने सङ्कल्पिते दशरथः स्वभार्याया व्रतदार्ढ्ये सन्दिहानस्तया प्रबोध्यते-उपमेति। पादपूरणर्थमुपसर्गस्य द्वित्वम्। मे मम उपोप-समीपे परामृश इयं दृढव्रतास्ति न वेति मदीयैर्लक्षणैर्विचारय। मे मम व्रतानि दभ्राणि अर्धस्थितानि

मा मन्यथाः मा जानीहि। यतोऽहं सर्वा कृत्स्ना रोमशा रोमाणि शातप्रतिविधूननेन दूरीकरोति इति रोमशा अश्वा सेव शातितदोषोऽस्मि-'अश्वा इव रोमाणि विधूय पापम्' इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धोऽयं दृष्टान्तः। यथा गन्धारीणां गन्धार-देशीयानामविका बहुलोमाऽपि अविपालैः शातितलोमा क्रियते तथास्मि। अत्र केचिद्रोमशापदेन रोमवत्यस्मीति व्याचक्षते तद्विगीतत्वादुपेक्ष्यम्। 'सर्वास्ता रोमशाः कृधि' इत्यत्र अपालामिन्द्रत्रिपूतत्वं कृणोः सूर्यत्वचमित्यनन्तरमन्त्रेऽपालायाः त्रिः शोधनेन सूर्यसमत्वमकरोः, तथा ममापि तानि सर्वाणि उर्वरादीनि पूर्वमन्त्रोक्तानि प्ररोहार्थं शोधायित्वा दीप्तिमन्ति कुर्विति समुदायार्थः प्रतीयते, स एवात्रापि ग्रहीतुं युक्तः रोमशेत्यव्युत्पन्नं प्रातिपदिकम्। अन्यथा, मत्वर्थीयशप्रत्ययान्तत्वे पदकाले एव गृह्येत अवान्तरपदसंज्ञायाः सत्त्वादिति दिक्।। पक्षे, बुद्धिमालिन्ये सति बाह्येन्द्रियवियुक्तमपि मनः स्वप्नेऽपि महान्तमनर्थं सृजति। अतस्तस्यां शुद्धायाम् अस्मितामात्रावशेषायांसर्वसङ्कल्पोपरमान्मनोमयस्य अहं कर्तेति अभिमानाभावान्मनोमयस्य विप्रविलापनं कृतं भवति। कुशलैव कौशल्या तत्त्वप्रतिपत्तियोग्येति योऽर्थः कौशल्यापदेनोक्तः, स एवात्र रोमशापदेन गृहीत इति कौशल्यायाः नामान्तरं रोमशेति। तथा, ऋष्यशृङ्गस्य नामान्तरं कक्षीवानिति। एवमादि तत्तन्नियोगानुष्ठानवशदुन्नेयम्।। २१।।

हिन्दीभाषानुवाद - मेरे व्रत को अधूरा मत समझो। मेरे पास आकर, मेरे लक्षणों से विचार करो कि मैं दृढ व्रत में स्थित हूँ या नहीं। जैसे गन्धारी स्त्रियाँ बहुत रोम वाली होने पर भी अविपालों द्वारा रोमरहित कर दी जाती हैं (और जैसे अश्व अपने रोयें झाड़ देतें हैं।) वैसे ही मैं भी सभी पापों से मुक्त हूँ।। २१।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सप्तम मन्त्र है (१.१२६.७)।

टीकाकार के अनुसार उपर्युक्त मन्त्र कौसल्या का उक्तिपरक है। यद्यपि रामायण या रामकथा में कौसल्या के व्रत की दृढता के सम्बन्ध में दशरथ के सन्देह का कोई प्रसङ्ग नहीं प्राप्त होता तथापि मन्त्रसङ्ग्राहक और टीकाकार ने इस प्रकार के प्रसङ्ग को उपन्यस्त करने और इस प्रकार का अर्थ करने में किस औचित्य का स्थापन किया है, यह समझना द्रविड़-प्राणायाम ही होगा।

महां ऋषिर्देवजो देवजूतो
अस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः
विश्वामित्रो यदवहत्सुदास-
मप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः।। २२।।

तदेवं रामभद्रादीनां चतुर्णां जन्म वर्णितम्। तेषु काकपक्षधरेषु यज्ञविघ्नापनोदनार्थं रामलक्ष्मणौ याचितुं दशरथं प्रति विश्वामित्र आजगामेति कथासूचकंमन्त्रमाह-'महानिति।' महान् पूज्यः ऋषिर्नारायणः, देवजः राज्ञः सकाशादाविर्भूतः देवजूतः देवाः इन्द्रादयः इन्द्रियाणि वा जूताः प्रेरितानि येन स देवजूतः। सिन्धुं स्यन्दमानमर्णवं समुद्रम् अस्तभ्नात् स्तम्भितवान्। नृघ्न् चष्टे अनुकम्प्यत्वेन पश्यतीति नृचक्षाः इन्द्रियद्रष्टा वा, 'चक्षुषश्चक्षु' इति श्रुतेः। तमृषिं सुदासं, 'वसिष्ठः सुदासं पैजवनमभिषिषेच' इति ब्राह्मणाद् वसिष्ठयाज्यस्य मुखयस्य सुदासोऽत्र ग्रहणयोगात् सुदासस्य राज्ञो गोत्रे भवं रामं विश्वामित्रः स्वयज्ञं त्रातुं यतूअवहत् यज्ञवाटं प्रति प्रापितवान् तेन कर्मणा इन्द्रः कुशिकैः कुशिकसन्तत्या अप्रियायत, अविघ्नेन यज्ञे हवींषि भोक्ष्यामीति हर्षं प्राप्तवान्।। पक्षे, विश्वामित्रो जीवः आनन्दमयं शेधितत्वं पदार्थमात्मानं गौणकर्म सुदासं सामाख्यं पुच्छं ब्रह्म प्रापितवान्, अतः ब्रह्मनिष्ठैः कुशिकैरिन्द्रोऽप्रियायत- 'आत्मा ह्येषां स भवति' इति श्रुतेः। ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मनिष्ठो देवानामात्मभावं गतस्तेषां प्रियतमो भवतीति भावः। एतेनानन्दमयस्य प्रविलय उक्तः। तमेतं मुमुक्षुं प्राप्यमात्मानमज्ञात्वा यः कर्म करोति, तत्तत् नश्यतीति रामं प्रति विश्वामित्रागमनेन सूचितम्। श्रुतिश्चैतदाह-'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविविदित्वाऽस्मिंल्लोके जुहोति यजति ददाति।'माध्यन्दिन पाठे-'तपस्तप्यते' इत्यपि, 'बहूनि वर्षसहस्राण्यन्ते यदेवास्य तद्भवतीति' इति। अत्राप्यर्णवस्तम्भनमूविपिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मध्विति राजवृत्रं जङ्घनप्रागपागुदगिति च सोमपानाभ्यनुज्ञानं सर्वदेशीयवृत्रहननं च वक्ष्यमाणं विश्वामित्राद्बलातिबलयोर्ग्रहणं चेति सर्वं रामसङ्गृतम्। एवमन्यदपि लिङ्गृविशेषोपेतं मन्त्रजातमुदाह्रियते न निर्लिङ्गं हठादाकृश्यत इति दिक्।। २२।।

हिन्दीभाषानुवाद - महान् जितन्द्रिय, मनुष्यों पर अनुकम्पा करने वाले ऋषि विश्वामित्र देवताओं से प्रेरित होकर अपने यज्ञ की रक्षा करने के लिए, समुद्र को स्तम्भित करने वाले राजा सुदास के गोत्र में उत्पन्न राम (और लक्ष्मण) को (दशरथ से याचना करके अपने आश्रम में) ले गए। 'अब निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न होने पर विश्वामित्र द्वारा प्रदत्त हवियों का भोग करूँगा'-ऐसा सोचकर इन्द्र प्रसन्न हुए।। २२।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के तिरपनवें सूक्त का नौवां (मन्त्र) है। इस मन्त्र में विश्वामित्र द्वारा दशरथ से रामलक्ष्मण को माँगकर अपने यज्ञ की रक्षा के लिए आश्रम में लें जाने की कथा वर्णित है।

पूर्वापरं चरतौ माययैतौ
शिशू क्रीडन्तौ परिपातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट
ऋतूनन्यो विदधज्जायते पुनः।। २३।।

ततो यज्ञरक्षार्थं प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ सूर्यासावित्रीनामदेवता स्तौति-पूर्वापरमिति।। शिशूरामलक्ष्मणौ पूर्वापरमग्रे पश्चाच्च चरतो गच्छतः मायया शिशुत्वम् एतौ गतौ क्रीडन्तौ अध्वरं परिपातः। तयोरन्य एको रामः सूर्यवद् विश्वानि भुवनानि क्षेत्राणि आचष्ट साकल्येन पश्यति, चैतन्यज्योतिः स्वरूपत्वात्। अन्यो लक्ष्मणः ऋतून् तिथ्यादिजननक्रमेण वसन्तादीन् चन्द्र इव ऋतुशब्दोदितं कालं काल्यमानं जगत् विदधद्रचयन् पुनः पुनर्जायते। पक्षे, श्रुतितो युक्तितश्चाध्यारोपापवादाभ्यां प्रतिपन्नस्य वस्तुनः सम्पादनार्थं निदिध्यासमिच्छतः तदालम्बनत्वेन सूत्रान्तर्यामिणावुपन्यस्तौ यद्यपि यज्ञं प्रति गन्तृत्वं रामकृष्णयोरपि शिश्वोर्दृष्टं तथापीत आरभ्य यावदध्यायपरिसमाप्ति विवाहलिङ्गानि- 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्' इत्यादीनि-'उदीर्षातः पतिवती ह्येषा सञ्जायां पत्या सृज' इति भार्याहर्तुः प्रार्थनारूपेण लिङ्गेन लब्धायाः भार्यायाः हरणम्, 'पुनः पत्नीमग्निरदात्' इति पुनस्तल्लाभ इत्येतत्समुच्चितं सर्वं रामे एव सङ्गतमिति अयं प्रघट्टको रामपर एव।। २३।।

हिन्दीभाषानुवाद - इन दोनों बालकों (राम और लक्ष्मण) ने (यज्ञशाला में) आगे-पीछे चलते हुए अपनी शक्ति से खेल-खेल में (विश्वामित्र के) यज्ञ की रक्षा की। उनमें से एक राम (सूर्य के समान) समस्त भुवनों को देखते थे (उनकी रक्षा करते थे) और दूसरे, लक्ष्मण ने तिथि आदि गणना द्वारा काल का आकलन करते हुए संसार को धारण किया।।२३।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दशम मण्डल के पचासीवें सूक्त का अठारहवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में रामलक्ष्मण द्वारा यज्ञ की रक्षा रूप वस्तु ग्रथित है।

परादेहि शामूल्यं ब्रह्मभ्यो विभजा वसु।
कृत्यैषापद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ।। २४।।

प्रस्थितयोस्तयोः पुरस्ताटकामागतां वीक्ष्य ऋषिराह-परादेहीति।। विजयश्रियं गृहश्रियं वा प्राप्तुं गच्छतः पूर्वं पराजयरूपा दारिद्र्यपा वा अलक्ष्मीरायाति। तत्र पूर्वा शस्त्रेणैव हन्तव्या, परा दानादिना हन्तव्येत्यत उक्तम्। शामूल्यममङ्गल्यम् इदं ताटकारूपं परादेहि दूरतः खण्डय, इतरस्याः विनाशार्थं ब्रह्मभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वसु वित्तं विभज देहि। कुतः यत एषा कृत्या वधकामा राक्षसी पद्वती पादवती जायेव सहचारिणी भूत्वा पतिं राजानं गृहपतिं वा विशते आयाति। एवमुक्तमात्रेण रामेण ताटका निहता विवाहात् प्राक् ब्राह्मणेभ्यो दानानि च दत्तानि इत्युपरिष्टाद्द्रष्टव्यम्। पक्षे, शामूल्यमर्थतृष्णा सा हि कर्मोपास्ति मतिबन्धहेतुर्वैराग्येण सर्वं त्यागेन च हन्तव्येति भावः। अयमपि पौर्वापर एव मन्त्रः ।। २४।।

हिन्दीभाषानुवाद - अमङ्गलरूपिणी इस (ताटका)को दूर से ही शस्त्र द्वारा मार डालो और ब्राह्मणों को धन का वितरण करो, क्योंकि वध के योग्य यह राक्षसी पादवती होकर पत्नी

के समान पति की कामना करने लगती है (राजा या गृहपति कें यहाँ गृहणी की तरह पहुँच जाती है (।। २४।।)

टिप्पणी - यह पूर्वोक्त सूक्त का उनतीसवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार इस मन्त्र में ताटकावध की कथा है। महर्षि विश्वामित्र ने ताटका नामक राक्षसी को आता हुआ देखकर राम से कहा कि विजयलक्ष्मी प्राप्त करने का उद्योग करने वाले के समक्ष पहले पराजयरूपिणी या दारिद्र्यरूपिणी अलक्ष्मी आती है। इन्हें क्रमशः शस्त्र और वित्त से मारना चाहिए। अतः प्रथमतः तुम ताटका को शस्त्र से मारो और पश्चात् ब्राह्मणों में धान का वितरण करके द्वितीय प्रकार की राक्षसी का वध करना, क्योंकि यदि इनका शमन नहीं करोगे तो ये राक्षसियाँ पत्नी के समान राजा या गृहपति के पास जाती हैं।

उपप्रेत कुशिका चेतयध्वमश्वं
राये प्रमुञ्चतासु दासः।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागु -
दगथायजाते वर आपृथिव्याः।। २५।।

एवं ताटकां हत्वा यज्ञवाटमागत्याहतुः- उपप्रेत इति। भो कुशिकाः विश्वामित्रीयाः उपप्रेत समीपे प्रकर्षेणायात चेतयध्वं सावधाना भवत। राये कर्मसमृद्धये सुदासः सुदासगोत्रोत्पन्नस्य रामस्याज्ञया अश्वं यज्ञसाधनविशेषं प्रमुञ्चत प्रचारयत। राजा रामो वृत्रं विघ्नकरम् असुरगणं जङ्घनत् निहन्ति प्रागपागुदक् सर्वदिक्षु स्थितम्। अथ अनन्तरं पृथिव्याः वरे स्थाने यज्ञवाटे आयजाते-उपसंवादं करोति-यजध्वमित्याज्ञापयतीत्यर्थः। अत्र वृत्रशब्दितौ मारीचसुबाहू। पक्षे, कर्तृकत्वाभिमानः फलाभिषङ्गश्च। तौ निहत्य ईश्वरो भक्तानां यज्ञं यातीति भावः। अश्वादिकीर्तनं प्ररोचनार्थम्।। २५।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे विश्वामित्रसम्बद्ध ऋषियों! (यज्ञशाला के) समीप आइये और सावधान हो जाइये। सुदासगोत्रोत्पन्न राम की आज्ञा से यज्ञ के साधानविशेष अश्व को छोड़ दीजिए अर्थात् यज्ञविधि आरम्भ कीजिए। क्षत्रियकुलभूषण राम ने यज्ञ में विघ्न डालने वाले मारीच-सुबाहु आदि राक्षसों को पृथिवी पर चारों दिशाओं में मार डाला है और (वे) यज्ञ आरम्भ करने की आज्ञा देते हैं।। २५।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के तिरपनवें सूक्त का ग्यारहवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, इस मन्त्र में, राम के द्वारा यज्ञविध्वंसक मारीच-सुबाहु आदि राक्षसों को मारकर विश्वामित्र-आश्रम के ऋषियों को निर्भय करने की कथा है। अध्यात्म पक्ष में, कर्तृत्वाभिमान और फलासक्ति-इन दोनों को दूर करके ईश्वर भक्तों के यज्ञ में जाता है।

प्राचीन काल में अश्वमेधादि यज्ञों के विधान में यज्ञीय अश्व को छोड़ने चतुर्दिक

विचरण कराने की शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह किया जाता है। तदनुरूप इस मन्त्र में अश्वमोचन का निर्देश किया गया है।

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
करदिन्नः सुराधसः।। २६।।

एवमुक्तिपूर्वकं यागे साधिते रामे विश्वामित्रानुग्रहमाह-विश्वामित्रा इति। विश्वामित्राः ऋषयः ब्रह्म महतीं विद्यां बलातिबलाख्यां इन्द्राय रामाय अरासत दत्त्वन्तः। वज्रिणे महामणिधारिणे! कीदृशं ब्रह्म? नः अस्मान् सुराधसः शोभनसिद्धियुक्तानेव करत् कुर्वत्। पक्षे, एवं तृष्णासङ्गं फलाशां च त्यक्त्वाऽनुष्ठिते यज्ञे, किञ्चिच्चित्तशुद्धौ जातायां विश्वामित्रो जीवः सर्वाणि कर्माङ्गावबद्धानि तत्तद्देवतोपासनानि प्रत्यगभिन्नरामाभिमुखान्येव करोति -'अहं क्रतुरहं यज्ञ' इत्युक्तप्रकारेणेति भावः।।२६।।

हिन्दीभाषानुवाद - विश्वामित्र ने बज्रतुल्य अथवा महामणिधारी श्रीराम को बला और अतिबला नामक दो महान् विद्यायें प्रदान कीं जो हमारे लिए (ऋषियों अथ च लोक के हित के लिए) सुन्दर धन (रूप सिद्धियाँ) देने वाली थीं।।२६।।

टिप्पणी - यह पूर्वोक्त सूक्त का तेरहवाँ मन्त्र है। इस मन्त्र में, टीकाकार के अनुसार, विश्वामित्र द्वारा राम को बलातिबला विद्यायें प्रदान किए जाने का वर्णन है। ब्रह्म का अर्थ मन्त्र भी होता है। वे विद्यायें मन्त्रात्मिका ही हैं। 'इन्द्र' का अर्थ 'राम' करते हुए उसके विशेषण 'वज्री' का अर्थ 'महामणिधारी' किया गया है। विष्णु, कौस्तुभ नामक महामणि धारण करते हैं। राम विष्णु के ही नररूप हैं, अतः वे भी परोक्षतः महामणिधारी हैं।।

तनूषनो बलामन्द्रानलुत्सु नः बलम्।
तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि।। २७।।

तत्रायं बलामन्त्रः-बलं धेहीति बलं धेहि। अनलुत्स्विति-जीविकामात्रस्योपलक्षणम्। तोकायेति-स्यादेरप्युपलक्षणम्। तोकाय स्त्रीपुंसाधारणायापत्याय। तनयाय पुत्राय। जीवसे जीवितुम। शेषं स्पष्टम्। सर्वेषां दार्थे सनि स्वस्थचित्तो बाह्यानाभ्यन्तरांश्चारीन् जेतुं क्षमते इति भावः।। २७।।

हिन्दीभाषानुवाद - हमें बल दो, हमारे शरीर को अपरिमित बल दो, हमारे पुत्रों-पौत्रों के जीवन के लिए तुम बल प्रदान करने वाली हो।

टिप्पणी - यह पूर्वोक्त सूक्त का अठारहवाँ मन्त्र है। टीकाकार के अनुसार इसका अभिप्राय बला नामक विद्या से है। बला मन्त्र है-'बलं धेहीति बलं धेहि।'

टीकाकार ने इतनी संक्षिप्त व्याख्या की है कि मन्त्र के पदों का अर्थ और समग्र मन्त्रार्थ भी स्पष्ट नहीं है।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य
याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवन् शूर जिन्व।
या नो द्वेष्टयधरः सस्पदीष्ट
यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु।। २८।।

अतिबलामन्त्रमाह-इन्द्रोतिभिरिति। हे इन्द्र ऊतिभिर्विभूतिभिर्बहुलाभिर्नोऽस्मान् अद्य जिन्व तर्पय, यात् च्छ्रेष्ठाभिः यात्सु गच्छत्सु ब्रह्मादिषु द्वेष्टि सः अधरो नीचो भूत्वा पदीष्ट पततु। यमु च द्विष्मो वयं तमु तमपि प्राणो जहातु। अत्र बलायाः स्वरूपं शरीरसामर्थ्येनेष्टसिद्धिः, अतिबलायास्तु मनसैवेष्टसिद्धिः। पक्षे, असनादिदाढ्र्यहेतुरारोग्यादिकम्, ऐकाग्र्यदाढ्र्यहेतुश्चित्तस्य प्रत्यक् प्रावण्यं चेति योग्यतया ग्राह्यम्। ऊतिभिर्योगैश्वर्यैः। यच्छब्दादार्थः पाप्मा। उपप्रेतेत्यादयश्चत्वारो मन्त्रा महाऋषिरित्यादिप्रघट्टकस्थाः।। २८।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे इन्द्र! आज अपनी श्रेष्ठ और प्रचुर रक्षाविधियों (विभूतियों) से हमें सन्तृप्त कीजिए। हे मघवन्! जो हमसे द्वेष करते हों उनका अधःपतन हो जाय और जिनसे हम द्वेष करते हों, प्राण उनका त्याग कर दें।। २८।।

टिप्पणी - यह पूर्वोक्त सूक्त का इक्कीसवाँ मन्त्र है। टीकाकार ने इसे अतिबला मन्त्र बतलाते हुए कहा है कि बला मंत्र का स्वरूप है- शरीर सामर्थ्य से इष्टसिद्धि जबकि अतिबला मन्त्र का स्वरूप है-मनोबल से इष्टसिद्धि।

अरं दासो न मीदुषे करा-
ण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचिता देवो अर्यो
गृत्स राये कवितरो जुनाति।। २९।।

एवं विद्या प्राप्य गौतमाश्रमं गत्वाऽहल्योद्धरणे कृते रामं गौतमः प्रस्तौति-अरं दास इति। अहं मीढुषे भार्याप्रदानेन मनोरथवर्षिणे देवाय राज्ञे रामाय दासो न दास इव अरं कराणि। दिव्यगन्धपुष्पादिना अलङ्करवाणि। भूर्णये बहुप्रदात्रे। अनागाः निर्दोषः यतः अर्यःस्वामी देवो द्योतमानः। अचितः कर्माणि षष्ठीचेतनारहितां पाषाणभूतां जायाम् अचेतयत् चेतनावतीं कृतवान् अतो मादृशस्तव दासो गृत्सम् प्राणो वै गृत्स' इति श्रुतेः। प्राणवन्तं मेधाविनं जायादेहं राये कर्मसमृद्धये जुनाति अनुसरति। कवितरः, क्रान्तदर्शिषु श्रेयान्। पक्षे, अहल्या सहधर्मचारिणी शुभवासना। गौतमो धर्मः। इन्द्रो धर्माभासः पाषण्डधर्मः, चेतनाभिभूता सती रामाश्रयात्पुनर्धर्मसाहचर्यं लेभे इति। अत्रापि पूर्वमन्त्रेण अस्ति ज्यायान्कनीयस उपराम् इति भ्रात्रोः साहचर्यम्। अर्योऽचितोऽचेतयदिति लिङ्गद्वयं राघवैकशरणम्।। २९।।

हिन्दीभाषानुवाद - (अहल्योद्धार के पश्चात् महर्षि गौतम श्रीराम की स्तुति करते हैं-) मैं कामनाओं की वर्षा करने वाले श्रीराम को सेवक की तरह दिव्यगन्ध पुष्पादि से अलङ्कृत करता हूँ। प्रचुर दान करने वाले, विशुद्ध चरित्र, अपने तेज से विद्योतमान स्वामी श्रीराम ने प्रस्तर बनी हुई अचेतन मेरी धर्मपत्नी को पुनः चेतनवती बना दिया। अतः मैं दासभावापन्न होकर कर्मसमृद्धि (तपोवृद्धि) के लिए क्रान्तदर्शी श्रीराम की शरण में जाता हूँ।।२९।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के सातवें मण्डल के छियासीवें सूक्त का सातवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में अहल्योद्धार की कथा की ओर सङ्केत करते हुए गौतम ऋषि द्वारा श्रीराम की स्तुति की गयी है।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः
सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्त्वा सहोजा
जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित्।। ३०।।

अथ स्वयंवरं जिगमिषोः रामस्य देवरथो दिव्यायुधानि चोपस्थितानीत्याह बलविज्ञाय इति। बले विषये विज्ञायो विज्ञेयः परीक्षणीयोऽसि त्रैय्यम्बकं धनुः सजयं कृतवते कन्यां दास्यामीत्याशयवता जनकेनेति शेषः। स्थविरो वृद्धः प्रवीरोऽतिशूरः सहस्वान् मानसबलवान्। वाजी बाजो वेगः शारीरं बलं तद्वान्। सहमानः शत्रुचमूविमद्रसोढा उग्रस्तासां मर्दिता। अभिवीरः सर्वतो वीरैः भ्रातृभिः परिवृतः। एतेनास्मिन् काले जनकपुरे सर्वेषां भ्रातृणां सान्निध्यमस्तीति सूचितम्। अभिसत्त्वा सर्वतो बलवान्। सहोजाः मनःसङ्कल्पमात्रात् जातः, न तु कर्मणा जातः। ईदृक् सन् हे इन्द्र जैत्रं जयावहं रथम् आतिष्ठ। गोवित् गां भुवं विन्दति पालनीयत्वेनेति गोवित् राजा। पक्षे, धर्मादिभिर्दृदमनाक्रान्तं मम चित्तरथम् आक्रमस्व। ततश्च धर्मादयोऽपि तत्रास्पदं लप्स्यन्ते इति भावः। अक्षरयोजना स्पष्टा।।३०।।

हिन्दीभाषानुवाद - (स्वयंवर को जीतने की इच्छा वाले श्रीराम के समक्ष देवरथ और दिव्यायुधों ने उपस्थित होकर विनती की-) विज्ञेय बल वाले, ज्ञान-धर्म-वृद्ध, वीर, बलिष्ठ, वेगवान्, शत्रुविनाशक शत्रुसेना का मर्दन करने वाले, सर्वशक्तिमान, सङ्कल्पमात्र से उत्पन्न और प्रजापालन हेतु पृथिवी को धारण करने वाले आप, भाइयों से घिरे हुए इस जयशाली रथ पर आरूढ़ होइए।। ३०।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एकसौ तीसरे सूक्त का पाँचवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार इस मन्त्र का जो अर्थ प्राप्त हो रहा है, उसकी सङ्गति

कल्पनाक्लिष्ट है। राम के लिए स्थविर और उग्र विशेषण चिन्त्य हैं। स्थविर का अर्थ प्रौढ़ या वृद्ध आयु वाला होता है। राम तो अभी 'काकपक्षधर' थे। राम 'धीरोदात्त' कहे गये हैं अतः उग्र भी नहीं हैं। तथापि किसी तरह इन विशेषणों की संगति लगाई जा सकती है। वृद्ध-चार प्रकार के कहे गऐ हैं-आयुवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, धर्मवृद्ध, और वैराग्यवृद्ध। राम का वृद्धत्व ज्ञानपरक और धर्मपरक माना जा सकता है (वह भी लौकिक दृष्टि से नहीं)। इसी प्रकार शत्रुदमन में उनकी उग्रता कही जा सकती है।

वाजी का अर्थ वेगशाली (वेगवान्) होता है। इससे राम की क्षिप्रकारिता ली जा सकती है।

वेदों में वीर शब्द भ्राता के अर्थ में बहुशः प्रयुक्त है। टीकाकार ने यहाँ राम को भाइयों से घिरा (अभिवीरः) हुआ बताया है। साथ ही, टिप्पणी भी की है कि इससे जनकपुर में सभी भाइयों का सान्निध्य था- यह सूचित होता है।

लङ्का में राम-रावण युद्ध के समय इन्द्र के रथ के आने का उल्लेख (राम के लिए) है। रामकथा में, इस प्रसङ्ग में राम के पास देवरथ आने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। राम तो महर्षि विश्वामित्र के साथ अनुज लक्ष्मण समेत पदाति ही जनकपुर गए थे। अयोध्या से दशरथ समेत शेष दोनों भाई धनुभंग के पश्चात् बुलाये गए थे।

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा
गोविन्दु ईप्स आयुधानिबिभ्रत्।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं
तुरीयं धाम महिषो विवक्ति।। ३१।।

चम्विति। चमूः शत्रुसेनाः सादयतीति चमूषत्। श्येनः शकुनः, जीवेशयोः पक्षिणोर्मध्ये बलवान् पक्षी ईश्वर इत्यर्थः। विभृत्वा विश्वस्य धारकः पोषकश्च। गोविन्दुः गां पृथिवीं बिन्दति वाराहावतारे लभत इति गोविन्दुः उकारान्तत्वमार्षम्। ईप्सः क्षीरादिमण्डवत् ब्रह्माण्डसारभूतः। आयुधानि धनुर्बाणादीनि बिभ्रत् धारयन्नस्तु। अपामूर्मिमन्तं समुद्रं सचमानो गच्छन् रावणवधार्थमिति शेषः। तुरीयं धाम विश्वतैजसप्राज्ञापेक्षया चतुर्थं निरुपाधि चैतन्यज्योतिः। महिषो महान्। आराधितः सन् विवक्ति स्पष्टीकरोति। शुद्धं ब्रह्मैवास्मान् वीरवेषेणावत्विति भावः।।३१।।

हिन्दीभाषानुवाद - शत्रुसेना को जीतने वाले, प्राणियों में श्रेष्ठ (भगवान्), विश्व का पालनपोषण करने वाले, जितेन्द्रिय अथवा वाणी पर नियंत्रण रखने वाले, आयुध धारण करने वाले, (सीतोद्धार-हेतु लङ्का विजय करने के लिए) सागरलङ्घन करने वाले, तुरीय धाम वाले आप (प्रभु श्रीराम) महान हैं और (आराधना करने पर प्रसन्न होकर) अपने को व्यक्त (प्रकट) करते हैं।। ३१।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के नौवें मण्डल के छानबेवें सूक्त का उन्नीसवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र द्वारा भी प्रभु श्रीराम की स्तुति की गयी है। उन्हें अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है। 'श्येनः शकुनः' भी कहा गया है। यहाँ जीव और ब्रह्म का सामानाधिकरण्य प्रदर्शित किया गया है। श्रुति में अन्यत्र भी प्रतिपादित है- 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते।' तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।'

टीकाकार ने 'गोविन्दुः' का अर्थ 'वाराहावतार में पृथिवी का उद्धारक' किया है। कोशों में 'गो' के अनेक अर्थ हैं जिनमें इन्द्रिय और वाणी भी है। मैंने इन्हीं दो का अर्थ ग्रहण कर हिन्दीभाषानुवाद में तदनुरूप अर्थ किया है।

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्
क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिञ्चत्।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा
वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्।। ३२।।

यदर्थं बलपरीक्षा जनकेन राज्ञा क्रियते तस्याः सीताया उत्पत्तिं भविष्यपुराणोपबृंहितामाह- पिता यदिति। पिता रावणो यत् यदा स्वां दुहितरम् उत्पन्नमात्राम् इयं कुलोच्छेदिका भविष्यतीति दैवज्ञवचनात् अधि अधिकं स्कन् स्कन्नवान् दूरे त्यक्तवान्। कुत्रेत्यत आह - क्ष्मया पृथिव्या संजग्मानः सङ्गतः सन्। रेतो दुहितृरूपं निषिञ्चत् निषिक्तवान् भूम्युदरे तां निहितवानित्यर्थः। तत्रापि स्वाध्यः सपरीवारस्य रावणस्य वधेन सुष्ठु कल्याणं द्यावापृथिव्योर्ध्यायन्ति ते स्वाध्याः देवाः इन्द्रादयः तज्जीवनार्थं ब्रह्म चैतन्यम्। अजनयन् मातृगर्भ इव पृथिवीगर्भेऽपि तामरक्षन्। न त्वसौ श्वासनिरोधेन तत्र ममारेत्यर्थः। तत्रापि वास्तोष्पत्तिं स्थानाधिष्ठातारं गृहपतिं व्रतयां व्रतपतिं यजमानमुद्दिश्य निरतक्षन् यज्ञस्थानं कर्षितवन्तः ततश्चैनां स्थानपतिर्जनको लब्धवानिति भावः। पक्षे, पिता कामः, दुहिता श्रद्धा, वास्तोष्पतिर्यज्ञाधिकारी धर्मादिकामो, ह्यदृष्टफले व्यर्थे श्रद्धां बध्नाति। अतः कामजा श्रद्धा चेत् बोधेन संयुज्येत, तर्हि, सपरिवारं काममुन्मूलयेत्। अतस्तां सन्तः (?) सात्त्विकीं राजसेन कामेन दूरे त्यक्तां यज्ञादिसत्कर्मकारी लभते इत्यर्थः।।३२।।

हिन्दीभाषानुवाद - पिता (रावण) ने जब उत्पन्न होते ही अपनी पुत्री (यह कुलोच्छेदिका होगी- इस प्रकार ज्योतिषी के वचन पर विश्वास करके) को दूर त्याग दिया तब कन्यारूप वह तेज भूगर्भ में चला गया। इन्द्रादि देवताओं ने उस (कन्या) को जीवित रखने के लिए उसमें चेतना बनाये रखी। उस भूस्थान के अधिष्ठाता यजमान जनक के उद्देश्य से देवताओं ने यज्ञस्थान को जोता (और इस प्रकार वह कन्या राजर्षि जनक को प्राप्त हुई)।।३२।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एकसठवें सूक्त का सातवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार इसमें सीता की उत्पत्ति का निरूपण है जिसका उपबृंहण भविष्यपुराण में किया गया है। रावण को सीता का पिता बताते हुए टीकाकार ने लिखा है कि कन्या के उत्पन्न होते ही ज्योतिर्विदों ने बताया कि यह कन्या कुलोच्छेदिका होगी। अतः रावण ने उसे अपने राज्य से दूर त्याग दिया। वह कन्या पृथिवी में समा गई और देवतागण वहाँ उसके जीवन की रक्षा करते रहे। बाद में देवताओं के कल्याण के लिए यज्ञस्थान का कर्षण करते हुए वहाँ वह कन्या जनक को प्राप्त हुई।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगा ससि यथा नः सुफला ससि।। ३३।।

एवमाधिर्भूतां सीतां देवाः रामदयो प्रार्थयन्ते- अर्वाचीति । हे सुभगे! हे सीते! स्यति सर्वेषां रक्षसामन्तं करोतीति सीता कर्तरि क्तः। लाङ्गलपद्धतौ तु मुख्यस्यावयवार्थस्याभावात् सीतोत्पत्तिस्थानत्वेन सीतात्वं गौणम्। हे सीते! त्वां वन्दामहे यथा नोऽस्माकं सुभगा ऐश्वर्यदानेन सुफला प्रतिपक्षनाशनेन असति दीप्यसे तथार्वाची अनुकूला भव।। ३३।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे सुभगे सीते! हम तुम्हारी वन्दना करते हैं ताकि तुम हमारे अनुकूल बनो, हमारे लिए ऐश्वर्य प्रदान करो और हमें शत्रुविनाश-रूप सुन्दर फल प्रदान करो।।३३।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के चौथे मण्डल के सत्तावनवें सूक्त का छठां मन्त्र है। टीकाकार के अनुसार, इसमें देवों ने सीता की स्तुति की है।

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ।। ३४।।

इन्द्र इति। इन्द्रो रामः सीतां निगृह्णातु वीर्यशुल्कां तां स्वायत्तां करोतु। पुष्णातीति पूषा, जनकश्च ताम् अनु पश्चात् रामाय यच्छतु ददातु। सा सीता नोऽस्माकं दुहां दोग्ध्रीणां मध्ये उत्तरामुत्तरां समाम् उत्तरोत्तरवर्षेषु, 'अत्यन्तसंयोगे' द्वितीया। पयस्वती बह्व्न्नप्रदा भूयादिति शेषः। पक्षे, इन्द्रः शास्त्रार्थावबोधः। सीतां सात्त्विकीं श्रद्धाम् पूषा धर्मः। पयो योगसिद्धिः।। ३४।।

हिन्दीभाषानुवाद - श्रीराम सीता को ग्रहण करें और बाद में राजा जनक उन्हें राम को (विधिपूर्वक) प्रदान करें। वह सीता आगे आने वाले (उत्तरोत्तर) वर्षों में हमें सुख प्रदान करने वालों में सर्वाधिक सुखरूप अन्नप्रदा हों।। ३४।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र है। जनक की प्रतिज्ञानुसार सीता वीर्यशुल्का थीं। अतः देवगण मना रहे हैं कि प्रथमतः राम शिवधनुष को तोड़कर सीता को स्वायत्त करें और फिर राजर्षि जनक विधिवत् उनसे राम का विवाह करें।

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं
जयन्तमज्मप्रमृणन्तमोजसा।
इमं सजाता अनुवीरयध्व-
मिन्द्रं सखायो अनुसंरभध्वम्।। ३५।।

ततः स्वयंवरशालां प्रविष्टेषु राजसु देववाक्यमिदम्- गोत्रभिदमिति।। गोत्रः पर्वतेन्द्रः तेन तद्रूपं रुद्रधनुर्लक्ष्यते, त्रिपुरवधे- 'रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरद्रोगे धनुः' इति तस्य तद्धनुष्य स्मरणात् तद्भिदरुद्रधनुर्भिदमित्यर्थः। अत्र संहितायां प्रपूर्वमन्त्रे रक्षोहा मित्रो अपबाधमा न इति पूर्वमन्त्रे च, बलं विज्ञाय इति, गोत्रभिदिति(?) च लिङ्गात्। अत्रापि गोत्रभित्पदस्य रुद्रधनुर्भित् राम एवार्थः, न तु पर्वतपक्षशातनः शक्रः। वज्रबाहुम् अज्म पणनीयं गृहाभिधं स्वीयं द्रव्यं जयन्तम् ओजसा बलेन प्रमृणन्तं मृन्दतम् अर्थाद्धनुरेव। ईदृशं रामं भोः सजाताः समानाजाताः भ्रातरः। इममनुलक्षीकृत्य वीरयध्वं विक्रमध्वम्। अन्वेवसखायो भाविनो वानराः। अनुसंरभध्वम् आद्रियध्वम्, शत्रुप्रकोपे सतीति शेषः। पक्षे, गोत्रो मेरुः तेन तत्स्थः कामगणो लक्ष्यते, तमपि तुच्छीकृत्य स्थितं गोत्रभिदं तीव्रवैराग्यवन्तम्। श्रद्धां चात्मसात्कृतवन्तः। सजाताः धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यादय सखायाः शमदमादयः। इममिन्द्रं भूमिमागत्य जीवभावं गतम्। शेषं स्पष्टम्।। ३५।।

हिन्दी भाषानुवाद - रुद्र के धनुष को तोड़ने वाले, जितेन्द्रिय, वज्रतुल्य दृढ भुजाओं वाले, ओज से धनुर्भङ्गद्वारा वीर्य-शुल्का सीता को जीतने वाले इन श्रीराम को, हे भाइयों और वीरमित्रों, आप लोग पराक्रम और क्रोध से (शत्रुनाश में) सहायक रूप से अनुसरण कीजिए।।३५।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एक सौ तीसरे सूक्त का छठाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, सभी राजाओं के स्वयंवरशाला में पहुँच जाने पर जो देववाक्य (आकाशवाणी) हुई है, वही इस मन्त्र में निबद्ध है। इसमें श्रीराम के भाइयों और वीर मित्रों को अपने पराक्रम और मन्यु से उनका अनुसरण करते हुए सहायता करने का निर्देश है।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं विपरेतन।। ३६।।

एवं धनुर्भङ्गे कृते जनकः सीतामानाय्याह सुमङ्गलीरिति। दत्वाय दत्त्वा। अस्तं स्वगृहं परेतन परावृत्त्य गच्छत। शेषं स्पष्टम्। पक्षे, वधूः श्रद्धा, तस्याः सौभाग्यं यावद्विदेहकैवल्यं बोधेनावियोगः। अस्तं सर्वाधिष्ठानभूतं ब्रह्म।।३६।।

हिन्दीभाषानुवाद - यह वधू (सीता) शुभ-कल्याणमयी है। इसे स्नेहपूर्वक अपनाओ। इसे सौभाग्य (पति का प्रेम) देकर अपने घर में सुखी रखो।।३६।।

टिप्पणी – प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पचासीवें सूक्त का तैंतीसवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, धनुर्भङ्ग के पश्चात् जनक ने राम को सीता को सौंपते हुए ये वचन कहे हैं।

'सुभगस्य भावः सौभाग्यम्'। सौभाग्य, विवाहिता स्त्रियों के लिए सर्वाधिक काम्य है। लोक में (भाषा में) इसे ही 'सुहाग' या 'सोहाग' कहते हैं। महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव (५.१) में पत्नी के प्रति पति के हार्दिक प्रेम को सौभाग्य कहा है- ''प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता'' अर्थात् 'रूप वही जो पिया मन भाये'।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगोऽर्यमा सविता पुरन्धि-
र्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्याय देवाः।। ३७।।

ततो लब्धयाः सीतायाः पाणिग्रहणं रामः करोति-गृभ्णामीति ।सौभगत्वाय सौभाग्याय पत्या सह जरदष्टिर्जीर्यत्कुचग्रन्थिः यथा- असः दीप्यसे तथा- ते हस्तं गृभ्णामि गृह्णामि भगादयो देवाः त्वा त्वां मह्यम् अदुर्दत्तवन्तः। गार्हपत्याय गार्हस्थ्याय। पक्षे, यथा देवाः बोधस्य श्रद्धायोगं वाञ्छन्ति, एवं बोधोऽपि कैवल्यं फलं प्रसोतुं श्रद्धायोगं वाञ्छति। अक्षरयोजना सुखोन्नेया। एतौ द्वावपि मन्त्रौ पूर्वापरौ।।३७।।

हिन्दीभाषानुवाद - (राम ने सीता का पाणिग्रहण करते हुए कहा-) तुम्हारे सौभाग्य के लिए मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूँ। मुझ पति के साथ तुम यथासुख (जीवन व्यतीत करते हुए) वृद्धावस्था को प्राप्त होओ। भग, अर्यमा, सविता और पुरन्धि देवताओं ने मुझे गृहस्थधर्माचरण के लिए तुम्हें प्रदान किया है।। ३७।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह छत्तीसवाँ मन्त्र है। इस मन्त्र का विनियोग सनातन (वैदिक) धर्मावलम्बियों की विवाहविधि में सर्वसामान्य रूप से किया जाता है। कुलवृद्धों की उपस्थिति में अग्नि को साक्षी देकर वर, वधू से यह वचन कहता है। यहाँ इसको प्रसङ्ग विशेष में गृहीत किया गया है।

अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा
अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः।
सवदनवितं रेजयत्सो अग्निं
नेमिन्नचक्रमर्वतो रघुद्रुः।। ३८।।

एवं सीतामादायायोध्यां प्रति प्रस्थितेन रामेण मध्ये मार्गं परशुरामे विजिते देवाः अस्तुवन्- अयं स्तुत इति पञ्चभिः। अयं रामो राजा स्तुतो, वन्दि अवन्दि च देवैः अभिवादितः यतो वेधाः जगतः स्रष्टा अपः समुद्रं तरति तरिष्यति शीघ्रमेव तथा- व्रिप्रः विप्रं च-द्वितीयार्थे प्रथमा। जामदग्न्यं च तरति। यतः स्वसेतुः स्वकृतसेतुरवतरणसाधनं यस्यास्ति स तथा। अस्य शिलामयः सेतुः प्रसिद्धः। विप्रेणानापदि शस्त्रं न धार्यमिति मर्यादाऽपि स्वकृता सेतुरेव तदुल्लङ्घन-कर्तृत्वाद्भार्गवोऽप्युल्लङ्घनीय एव। स राजा कक्षीवन्तं येन दशरथाय वरो दत्तः-समुद्रजयिनस्तव पुत्राः भविष्यन्तीति तम् अग्निं च चरुरूपेण गर्भीभवन्तं रेजयत् प्रेरितवान्। तत्र दृष्टान्तो नेमिं नेतिनेमिमच्चक्रं यथाऽर्वन्तोऽश्वाननुरघुद्रुः शीघ्रगामी भवति, तद्वत्कक्षीवदादयस्त्वत्प्रेरिता इत्यर्थः। एतच्च प्रागेव दर्शितम्। अत्र जामदग्न्यो ब्राह्मणराजत्वात्सोमः। दाशरथिः क्षत्रियराजत्वादादित्यः- 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा, आदित्यो वै दैवं क्षत्रम्''- इति श्रुतिभ्यां तौ च पूर्वापरमन्त्रोक्तरीत्या कार्यकारणरूपौ; अतः तस्य कारणानभिज्ञस्य कार्यस्य कारणेनाभिभवो युक्तः सूर्येण चन्द्रस्येव। अत्र दृप्तबालाकिरजातशत्रुश्च दृष्टान्तत्वेन ज्ञेयौ। यत्तु रामबाणेन जामदग्न्यस्य लोका नाशिता इति तज्जगत्कारणबोधाद् ब्राह्मलौकिकमैश्वर्यं बाधितं भवतीत्येव परम् इमे मन्त्राः विप्राप्तरणलिङ्गात् पूर्वोक्तकक्षीवदादिलिङ्गाद्वक्ष्यमाणलिङ्गेभ्यश्च रामपराः।।३८।।

हिन्दी भाषानुवाद - जगत्स्रष्टा यह राजा राम देवताओं द्वारा स्तुति और वन्दना किया जाता हुआ परशुराम (विप्र) और समुद्र को अपना सेतु स्थापित करके लङ्घन करेगा। जिस प्रकार दौड़ते हुए घोड़ों के पीछे रथ की नेमियुक्त पहिया शीघ्रगामी होती है, वैसे ही कक्षीवान् की वरप्रदान रूप प्रेरणा से चरुरूप से अग्नि ने शीघ्र ही गर्भरूपता को प्राप्त किया था।। ३८।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र से लेकर आगे के पाँच मन्त्र दशम मण्डल के एकसठवें सूक्त से लिए गए हैं, जिनकी संख्या क्रमशः १६ से २० तक है।

टीकाकार के अनुसार सीता के साथ अयोध्या प्रस्थान किए हुए राम ने जब बीच रास्ते में मिले उग्र परशुराम पर विजय प्राप्त कर ली, तब देवगण राम की स्तुति इन पाँच मन्त्रों द्वारा कर रहे हैं।

सद्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा
सबर्धुंधेनुमस्वं दुहध्यै।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज-
उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः।। ३६।।

सद्विबन्धुरिति। सः राजा द्विबन्धुः द्वयोरन्योऽन्यविरोधिनोऽपि वसिष्ठविश्वामित्रयोर्बन्धुः मित्रम्। सर्वात्मत्वात्सर्वसम इत्यर्थः। तावेव द्वावाह-एको वैतरणो दाता परो यष्टा यागादिकर्ता। तयोर्विरोधप्रयोजकमाह-सबर्धुं सगर्भतादशायामपि दुग्धे इति, सबर्धुं धेनुं दोग्ध्रीम् अस्वम् अप्रसूतां यावत्प्रसूतिक्षीरदामित्यर्थः। प्रसूत्युत्तरमेव दशाहं क्षीरं न दुग्धे, 'तस्माद्वत्सं जातं दशरात्रीर्न दुहन्ति' इति श्रुतेः। दुहध्यै दोग्धुं तादृशीं वसिष्ठधेनुं प्राप्तुं विश्वामित्रः कोटिशो धेनूर्वितरन्नासीत्। यागानुरोधी वसिष्ठस्तु ताः नाङ्गीचकार, नापि स्वां धेनुं ददाविति पुराणप्रसिद्धम्। यथाक्रमं वैतरणः यत् यदर्थं मित्रावरुणयो पुत्रं वसिष्ठम्- 'मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतो वरे कुम्भे रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेताम्' इति वैदिकप्रसिद्धेः। उक्थैर्नानाविधैः कर्मभिः संवृंजे हिंसितवान्, तथा यष्टापि ज्येष्ठेभिः योगप्रभावसृष्टैः वरूथैः सैन्यैः अर्यमणम् अर्यं स्वामिनमात्मानं मन्यत इत्यर्यमतं संवृजे इत्यनुषज्यते।।३६।।

हिन्दी भाषानुवाद - यह (राजा राम) परस्पर विरोधी वसिष्ठ और विश्वामित्र का (समान रूप से) मित्र है। वसिष्ठ (वैतरण) दाता और विश्वामित्र यज्ञकर्ता हैं। वह विश्वामित्र वसिष्ठ का प्रसूतिपूर्व तक दुही जाने वाली गाय को (करोड़ों अन्य गायें उन्हें देकर भी) प्राप्त करना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने वसिष्ठ को नाना प्रकार के हिंस्र कर्मों से पीड़ित किया किन्तु वसिष्ठ ने वह गाय उन्हें न दी और योगबल से उत्पन्न सैन्य समूह द्वारा विश्वामित्र को पराजित कर दिया।। ३६।।

टिप्पणी - इस मन्त्र में वसिष्ठ और विश्वामित्र के परस्पर विरोध के कारण को स्पष्ट करते हुए पुराणप्रसिद्ध उस कथानक की ओर सङ्केत किया गया है जिसमें वसिष्ठ के आश्रम में गये हुए विश्वामित्र ने उनकी गाय के अप्रतिम प्रभाव से मुग्ध होकर उसे माँगा था और वसिष्ठ द्वारा अस्वीकार किये जाने पर बलपूर्वक छीनना चाहा था। तब वसिष्ठ ने योगबल से सेना उत्पन्न कर उन्हें पराभूत कर दिया था। फलतः अपमानित राजर्षि ने घोर तपस्या की और ब्रह्मर्षि विश्वामित्र हुए।

वसिष्ठ की गाय 'नन्दिनी' कामधेनु की पुत्री, उसी के समान सामर्थ्यवती (इच्छित फल देने वाली) थी। मन्त्र में उसकी विशेषता बतलाते हुए कहा गया है कि वह गर्भिणी होने पर भी प्रसूति के पूर्व तक दूधदेती थी। प्रायः सामान्य गायें इस प्रकृति की नहीं होतीं।

तद्बन्धुः सूरिर्दिवि त धियं धा-
नाभानेदिष्ठो रपति प्रवेनन्।
सा नो नाभिः परमास्य वाघा-
हं तत्पश्चा कतिथश्चिदास।। ४०।।

स पूर्वमन्त्रोक्तो राजा बन्धुर्वश्यो यस्य स तद्बन्धुः। नाभानेदिष्ठो नाम ऋषिः रपति स्पष्टं वक्ति। कीदृशः सूरिः विद्वान्, तथा-हे शिष्य ते तव दिवि हार्दाकाशे धियं धाः बुद्धेर्धारकः तव परविद्योपदेशकः। प्रवेनन् ब्रह्मवित्वादेव अत्यन्तं कान्तिमान्। किं रपति? तदाह-सा विधेयापेक्षं स्त्रीत्वं स राजा नोऽस्माकं जीवानां सोपाधीनां नाभिरिव नाभिः मध्यम् अन्तरम् उपाध्यपगमावशिष्टं रूपम्। परमा महती त्रिविधपरिच्छेदशून्येत्यर्थः। वाधेत्यर्थकौ। अस्य राज्ञः पश्चात् अनन्तरम् अहं नाभानेदिष्ठः कतिथः कतितमश्चिद् वितर्के आस अभूवम्। आसेति लिटा स्वस्याप्येतत्परोक्षमित्युक्तम्। तथा हि विष्णोर्ब्रह्मा, ततो मरीचिसुतः कश्यपः, इति ततो विवस्वान्, ततो मनुः, मनोर्नाभानेदिष्ठ इति वंशो गम्यते।। ४०।।

हिन्दीभाषानुवाद - (पूर्वोक्त मन्त्र में कहे गए) उस राजा का हितैषी नाभानेदिष्ठ नामक विद्वान् ऋषि स्पष्ट रूप से कहता है (हे शिष्य) तुम्हारे हृदय रूपी आकाश में बुद्धिधारक ब्रह्मतत्त्व विद्यमान है। अत्यन्त कान्तिमान् वह हमारे नाभि के अन्दर अवशिष्टरूप से विद्यमान है। मैं (नाभानेदिष्ठ) अब उसके पीछे कौन सा तर्क करूँ।। ४०।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र में नाभानेदिष्ठ नामक ऋषि का उल्लेख किया गया है। यह ऋषि मनु का पुत्र है-ऐसा टीकाकार ने वंशावली देते हुए लिखा है। यह नाभानेदिष्ठ ऋषि पूर्वोक्त राजा (राम) के ब्रह्मत्व और उनकी सर्वव्यापकता का प्रतिपादन कर रहा है।

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थ-
मिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः।
द्विजा अह प्रथमजा ऋत-
स्येदं धेनुरदुहज्जायमाना।। ४१।।

इयम् अयं राजा मे मम नाभिः कोशपञ्चकान्तर्गतं शुद्धरूपम् इह अस्मिन्नेव मे मम सधस्थं गृहं लयस्थानमव्याकृतमित्यर्थः। कारणस्याप्ययमेवाधिष्ठानम्। इमे देवीः इन्द्रियाणि च। मे मम इमे अयमेव, विधेयापेक्षं बहुत्वम्। अयमहमेवास्मि। सर्वः सर्वात्मा। किं च ऋतस्य सत्यस्य वस्तुनः प्रथमजाः प्रथमं जातोऽव्यक्तरूपी। तथा द्विजाः द्वितीयं जातो व्यक्तरूपी च अह निश्चितम् इदं यमेव इदमित्थं शास्त्रतत्त्वं जायमानाऽस्य निःश्वसितवदाविर्भवन्ती धेनूर्वाक् अदुहत् प्रकाशितवती।। ४१।।

हिन्दी भाषानुवाद - यह (राजा) मेरी नाभि के अंदर अर्थात् पञ्चकोश के अन्तर्गत शुद्धरूप से मेरे शरीर रूपी घर में निवास करता है। यही मेरी सभी इन्द्रियाँ और सभी का आत्मा है। यह सनातन सत्य है; प्रथम बार अव्यक्त और दूसरी बार व्यक्त रूप से उत्पन्न हुआ है और निश्चित ही इसने शास्त्रतत्त्वों को उत्पन्न करने वाली वाणी को प्रकाशित किया है।। ४१।।

टिप्पणी - इस मन्त्र में भी पूर्वोक्त राजा का पारमार्थिक गुणानुवाद किया गया है।

अथासु मन्द्रो अरतिर्विभावाऽ-
वस्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट्।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षु
स्थिरं शेवृधं सूत माता।। ४२।।

अथ अनन्तरं अयं राजा आसु भूवसतिषु मन्द्रो मध्यगतिः। विभावा विशेषेण तेजस्वी। अरतिर्ब्रह्मचर्यव्रतनिष्ठः। अवस्यति अवस्थितिं प्राप्नोति, देशान्तरं गच्छन् स्थाने स्थाने वासं करोतीत्यर्थः। अवस्यति रक्षसामन्तं करोति वाऽर्थः। कीदृशः? द्विवर्तनिः द्वे वर्तन्यौ मार्गौ यस्य सः तपस्विमार्गम्, शूरमार्गं वानुसरतीत्यर्थः। एत एव वनेषाट् वने सहते शीतवातादिकं वा रक्षसां वधं कर्तुमुत्सहते वा वनेषाट्। यत् यो राजा ऊर्ध्वा ऊर्ध्वीकृता श्रेणिः सोपानपद्धतिः। न इवार्थे। ऊर्ध्वं स्थानं जिगमिषूणामयं श्रेणिवदालम्बनीभूत इत्यर्थः। कीदृशः शिशुः अल्पवया अपि दन् दमयन् अर्थात् शत्रूनिति लभ्यते। मक्षु सम्यक् यस्तं शेवृधं सुखे वर्धयितारम्। स्थिरम् अचलस्वभावम्। माता कौसल्या सूत असूत। अडभावश्छान्दसः।। ४२।।

हिन्दीभाषानुवाद - यह (राजा) पृथिवीवासियों में मध्यगति वाला है, ब्रह्मचर्यव्रतनिष्ठ है, विशिष्ट तेजस्वी है; भ्रमण करते हुए स्थान-स्थान पर निवास करता है, दो मार्गों अर्थात् तपस्वी तथा वीरों का मार्ग अनुसरण करता है, वन में शीतादि सहन करता है, अथवा राक्षसों का वध करने में उत्साह दिखलाता है, ऊर्ध्व (अर्थात् मोक्ष) मार्ग पर जाने वालों के लिए सोपानपद्धति की तरह आलम्बन है, बालक होते हुए भी शत्रुओं का वध करता है, अविचलित स्वभाव वाला है, सुखों की वृद्धि करने वाला है। इसे माता कौसल्या ने उत्पन्न किया है।। ४२।।

टिप्पणी - इस मन्त्र में भी पूर्वोक्त राजा के वर्तमान, भविष्य आदि के प्रभावादि वैशिष्ट्यों का निरूपण किया गया है।

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके
कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम्।

मनानग्रे तोजहतुर्वियन्ता
सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ।। ४३।।

वनेषाडित्युक्तं तत्र अयोध्याया रामाय दीयमानं राज्यं भरताय देयं रामश्च वनं प्रस्थापनीय इति कैकेयीचरित्रं निमिषं तदाह-मध्येति। अभीके सङ्ग्रामनिमित्तं मध्यामध्यस्थाभ्यां मन्थराकैकेयीभ्यां यत्कर्त्वं कर्तव्यम् अभवत्तदपि त्वत्त एव जातमिति पूर्वोदाहृतादयं स्तुत इत्येतस्मादपकृष्यते। कस्मिन् सति पितरि दशरथे युवत्यां कैकेय्यां निमित्तभूतायां कामं तस्यै वरप्रदानं कृण्वाने सम्पादयति। वियन्ता विदेशं गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ रेतस्तत्प्रदातारं पितरं जहतुः त्यक्तवन्तौ। कीदृशं रेतः मनानक् मनसा न अञ्चति प्रकाशत इति मनानक् रामगमनम् अनिच्छत् निर्मनस्कं मृतमिति वा। अत एव सुकृतस्य योनौ सत्ये निषिक्तं सानौ महत्युच्चस्थाने स्वर्गे वा। पक्षे, निहततृश्णातटाकस्य, निरस्तकर्तृत्वाभिमानमरीचस्य, हतफलासङ्गसुबाहोः, विदिताध्यात्मविद्याबलातिबलस्य, बोधितशुभतनवासनाहल्यस्य, तोषितधर्मगौतमस्य, तृणीकृतब्रह्मलोकधनुषः, लब्धसीताश्रद्धस्य, बाधितब्राह्मलौकैश्वर्य- जामदग्न्यतपसपरोक्षबोधलक्ष्मणज्येष्ठस्य, अपरोक्षबोधरामस्य, देहायोध्यायां वस्तुमिच्छतः, सानुजश्रद्धस्य, प्रवासं भरतजीवस्य च तत्र राज्यमिच्छन्तीभ्यां भोगदेहवासनाभ्यां मन्थराकैकेयीभ्यां मध्यस्थाभ्यां यत्कर्तव्यं मनोदशरथस्य वचनं कामरावणवधनिमित्तं तत्राप्यन्तर्याम्यनुग्रह एव हेतुः। ततः सश्रद्धे द्विविधेऽपि बोधे मनस्तोऽपगते मनः स्वर्गपरमभूदिति। अयं मन्त्रो योग्यत्वादुपन्यस्तः।। ४३।।

हिन्दीभाषानुवाद - विवाद के मूल में मन्थरा और कैकेयी ने जो कुछ किया वह पिता दशरथ के द्वारा युवती (मध्यमरानी) कैकेयी को (उसे) इच्छित वर-प्रदान के कारण हुआ। विदेश (वन) जाते हुए राम-लक्ष्मण ने जो अपने पिता दशरथ को छोड़ दिया, उसे वह सहन न कर सके और दशरथ अपने सुकृत के उच्चस्थान स्वर्ग को चले गए।। ४३।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का ही यह छठाँ मन्त्र है। टीकाकार के अनुसार, इस मन्त्र में, कैकेयी को दशरथ द्वारा इच्छित वर प्रदान किए जाने के कारण मन्थरा के उकसाने पर कैकेयी न भरत के लिए अयोध्या का राज्य और राम के लिए वननिर्वासन माँग लिया। फलतः राम-लक्ष्मण दशरथ को छोड़कर वन चले गए और इसे न सह पाने के कारण दशरथ का भी स्वर्गवास हो गया।

दण्डा इवेद्गो अजनास आसन्
परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुर एतावशिष्ठ
आदित्तृसूनां विशो अप्रथन्त।। ४४।।

रामे वनगते यद्वृत्तं तदाह-दण्डा इवेति। भरताः भरतशत्रुघ्नादयः गो अजनासः गवां चालकाः दण्डाः यष्टय इव अकिञ्चित्कराः आसन्। परिच्छिन्नाः अल्पाः यतोऽर्भकासः कनिष्ठाः, तेषां च पुर एता पुरोहितो वसिष्ठोऽभवत् आदित् अस्माद् वसिष्ठादेव। तृत्सूनामिति तृप्सूनां वर्णलोप विकारावार्षौ रामदर्शनेनैव तृप्तिमिच्छतां विशः प्रजा अप्रथन्त प्रथां गताभरतादिषु राज्यमनिच्छत्सु वसिष्ठ एव राज्यं चकारेत्यर्थः। बोधार्थी जीवः शास्त्रगुर्वधीनोऽसङ्गः सन् दैहिकं कर्माकरोदित्यर्थः। मन्त्रोऽयं स्पष्टलिङ्गः।।४४।।

हिन्दीभाषानुवाद - (राम के वनगमन और दशरथ के स्वर्गगमन के पश्चात्) अल्पवयस्क बालक भरत-शत्रुघ्न (पृथिवी पालन में असमर्थ) गाय हाँकने वाली लाठी की तरह लाचार हो गये। उनके समक्ष (आलम्बनरूप) एक मात्र वसिष्ठ राजपुरोहित ही थे। राम के दर्शन मात्र से तृप्ति की आकांक्षा वाली प्रजा और भरतादि की राज्य के प्रति अनिच्छा के कारण वसिष्ठ ने राज्य भार सम्भाला।। ४४।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के सातवें मण्डल के तैंतीसवें सूक्त का छठाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में रामवनगमन के पश्चात् वसिष्ठ द्वारा राज्यकार्य सञ्चालित करने का वर्णन है।

ओषु स्वसारः कारवे शृणोत
ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
निषूनमध्वं भवता सुपारा
अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः।। ४५।।

वनं प्रति प्रस्थितं राममनुगच्छन् विश्वामित्रो मध्ये मार्गमागताः नदीः प्रार्थयते-ओष्विति। भोः स्वसारो भगिनीतुल्याः सिन्धवो नद्यः ओषु अत्यन्तं सुष्ठु श्रृणोत मदीयं वचनं शृणुध्वम्। कारवे करोतीति कारुः महतः कार्यस्य रक्षोवधादेः कर्ता तस्य प्रीत्यर्थमित्यर्थः। स हि दूरात् अनसा चेष्टावता रथेन वः युष्मान् प्रति ययौ आगतवान्। अतएव निषू नितरां सुष्ठु नमध्वम् नतिं भजध्वम्। स्रोत्यादिभिः क्षुद्रनदीभिः सह सुपाराः सुगमपाराः। अधो अक्षः रथाक्षादधोवाहिन्यश्च भवत। रामायणे तु नौकया नदीतरणमुक्तं तदपि श्रुत्यंतरमूलकं कल्पान्तरविषयमिति ज्ञेयम्।।४५।।

हिन्दीभाषनुवाद - (वन के लिए जाते हुए राम का अनुसरण करने वाले ऋषि विश्वामित्र मार्ग में पड़ने वाली नदियों से प्रार्थना करते हैं-) है भगिनीतुल्य नदियों! आप मेरी बात को अच्छी तरह सुनें। महान् कार्य (राक्षसों के वध रूप) करने वाले श्रीराम (कार्यानुरूप) चेष्टायें करते हुए अति दूर से रथ द्वारा आपकी ओर आ रहे हैं। अतएव आप लोग उनके प्रति प्रणत हों और छोटी (पहाड़ी) नदियों के समान सुगमता से पार होने वाली बन जाँय। आप सब का प्रवाह उनके रथ की धुरी से नीचे रहे।। ४५।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के तैंतीसवे सूक्त का नवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में विश्वामित्र वन की (राम के मार्ग में पड़ने वाली) नदियों से निवेदन कर रहे हैं कि वे अपना प्रवह राम के रथ की धुरी से नीचे ही रखें ताकि राम उन्हें सुगमता पूर्वक पार कर सकें।

टीकाकार ने टिप्पणी की है कि यद्यपि रामायण में नौका द्वारा ही नदी पार करना कहा गया है तथापि रथ द्वारा नदी पार करना अन्य आर्षग्रन्थों के आधार पर (अथवा) कल्पनामूलक समझाना चाहिए।

अतारिषुर्भरता गव्यवः सम-
भक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्रपिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा
आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्।। ४६।।

एवं नदीः समुत्तीर्य चित्रकूटं प्रतिगते रामे भरतः किमकरोदित्यत आह-अतारिषु इति।। गव्यवः गवा पृथिव्या युवन्ति वियुज्यन्त इति गव्यवः। यौतिरत्रामिश्रणार्थः, राज्यं त्यक्तवन्त इत्यर्थः। ईदृशाः भरताः नदीनां नदीः अतारिषुस्तीर्णवन्तः। तत्रापि विप्रो भरद्वाज इति पुराणात्। सुमतिं शोभनमतिं भरतं समभक्त सम्यक् सेवितवान्, तस्यातिथ्यं कृतवानित्यर्थः। तदेवाभिनयति-प्रेति। भो शिष्या इषयन्तीः इच्छन्त्यः प्रीतिमत्यः सुराधा बहुसम्पदः शोभनाः सिद्धयः प्राप्तिप्राकाम्यादयः ताः प्रपिन्वध्वं प्रकर्षेण पुष्टाः कुरुत। वक्षणाः घृतकुल्याः मधुकुल्याश्च आपृणध्वं पूरयत। ततश्च शीभम् ईश्वरत्वाभिमानिनं भरतं यात आतिथ्येन गच्छतेत्यर्थः।।४६।।

हिन्दीभाषानुवाद - (राम के वन चले जाने पर, उन्हें मनाने के लिए) राज्य का त्याग करने वाले भरत ने भी नदी पार की और ऋषि भरद्वाज ने उन सुबुद्धि भरत का सुन्दर अतिथिसत्कार किया। (ऋषि ने शिष्यों को आज्ञा दी कि) अभीष्ट प्रीतिमती सिद्धियों को अप्रतिम ऐश्वर्य से सम्पृक्त करो। घृतकुल्या और मधुकुल्या को भर दो और तब ईश्वर (श्रीराम) के प्रति अनन्य भक्ति वाले भरत के स्वागतार्थ सेवा में जाओ।। ४६।।

टिप्पणी -पूर्वोक्त सूक्त का यह बारहवाँ मन्त्र है (३.३३.१२)।

इस मन्त्र में प्रयाग के भरद्वाज आश्रम में भरत के आतिथ्य का निरूपण है।

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयु-
र्गव्यन् याम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त
आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्।। ४७।।

ततो रामं प्रति गत्वा भरतः किं चकारेत्यपि विश्वामित्रवाक्यादेवावगतं तदाह–यदङ्गेति। हे अङ्ग महानदि, यत् यतः त्वा त्वां भरताः सन्तरेयुस्तीर्णाः तक्तं वः। वत्वं पूजायाम्। यज्ञियानां तव यज्ञार्हायाः सुमतिं शेभनां मतिं नतिकरीम् आवृणे प्रार्थये। यैः भरतैः गव्यन् गां नन्दिनम् आत्मन इच्छतीति गव्यन् नन्दिस्वामिको ग्रामः नन्दिग्रामः इषितः अभीप्सितो वासार्थं नत्व योध्येत्यर्थात् सोऽपि ग्रामः इन्द्रजूतः इन्द्रेण रामेण प्रेरितः तत एव प्रसवः रामस्याज्ञा अह प्रसिद्धम् अर्षात् गतवती सर्वत्राप्रतिहताभूदित्यर्थः। कीदृशो ग्रामः सर्गतक्तः, सृज्यत इति सर्ग आज्ञप्तो भरतः तक्तः कृच्छ्रेण जीवितो यस्मिन् स सर्गतक्तः। नन्दिग्रामे व्रतकृशो भरतो रामाज्ञया राज्यं चकारेत्यर्थः।। ४७।।

हिन्दीभाषानुवाद – हे महानदि, तुम्हें भरतादि ने जो सुगमता से पार कर लिया, उससे तुम पूज्य हो गयी हो और यज्ञ में सुन्दर बुद्धि देने के लिए यज्ञकर्ताओं द्वारा तुम्हारी प्रार्थना की जाती है। तत्पश्चात् (राम से मिलकर चित्र कूट से लौटने के पश्चात्) भरत नन्दिग्राम में रहते हुए कठिन व्रत धारण करके राम की आज्ञा से राज्यकार्य चलाने लगे।। ४७।।

टिप्पणी – पूर्वोक्त सूक्त का यह ग्यारहवाँ मन्त्र है (३.३३.११)। टीकाकार के अनुसार यह महर्षि विश्वामित्र का वचन है। महर्षि ने भरत को पार करने के लिए नदी की प्रशंसा की है तथा सूचित किया है कि भरत चित्रकूट पहुँच कर श्रीराम से मिले और वापस आकर नन्दिग्राम में रहते हुए राम की आज्ञा से अयोध्या का राज्य कार्य चला रहे हैं।

न हि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्या रण्यति।
यो अस्मान् वीर आनयत्।। ४८।।

ततो लक्ष्मणार्थं प्रार्थयन्तीं शूर्पणाखां रामो वचोभङ्ग्यन्तरेण निरस्यति – न हीति। स लक्ष्मणः हि निश्चितं तव शास्त्रे आज्ञायां न रण्यति न चलति। मम अन्यस्य वा शास्त्रे नो नैव रण्यति। कुतः? यो वीरोऽस्मान् आनयत् एतदधीना वयं न त्वयमस्मदधीन इत्यर्थः।। ४८।।

हिन्दीभाषानुवाद – निश्चय ही वह लक्ष्मण न तुम्हारी आज्ञा में चलता है, न हमारी आज्ञा में और न ही अन्य की आज्ञा में चलता है। जो वीर हमें इस वन में ले आया है, (उसकी आज्ञा में हम हैं न कि वह हमारी आज्ञा में)।। ४८।।

टिप्पणी – इस मन्त्र से लेकर आगे के चार मन्त्र, ऋग्वेद के आठवें मण्डल के तैंतीसवें सूक्त के क्रमशः १६वें से १६वें तक हैं।

टीकाकार के अनुसार, इस मन्त्र में पञ्चवटी में आश्रम बनाकर रह रहे राम के पास शूर्पणखा (राक्षसी) लक्ष्मण से विवाह करने की इच्छा से जब राम के पास जाती है तब राम उसे टालने के अभिप्राय से मन्त्रार्थवचन कहते हैं यहाँ राम के कथन का अभिप्राय है कि

हम वीर लक्ष्मण के बल पर वन में आये हैं अतः उसके अधीन हैं। वह हमारे अधीन नहीं है। अतः वह हमारी या अन्य किसी की आज्ञा में नहीं है अपितु हम ही उसकी आज्ञा में हैं।

ध्यातव्य है, राम विष्णु के अवतार हैं और लक्ष्मण शेषनाग के। विष्णु क्षीरसागर में भगवान शेष के आश्रय से (उनकी देहशय्या पर) रहते हैं। यहाँ भी उसी आश्रयभाव का प्रदर्शन है।

इन्द्रश्चिद्घातदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम्।। ४६।।

एवमुक्तापि सा यदाऽतिनिर्बन्धान्न निवर्तते तदा राम आह-इन्द्र इति। चिद्घेत्यनर्थकौ निपातौ, एवं उतो अहेत्येतावपि। इन्द्रो रामः तत् वक्ष्यमाणं वचः रघुं लक्ष्मणम् अब्रवीत्, किमब्रवीत, स्त्रिया मनो अशास्यमिति। कीदृशं रघुम्, क्रतुम्-कृणोति हिनस्तीति क्रतुस्तम्। शूर्पणखामेव तां हन्तुमिच्छन्तम्।। ४६।।

हिन्दीभाषानुवाद-(ऐसा कहने पर भी जब हठ के कारण वह राक्षसी शूर्पणखा वहाँ से नहीं गयी-) तब राम ने, उस शूर्पणखा का वध करने की इच्छा वाले लक्ष्मण से कहा कि इस स्त्री का मन अनियन्त्रित अथवा निरङ्कुश है (अर्थात् यह स्त्री स्वैरिणी प्रकृति की है) ।। ४६।।

सप्तीचिद्धा मदच्युता मिथुनावहतो रथम्।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा।। ५०।।

पुनः किमब्रवीत्तदाह-सप्ती इति। सप्ती अश्वौ। तेन तयोरुच्चैः श्रवस्त्वेनास्या उच्चौ कर्णौ लक्ष्येते मदच्युता मदस्राविणौ मिथुनौ रथं शरीरं वहतः। गाढान्धकारे हि श्रोत्रबलेनैव दूरस्थमाह्वयितारं गच्छन्ति शब्दवेधिनश्च शत्रून् विध्यन्ति। चिद्धेत्यनर्थकौ तथा वृष्णो वर्षुकस्य मदस्राविणः धूरिव धूर्नासावंशः उत्तरा श्रेष्ठतरा। एवेदिति एवमेवेति छेदनाभिनयः प्रदर्श्यते। अस्याः कर्णनासमेव छेत्तव्यं न त्वियं हन्तव्येति सूचितमात्रे लक्ष्मणस्तत्कृतवानित्यर्थः।।५०।।

हिन्दीभाषानुवाद - यह अश्वसदृश ऊँचे कानों वाली, मतवाली और कामुक शरीर धारण करने वाली है। इसके ऊँचे कान-नाक ही काट डालो, मारो नहीं।। ५०।।

टिप्पणी - टीकाकार ने मन्त्र का पदार्थ प्रस्तुत कर दिया है किन्तु अर्थ संगति नहीं बैठ पाई है। टीका के अन्त में जो भावार्थ दिया गया है, उसी के अनुसार यहाँ हिन्दीभाषानुवाद किया गया है।। ५०।।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।। ५१।।

ततस्तन्निमित्तविघ्नसम्भावनया रामः सीतामनुशास्ति-अध इति। हें सीते, त्वम् अधः पश्यस्व, न तु तिर्यक् संमुखं वा पुरुषान्तरदर्शनं परिहरस्वेति भावः। भमोपरि उपर्यपि मा पश्यस्व, तत्रापि खेचराणां दर्शनस्य सम्भाव्यमानत्वात्। पादकौ पादौ संतराम् अतिसम्यक्तया विनयेन हर चालय। ते तव कशप्लकौ गुल्फौ मा दृशन् मा दृश्यौ भूतम्। हि यस्मात् स्त्री स्वावयवद्वारेण ब्रह्मवित् बभूविथ। पूर्वं जाता संयमवत्यां ब्रह्मविदुत्पद्यते, व्यभिचारिण्यां तु दुरात्मातो वञ्चकेभ्यो राक्षसेभ्यः आत्मानं पाहीति भावः। पक्षे, विषयस्पृहया बाध्यमाने परोक्षबोधेऽन्तर्यामिप्रेरितः तद्धेतुविषयघ्राणश्रवणे छिन्नवान्।।५१।।

हिन्दीभाषानुवाद - (शूर्पणखा के नाक-कान काट लिये जाने पर, राक्षसों से उपद्रव की आशंका से, सीता को सुरक्षित रखने हेतु, श्रीराम सीता को सावधान करते हैं-)हे सीते, तुम अब से नीचे ही देखा करो (तिरछे या सम्मुख नहीं) और ऊपर भी मत देखा करो। पैरों को भी ठीक ढंग से डाला करो (अर्थात् चलने में भी सावधानी बरतो)। तुम्हारे पैरों के घुटने (टखने) भी नहीं दिखाई देने चाहिये (अर्थात् शरीर के सभी अङ्गो को ढँके रहो)। क्योंकि इस प्रकार संयम पूर्वक रहने वाली स्त्रियाँ (भी) ब्रह्मज्ञा हुई हैं।। ५१।।

टिप्पणी - राम द्वारा सीता को अपने को सम्भाल कर रखने का निर्देश देना इसलिए आवश्यक हो गया था क्योंकि शूर्पणखा को विकृत कर अपमानित किये जाने पर राक्षस अवश्य क्रुद्ध होंगे और वे बदला ले सकते हैं।

स इद्दासन्तु वीरवं पतिर्दन्
षव्ठक्ष त्रिशीर्षाणं दमन्यत्।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो
विपा वराहमयो अग्रयाहन्।। ५२।।

ततः शूर्पणखां विरूपितां दृष्ट्वा तद्द्वयरामलक्ष्मणवधार्थमागतान् खरदूषण-त्रिशिरस्संज्ञान् रामो जघानेत्युच्यते-कं नश्चित्रीयेण मन्त्रेण स एव रामः दासं लोकान् उपक्षिण्वन्तं दूषणं तु वीरवं महास्वनं खरं षडक्षं त्रिशीर्षाणं नेत्रषट्कवन्तं त्रिशिरसं च पतिः पाता दन् दुष्टानां दमकः दमन्यत् दमितवान् हतवान्। अस्यैव दूषणादिहन्तुः विशिष्टेन ओजसा बलेन वृधानो वर्धमानः त्रितोनाम अङ्गुल्या अयो अग्रया अयोवत्तीक्ष्णनखया वराहं महान्तं वराहाकारं दानवं हन् हतवान्। अयं खलान् हन्तीति किं चित्रम् ? अनेनानुगृहीता अपि तान् घ्नन्तीत्ययमेवाभयकामैराराधनीय इति भावः।। ५२।।

हिन्दीभाषानुवाद - प्रजापालक और दुष्टदलनकर्ता राम ने लोकदूषणकर्ता दूषण, भीषण रव (आवाज) करने वाले खर और तीन सिर-छः आँखों वाले त्रिशिरा को मार डाला। इन तीनों का वध करने के कारण बढ़े हुए ओज वाले श्रीराम ने लोह के समान कठोर-तीक्ष्ण

अग्रभाग वाली तीन (अथवा त्रित नामक) अँगुलियों से वराहाकृति वाले दानव को भी मार डाला।। ५२।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के निन्याबेवें सूक्त का छठाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में, पूर्व मन्त्र की सम्भावना के अनुसार ही, विरूपा शूर्पणखा को देखकर राम-लक्ष्मण को मारने के लिए आए हुए खर, दूषण और त्रिशिरा को राम द्वारा मार डाले जाने का उल्लेख है। तत्पश्चात् राम द्वारा ही मात्र अंगुली के प्रयोग से वराह के समान आकार वाले एक अन्य दानव के मारे जाने का उल्लेख है।

यदचरस्तन्वा वावृधानो
बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु।
मायेत्सा वो यानि युद्धान्याहु-
र्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से।। ५३।।

एवं खरादीन् हत्वा स्थितं रामं देवाः स्तुवन्ति तां सुतीयेन मन्त्रेण-यदचर इति। हे इन्द्र जनेषु जनस्थानेषु तन्वा शरीरेण वावृधानो महीयमानः बलानि सामर्थ्यानि प्रब्रुवाणः कथयन् रक्षांसि निघ्नन् यदचरः सञ्चारं कृतवानसि, यानि च युद्धान्याहुः पौराणिकाः, सा ते तव मायेत् मायैव। यतस्त्वम् अद्य पुरा वा शत्रुं शातनीयं ननु निश्चितं न विवित्सेन जानासि। सर्वेषामन्तरात्मत्वादिति भावः। अत्र खरो मानः, दूषणो मत्सरः, त्रिशिराः धनविद्याभिजनजस्त्रिविधो मदः, तान् स्पृहासहितान्निघ्नन् योगी मायामात्रं जगदिति पश्चयतीत्यर्थः।। ५३।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे राम, जनस्थान में अपने शारीरिक महिमा की वृद्धि से अपने बल का ख्यापन करते हुए आपने जो आचरण किया (अर्थात् दुर्धर्ष राक्षस- शत्रुओं को मारकर विचरण करते रहे) और पौराणिक जिसे युद्ध कहते हैं, वह आपकी माया है। आप पहले और आज भी शत्रुओं का नाश करना भलीभाँति जानते हैं।। ५३।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के चौवनवें सूक्त का दूसरा (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, प्रस्तुत मन्त्र द्वारा खरादि का वध करके स्थित राम की स्तुति देवगण कर रहे हैं।

रामकथा परक अर्थ देने के साथ ही, (अन्य अनेक मन्त्रों की भाँति) इस मन्त्र का एक अन्य अर्थ भी संकेतित है- खर = अभिमान, दूषण = मत्सर, त्रिशिरा = धन, विद्या और परिवारजन्य तीन प्रकार का मद। योगी स्पृहा के साथ-साथ इन तीनों का दमन करते हुए इस जगत् को माया मात्र (रूप में) देखता है।

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापा-
न्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्
सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ।।५४।।

इमं वृत्तान्तं शूर्पणखामुखादाकर्ण्य रावणः किं चकारेत्यत आह-स्त्रियमिति। स्त्रियं निकृत्तकर्णनासं शूर्पणखां दृष्ट्वाय दृष्ट्वा कितवं कपटमृग संन्यासिवेषाधारिराक्षसद्वयं कर्तृ स्त्रीदर्शननेन क्षुब्धं सत् अन्येषाम् अन्यस्य रामस्य जायां सीतां सुकृतम् अग्निहोत्रादिकं योनिं वंशं च ततापं तापितवत् । जायाहरणेनैव त्रयमपि तप्तमभूदित्यर्थः। हि यतः बभ्रून् अश्वान् पूर्वाह्णे एव युयुजे रथे, तेन च रथेन वृषलो धर्मद्रोही रावणः अग्नेरन्ते रामाग्निशालासमीपे पपाद जगाम। मारीचेन सहेति शेषः।।५४।।

हिन्दीभाषानुवाद- (कर्ण-नासा-विहीन शूर्पणखा नामक अपनी भगिनी) स्त्री को देखकर क्षुब्ध रावण ने कपटमृग (मारीच) और सन्यासीवेषधारी एक अन्य राक्षस को साथ लेकर राम की पत्नी सीता तथा सुकृत-योनि (सत्कर्म के जन्मस्थान) यज्ञ को नष्ट करने का निश्चय किया। उसके रथ में भूरे रंग के घोड़े पूर्वाह्ण में (पहले ही) जोते जा चुके थे। (उसी रथ से) वह धर्मद्रोही रावण राम की यज्ञशाला के समीप जा पहुंचा।।५४।।

टिप्पणी- प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के चौंतीसवें सूक्त का ग्यारहवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में रावण द्वारा अपनी बहन के अपमान का बदला राम से चुकाने के लिए किए जाने वाले उपक्रम का वर्णन है।

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्धत्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वाराज्यम्।। ५५।।

ततो हतमारीचं राममृषिः-स्तौति-इन्द्रमिति। हे इन्द्र तुभ्यमित् तवैव वीर्यं सामर्थ्यम् अनुत्तं क्वचिदप्यपराभूतम्। हे अद्रिवः अद्रिं रुद्रचापरूपं मेरुं वाति हिनस्तीयद्रिवः। हे वज्रिन्, अत्यादरेण बहुकृत्वः सम्बोधयति। यत् यतः ह प्रसिद्धं त्यं परोक्षं मायिनं मृगं मारीचं त्वं मायया मानुषदेहरूपयाऽवधीर्हतवानसि। यतः राजोचितं कर्म अन्वर्चन् स्ववंशपरम्परागतमनुपूजयन्। राज्ञां मृगया उचितेत्येव हतवानसि, न तु द्वेषबुद्ध्या सर्वान्तरत्वात्तवेति भावः।। ५५ ।।

हिन्दीभाषनुवाद - हे राम! तुम्हारा वीर्य (पराक्रम) अपराजेय है। आपने रुद्र का धनुष तोड़ा है। हे वज्रधारी! मायामृग का रूप धारण करने वाले राक्षस मारीच का आपने जो वध किया है, वह यह राजोचित कर्म आपकी वंशपरम्परा का सत्कार करने वाला अर्थात् तदनुकूल है।।५५।।

टिप्पणी – प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के पहले मण्डल के अस्सीवें सूक्त का सातवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार माया (स्वर्ण) मृग रूपधारी राक्षस मारीच का वध करने के पश्चात् की गयी ऋषियों द्वारा राम की स्तुति इस मन्त्र में निबद्ध है। इसमें राम, अद्रिव और वज्रिन-ये तीन सम्बोधन आदर सूचक हैं। टीकाकार का मत है कि ऋषि राम के प्रति अति आदर के कारण ही इस प्रकार अनेकशः सम्बोधन कर रहा है। मृगया क्षत्रियों का स्वभावोचित कर्म है, अतः राम ने सहजतया मायामृग का आखेट किया है न कि द्वेष-बुद्धि से उसे मारा है।

यो वः सेनानी महतो गणस्य
राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि
दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ।। ५६ ।।

ततो दूरस्थे रामे लक्ष्मणे च तदनुयायिनि शून्ये सीतां प्रार्थयमानं रावणं प्रति सीता प्राह-यो व इति। यो वो रक्षसां महतो गणस्य सेनानीः। यो वा वो महतो व्रातस्य प्रथमो मुख्यो राजा बभूव। तस्मै ते कृणोमि निहन्मि शीघ्रमेव नाशयिष्यामि। धना भवदीयानि धनानि न रुणध्मि न काङ्क्षे। तदिदं ऋतं वाक्यं दशप्राचीः प्रागादिदिशः प्रति वदामि ।। ५६ ।।

हिन्दीभाषानुवाद – जो तुम्हारी सेना के महान् समूह नायक है और जो राक्षस कुल का प्रथम (गणना के योग्य महत्तम) राजा हुआ (अर्थात् राक्षस कुल शिरोमणि वीर योद्धा तुम रावण ही वह हो), मैं उसका शीघ्र ही विनाश कर डालूँगी। मुझे उसका(अर्थात् तुम्हारा) धन-ऐश्वर्य नहीं चाहिए। मैं यह सत्यवचन दसों प्राची आदि दिशाओं को साक्षी मान कर कह रही हूँ।। ५६ ।।

टिप्पणी – यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के चौंतीसवें सूक्त का बारहवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, यह सीता की रावण से उक्ति है जब वह आश्रम में सीता को अकेली देखकर आया था। मारीच का पीछा करते हुए राम दूर वनमें चले गये थे और लक्ष्मण भी, मारीच के कपट वाक्य से उद्विग्न सीता की प्रेरणा से राम के सहायतार्थ पर्णशाला में सीता को अकेली छोड़कर निकल गए थे।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो
रौद्रो दक्षाय सुषुमानदर्शि।
चिकिद्विभाति भासा बृहता
सिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ।। ५६ ।।

एवं निरस्तं रावणं सीताहरणोद्यतमालक्ष्याग्निरचिन्तयत्- इनो राजन्निति। मन सैव रामं सम्बोधयति। हे राजन्,इनः बलीयान् अरतिः अलब्धकामसुखः समिद्धः कामाग्निना प्रदीप्तः रौद्रो भयंकरः दक्षाय साहसाय सुषुमान् समर्थः अदर्शि दृष्टः। चिकित्त्वत्सामर्थ्यं जानन्नपि विभाति वैपरीत्येन दीप्यते, भासा दीप्त्यया बृहता बृहत्या असिक्नीं कालरात्रिमिव कृष्णां रुसतीं दह्यमानाम् एति आयाति। अपाजन् अपसरिष्यन्नेनां चोरयित्वेति शेषः।। ५७।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे राजन्! बलवान, अप्राप्तकामसुख (विफलमनोरथ), प्रदीप्त कामाग्निवाला, भयंकर साहस करने में समर्थ दिखाई पड़ने वाला, आपकी शक्ति-सामर्थ्य जानते हुए भी विपरीत आचरण करने वाला, कालरात्रि के समान सीता को (क्रोध) से जलाता हुआ आ रहा है और असे चुराकर भागने की फिराक में है।। ५७।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के तीसरे सूक्त का पहला (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, सीता द्वारा तिरस्कृत किए गए रावण को सीताहरण के लिए उद्यत देखकर (वहीं यज्ञशाला में विद्यमान) अग्निदेव चिन्तित हुए और उन्होंने मन ही मन इस प्रकार राम का स्मरण किया उन्हें रावण की कुचेष्टा से अवगत कराया।

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभू-
ज्जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम्।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्
दिवो वसुभिररतिर्विभाति।। ५८।।

कृष्णामिति। स एवं चिन्तयन्नग्निर्यत् यदा कृष्णां कालरात्रितुल्याम् एनीं विवर्णां सीतां वर्पसा वारयन् यातीति, वर्पः स्वं रूपं तेन कवचेनैतदाच्छादकेन योगबलेन अभ्यभूत् तिरोहितां कृतवान्। किम्भूतः? बृहतः ब्रह्मणः सङ्कल्पादेवेत्यर्थः। योषामन्यां स्त्रियं छायासीतां जनयन्। पितुः रामस्य जां जायामिव जायां तदा तां गृहीत्वा अरतिः रावणः ऊर्ध्वम् आकाशमार्गं सूर्यस्य दिवः द्युसम्बन्धिनो देवतागणस्य च वसुभिर्देवता-विशेषैः सह तेषां सर्वेषां भानुं करं हस्तमिति यावत् स्तभायन् स्तम्भयन् विभाति। रावणेन आकाशमार्गेण नीयमानां सीतां रावणादाच्छेत्तुं कोऽपि प्रभुर्नाभवदित्यर्थः। पक्षे, स्पृहया प्रेरितो मारीचो दम्भः, रावणः कामः, तौ सीतां श्रद्धां दम्भोन्मुखतया परोक्षमपरोक्षं च बोधं रामलक्ष्मणाख्यं दूरे कुर्वन्तीं कामो जहार। अग्निः यज्ञः, स तु तस्याः सात्त्विकं रूपं गोपितवानित्यर्थः। भद्रो भद्रयेत्यग्रिममन्त्रेऽग्निः सीतां रामाय समर्पितवानिति दर्शनादेतावपि रामपरौ।। ५८।।

हिन्दीभाषानुवाद - (मनः सङ्कल्पपूर्वक राम को इस प्रकार सूचित करने के पश्चात् विचार करते हुए अग्निदेव ने), कालरात्रितुल्य विवर्णवदना सीता को जब रावण बलपूर्वक

ले जाने लगा, तब अपने स्वरूप से सीता को आच्छादित करके रामभार्या की ही तरह एक अन्य सीता (छायासीता) को उत्पन्न किया। तब छाया सीता को लेकर रावण सूर्य समेत स्वर्ग के अन्य विशिष्ट देवताओं के (सीतारक्षार्थ बढ़े) हाथों को स्तम्भित करता हुआ आकाश मार्ग से (ऊपर ही ऊपर) उड़ गया।। ५८।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र है (१०.३.२)। इस मन्त्र में रावण द्वारा हरण किये जाने से पूर्व ही अग्नि द्वारा सीता को अपने स्वरूपावरण से ढँककर छिपा लेने तथा छायासीता को उत्पन्न करने का वर्णन है। रावण छाया-सीता को अपहृत कर आकाशमार्ग से चला गया और सूर्य आदि सभी देवगण रावण की शक्ति से हतप्रभ देखते ही रह गये। वे सीता को रावण के हाथों से न छुड़ा सके।

टीकाकार ने मन्त्र में आये हुए 'कृष्णाम्' का अर्थ 'कालरात्रितुल्याम्' किया है। सीता रावण के लिए यद्यपि कालरात्रि के समान ही थी किन्तु प्रसङ्गानुरोध से 'कृष्णा' का अर्थ 'श्यामवर्णा सुन्दरी' भी किया जा सकता है।

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ
स्मदापरैदपदभ्रचेताः।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ्
न तानु मे पृशन्यो जगृभ्रे।। ५९।।

स इति। स हृतदारो रामभद्रः ईम् एनां सीतां निमित्तीकृत्य आजौ राक्षसैः सह सङ्ग्रामे अस्यत् आस्यत् बाणान् प्राक्षिपत्। तत्र दृष्टान्तः- वृषा न फेनमिति। यथा महोक्षः क्रोधाविष्टः फेनविप्रुषो मुखनासिकेन फूत्कारं कुर्वन्नस्यति तद्वत्। तत्र हेतुः - दभ्रचेताः स्थूलबुद्धिः। आ इति स्मृत्यर्थो निपातः। स्मत् अस्मत् परा परोक्षम् अपैत् अपगतो दारहर्तेति प्रत्यक्षश्चेत्स्यात्तर्हि सद्य एव निहतः स्यादिति भावः। ततः किं चकारेत्याहसरदिति। दक्षिणा दक्षिणप्रदेशं पदान यथाऽश्वादीनां पदमन्विष्यते भूमौ तथा पदेनैव सरत् सीतार्थम् इतस्ततो गच्छन् परावृक् पराभिभूतः शाकेनेत्यर्थः। ताः प्रसिद्धाः पृशन्यः पृच्छन्तं नयन्ति इष्टं देशं प्रापयन्ति ते पृशन्यः शुभाशुभफलसूचकाः पशुपक्षिणः मे मां न अनुजगृभ्रे अनुगृहीतवन्तः। सीताप्राप्तिसूचकं शकुनमपि न जायत इत्यत्यन्तं शोकं कृतवानित्यर्थः। पक्षे, श्रद्धां विना विकल्पे बोधः दक्षिणेन ऋजुना धर्ममार्गेण श्रद्धाप्राप्तिं स्वाभ्युदयाय कामयत इति छायार्थः। अयं मन्त्रो मध्यायत्- कर्त्वीयः।। ५९।।

हिन्दीभाषानुवाद - (सीता के अपहृत कर लिये जाने पर) उस श्रीराम ने सीता (को प्राप्त करने) के लिए सङ्ग्राम में बाणों की उसी प्रकार झड़ी लगा दी जैसे क्रुद्ध साँड़ अपने मुंह और नथुनों से फूत्कार करता है, फेन निकालता है। किन्तु स्थूलबुद्धि रावण सीता

को लेकर गायब हो चुका था। सीता के पदचिह्नों को खोजते हुए दक्षिण दिशा में जाने पर भी सीता-प्राप्ति-निमित्तक शुभ शकुन न प्राप्त होने पर श्रीराम अत्यन्त खिन्न हुए, क्योंकि ऐसी सूचना देकर अभीष्ट स्थान तक पहुंचा देने वाले किसी पशु-पक्षी ने भी उन पर कोई अनुग्रह नहीं किया।। ५६।।

टिप्पणी-यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एकसठवें सूक्त का आठवाँ मन्त्र है। इस मन्त्र में सीता का अपहरण हो जाने के पश्चात् राम के क्रोध और दैन्य का वर्णन किया गया है। पहले तो क्रुद्ध राम ने राक्षसों पर बाणों से प्रहार किया और बाद में सीता की खोज में जुट गये। सीता की स्थिति का कोई संकेत न पाकर दुःखी हुए।

इस मन्त्र में राम के बाणों की बौछार की तुलना क्रुद्ध साँड़ की फूत्कार से की गयी है। सुन्दर उपमा का प्रयोग किया गया है।

विधुं दद्राणं समने बहूनां
युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा
द्या ममार स ह्यः समान।। ६०।।

विधुमिति। समने सङ्ग्रामे विधुं बहूनां शूराणां विधूननकरं दद्राणं द्रावणकरं युवानमपि सन्तं रावणं सीताहर्तारं पलितो वृद्धोऽपि अग्रिममन्त्रादरुणपुत्रः सुपर्ण इति गम्यते। तेन जटायुनामा पक्षी जगार निगीर्णवान्। तर्हि सिद्धं न समीहितं नेत्याह - देवस्येति। देवस्य सर्वान् राक्षसान् जेतुमिच्छतः इन्द्रस्य काव्यं क्रान्तदर्शित्वं पश्य। यद्यद्यैव रावणो वध्यते तर्हीतरेषां रक्षसां क्षयो न भविता, इत एव रामो निवृत्तो भवेत, तदर्थं यो ह्यः पूर्वेद्युः समान सम्यगचेष्टत रावणाभिभवं कृतवान्, स अद्य परेद्युर्ममार। सर्वराक्षसक्षयार्थं जटायोरपि मरणं देवेन्द्रेणैव सम्पादितमित्यर्थः। पक्षे, मनो दशरथस्य तापशामकत्वात् विवेकजटायुस्तत्सखा, सोऽपि श्रद्धां हरन्तं कामं निरोद्धुं न शशाक प्रत्युत स्वयमेव नष्ट इत्यर्थः।। ६०।।

हिन्दीभाषानुवाद - सङ्ग्राम में बहुत से वीरों को मथ डालने वाले, रुलाने वाले (सीताहर्ता) युवा रावण को वृद्ध (जटायु) ने क्षतविक्षत कर डाला (उसके वेग को रोका)। किन्तु सम्पूर्ण राक्षसों को जीतने की इच्छा वाले देवराज इन्द्र की क्रान्तदर्शिता तो देखिए कि (अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए) जिसने कल रावण को अभिभूत करने की भरपूर चेष्टा की, उसे आज मार डाला।। ६०।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पचपनवें सूक्त का पाँचवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, यहाँ सीता का हरण करके ले जाने वाले रावण का जटायु

ने डटकर मुकाबला किया और उस पर भीषण प्रहार करके चोटें पहुंचा कर कुछ समय तक उसे रोकने में सफल भी हुआ किन्तु दूसरे दिन शरीर में लगे भीषण घावों की वेदना से उसका प्राणान्त हो गया। देवेन्द्र तो सभी राक्षसों का वध अथवा पराभव चाहते थे। अतः उन्हीं के द्वारा ऐसा कराया गया। यदि रावण यहीं मार डाला जाता तो राम, सीता को पाकर यहीं से लौट जाते और इन्द्र का प्रयोजन सिद्ध न होता।

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण
आयो महः शूरः सनादनीडः।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं
वसु स्पार्हयुत जेतोत दाता।। ६१।।

शाक्मनेति। सुपर्णो जटायुर्यच्चिकेत यत् ज्ञातवान्, अहं रावणं हत्वा रामाय सीतां दास्यामीति, तत् सत्यमित् सत्यमेव, न तु मोघं न निष्फलम्, मृतस्यापि साधोः सङ्कल्पोऽन्यथा न भवतीत्यर्थः। अतः स्पार्हं स्पृहणीयं वसु सीताख्यं धनं रामो रावणं हत्वा जेता जेष्यति उत दाता अपि च रक्षोवनस्य। कीदृशः सुपर्णः शाक्मना शाकः शक्नोत्यनेनेत्युत्साहेन शक्तिमान्। अरुणो रामे रागवान् अरुणपुत्रत्वाद्वाऽरुणः। महो महान् शूरः । सनात् सर्वदा अनीडः अनिकेतः महायोगीत्यर्थः। पक्षे, यद्विवेकेन दृष्टं तत्तथैवावसरे प्राप्ते बोधः समर्थयत इति भावः। सुपर्णो दूरगामी।। ६१।।

हिन्दीभाषानुवाद-उत्साहसम्पन्न, महानवीर, सदैव गृहत्यागी, दूरगामी, अरुणपुत्र जटायु ने चाहा कि रावण को मार कर सीता श्रीराम को सौंप दूँगा, तो यह सत्य ही हुआ, क्योंकि मरने पर भी जटायु का सङ्कल्प निष्फल नहीं हुआ। रावण को मारकर राम स्पृहणीय सीता रूपी धन को जीतेंगे और विजित लङ्का को पुनः राक्षसों (विभीषण) को दे देंगे।। ६१।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र पूर्वोक्त सूक्त का छठाँ (मन्त्र) है। जटायु के सङ्कल्प को राम ने पूरा करके उसे सत्य किया- यही इस मन्त्र का भावार्थ है।

एभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि
येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न-
ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः।। ६२।।

कथं तत्सङ्कल्पः सत्योऽभूदत आह- ऐभिरिति । एभिः देवैः वृष्ण्या वृष्णां वर्षणशीलानां पशूनां चिह्नानि लाङ्गूलवत्त्वचतुष्पादचारित्वादीनि पौंस्यानि पुंसां मानुषाणामिमानि चिह्नानि हस्तादायित्वत्रिकोपवेशित्वादीनि वानरेषु दृष्टानि आददे आददिरे आत्तानि। एकत्वमार्षम् येभिः यैरुपात्तैश्चिह्नैर्युतो वज्री इन्द्रः वालिरूपी

वृत्रहत्याय दण्डरूपाय मरणाय औक्षत् रेतःसेकं कृतवान् कापेयीं चलचित्ततां प्राप्य कनिष्ठभ्रातुर्भार्यां दुहितृकल्पां गत्वा वाली वध्यत्वं प्रापेत्यर्थः। ये देवाः ऋते कर्म वानरयोनिप्रापकं दुरितं विनापि क्रियमाणस्य करिष्यमाणस्य सेतुबन्धनराक्षसवधादेः कर्मणः मह्ना माहात्म्येन उदजायन्त वानररूपेण महत्कर्मकर्तुमाविर्भूता इत्यर्थः। तैरेव सहायैर्जटायुसङ्कल्पं रामः साधितवानिति भावः। पक्षे, बोधसहायाः श्रोत्रेन्द्रियादयः ध्यानार्थमन्तर्मुखाः वेदान्तश्रवणार्थं बहिर्मुखाश्चेति ज्ञाऽज्ञचिह्नानि धारयन्ति, तत्रापि महानपि बहिर्मुखत्वेन प्रमाद्यति, अतोऽन्तर्मुखतयैव सर्वदा स्थेयमित्यर्थः। अस्मिन् पक्षे, ऋते कर्म ब्रह्म क्रियमाणस्य कर्मणो योगधर्मस्य माहात्म्येन देवाः साधकाः उदजायन्त ब्रह्मभावं गता इति योज्यम्।। ६२।।

हिन्दी भाषानुवाद - इन देवों के द्वारा पशुओं और मनुष्यों के चिह्न धारण करने वाली योनि अर्थात् वानर ऋक्षादि के रूप में जन्मग्रहण किया गया और वृत्रहत्या के लिए दण्डरूप मृत्यु प्राप्त करने के लिए इन्द्र ने भी इन्हीं चिह्नों को धारण करके बालि के रूप में (अपनी अनुजवधू के साथ) सम्भोग किया गया। यद्यपि इन देवों ने वानरयोनि में उत्पन्न होने लायक कोई पापकर्म नहीं किया था किन्तु आगे किये जाने वाले (सेतुबन्ध-राक्षस-रावण संहारादि) कर्मों की महिमा से वानरयोनि में उत्पन्न हुए और इन्हीं की सहायता से राम ने जटायु का सङ्कल्प पूरा किया।। ६२।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र है। इस मन्त्र में राम के सहायतार्थ देवों के वानर योनि में उत्पन्न होने का वर्णन है। इन्द्र पर वृत्रवध का पाप था, अतः वे राम के हाथों मृत्यु प्राप्त कर अपने उद्धार के लिए बालि रूप में पैदा हुए तथा सुग्रीव की पत्नी (जो अनुज वधू होने से उसकी पुत्री के समान थी) को बलपूर्वक अपनी भार्या बनाने के कारण राम के हाथों मारे गए। टीकाकार ने लिखा है कि यद्यपि देवों ने ऐसा कोई दुष्कर्म नहीं किया था कि उन्हें वानरयोनि प्राप्त हो किन्तु आगे किए जाने वाले सेतुबन्धादि महान कार्य करने में राम की सहायता के उद्देश्य से वे सब वानरयोनि में पैदा हुए। इस प्रकार देवों की सहायता से जटायु का सङ्कल्प पूरा हुआ।

नीचीनबारं वरुणः कबन्धं
प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा
यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम।। ६३।।

सुग्रीवसख्यात् प्राक् कबन्धवधमाह- नीचीनेति। ये विश्वस्य भुवनस्य राजा रोदसी अन्तरिक्षं च प्रससर्ज, सः नीचीनबारम् अधोद्वारं वक्षोमुखं कबन्धं नाम राक्षसं वरुणो वृण्वानो भूत्वा तेन कबन्धेन भूम भूमिं व्युनक्ति आर्द्रां करोति तस्य शोणितैरिति भावः। वृष्टिर्यवं न यवमिवेत्यार्द्रीकरणे दृष्टान्तः ।। ६३।।

हिन्दीभाषानुवाद - जो निखिल भुवन का स्वामी है, जिसने पृथ्वी-अन्तरिक्ष और द्युलोक का निर्माण किया है। उस (राम) ने वरुण बनकर वक्षःस्थल में मुखवाले कबन्ध को मारकर (उसके रक्त से) पृथिवी को उसी प्रकार सींचा जैसे वृष्टि यव (जौ) को सींचती है।। ६३।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के पचासीवें सूक्त का तीसरा (मन्त्र) है। इसमें राम द्वारा कबन्ध के वध का वृत्तान्त है। इसमें कबन्ध के रक्त से पृथिवी को सींचे जाने की उपमा वृष्टि के द्वारा यव (जौ) को सींचे जाने से दी गई है।

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सञ्चविचाचथ।। ६४।।

वानरैः सह रामस्य सख्यप्रसङ्गमाह - भीतायेति। अत्रेदं पुराणान्तरे उपाख्यायते, जाम्बवान् ब्रह्मणोंऽश ऋक्षराजो ज्ञातिभिर्निरस्तः स्वं राज्यं प्राप्तुं तपश्चकार। तं च द्वौ युवानावागत्य ऊचतुः - "आवाभ्यामाप्यायितस्त्वं शत्रून् जेष्यसीति।" स पुनस्तयोर्ज्येष्ठाय स्वदुहितरं दातुकामो यावत्किञ्चिद्विवक्ष्यति तावदेवान्तर्हितौ, तावेव पुनस्त्रेतायुगे सुग्रीवसहितः सन्ददर्श। तदा तौ दृष्टपूर्वौ प्रत्यभिज्ञाय सुग्रीवमुपदिदेश- "एताभ्यां सख्यं कुरु, एतौ तव कार्यं साधयितुं क्षमाविति।" ततः सुग्रीवो हनुमद्द्वारा रामेण सह सख्यं चकार, ज्येष्ठभ्रातुः राज्यं तेन हृतान् स्वदारांश्चेच्छन् इति।। तत्र जाम्बवानार्तो भक्तः, सुग्रीवस्त्वर्थार्थी, हनूमांस्तु निष्कामः। एतेषां क्रमेण रूपाण्याह - भीतायेति। भीताय ज्ञातिभ्यः यतः नाधमानाय उपतप्ताय ऋषये भूतपूर्वगत्या ब्रह्मणे सर्वमन्त्रद्रष्टे सप्तवध्रये वध्रिश्चर्मरज्जुः बन्धनानि यस्य तस्मै सप्तवध्रये। पार्थिवं पशुदेहं प्राप्ताय मह्यं मामनुग्रहीतुं भो अश्विना - अश्विनीकुमारवदतिरमणीयौ तच्छरीरोपाधिकौ वा सूत्रान्तर्यामिणौ मायाभिः मायाकृतेन मानुषवेशेण युवं युवां वृक्षं मदाश्रितं तपःस्थानभूतं समचथः समागतौ च। अनन्तरं मय्यनुग्रहं कृत्वा व्यचथश्च विगतौ च झटित्येवादर्शनं गतौ।। अयं मन्त्रः सकामभक्तानां गतिर्विलम्बेन भवतीति प्रकाशयति तथाविधश्च जाम्बवानिति योग्यत्वात् प्रकृतोपयोगि कथासूचकत्वाच्चोपन्यस्तः। यद्वा, पुर्यष्टकेन प्राणज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियमनो- भूततमःकामकर्मात्मकेन सर्वे बद्धाः। एते ऋक्षवानरास्तु, 'ऋते कर्ममुदजायन्त, देवाः' इत्युक्तेः कर्मबन्धहीनत्वात्सप्तवध्रयः। यद्यपि संयोगा विप्रयोगान्ताः' इति न्यायेन 'व्यचथ' इत्येव वक्तव्यम्, 'लोकतः परमार्थतोऽपि सकृद्विभातोह्येष" इति श्रुतेः सकृद्दृष्टस्यात्मनो वियोगासम्भवः, तथापि जाम्बवतः कामग्रस्तत्वाज्जातमपि दर्शनं न कृतकृत्यतामनयदिति ज्ञापनार्थं व्यचाचथ इति। अतएव रामावतारेऽपि भगवान् न जाम्बवतो जामातृत्वमङ्गीचकार एकपत्नीव्रतव्याजेन, किन्तु कृष्णावतारे विलम्बेनेति स्मर्यते।। ६४।।

हिन्दीभाषानुवाद - बान्धवों से डरे हुए सताये गये (अतः दुःखी) ब्रह्मांशभूत, सप्तसंख्यक चर्मरज्जुओं से बंधे हुए अर्थात् पार्थिवपशु देह प्राप्त मुझ जाम्बवान् के लिए (अर्थात् मुझ पर अनुग्रह करने के लिए) अश्विनीकुमारों के समान सुन्दर शरीर वाले आप दोनों (राम-लक्ष्मण) मेरे तपस्थान भूत वृक्ष के पास आए और मुझ पर अनुग्रह करके (शीघ्र ही दर्शन दिए बिना) चले भी गए।। ६४।।

टिप्पणी- यह मन्त्र, ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के अठहत्तरवें सूक्त का छठाँ (मन्त्र) है। यह मन्त्र जितना छोटा (अनुष्टुप् छन्दोबद्ध) है, इसकी व्याख्या उतनी ही बड़ी है। इसका कारण है कि टीकाकार ने ऋक्षराज जाम्बवान् का एक उपाख्यान टीका के आरम्भ में प्रस्तावित किया है और टीका के उत्तरभाग में अर्थान्तर की योजना की है। टीका के मुख्य अंश में टीकाकार ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि यह किसकी उक्ति है? क्योंकि टीकारम्भ में जाम्बवान्, सुग्रीव और हनुमान्-इन तीन रामभक्तों को प्रस्तुत किया गया है। कौन-कैसा भक्त है? यह भी बताया गया है। जाम्बवान् आर्तभक्त, सुग्रीव अर्थार्थी भक्त और हनुमान् निष्काम भक्त हैं। गीता में भगवद्भक्तों के चार प्रकार कहे गये हैं-

'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।'

टीका का आलोचन करने से यह उक्ति जाम्बवान् की ही प्रतीत होती है। सुग्रीव के साथ जाम्बवान् ने जब त्रेता में रामलक्ष्मण को देखा तो उन्हें उनका ज्ञान हो गया कि इन दोनों युवा वीर पुरुषों को मैं पहले देख चुका हूँ। तब उन्होंने सुग्रीव को सलाह दी कि इन दोनों से मैत्री करो। ये दोनों तुम्हारा कार्य सिद्ध करने में समर्थ हैं। तब सुग्रीव ने हनुमान् के माध्यम से रामलक्ष्मण के साथ मैत्री स्थापित की।

देहि मे ददामि ते निधेहि मे नि ते दधे।
निहारमिन्मे हर निहारं निहरामि ते।।६५।।

मे मह्यं पूर्वं देहि पश्चादहं सुग्रीवस्तु पूर्वं स्वार्थः पश्चादाराधनमित्यक्रमेणः प्राकृतस्तत्स्वरूपमाह - मन्त्रो देहि म इति।। ते तुभ्यं ददामि, तथा मे मदर्थं निधेहि। अहमपि ते निदधे इति पूर्ववत्। तथा निहारं प्रेषणीयं द्रव्यं मे मह्यम् इत् एव पूर्वं हर प्रापय, पश्चादहं ते तुभ्यं निहारं निहरामि प्रापयामि। भृत्यद्वारा एवं प्रार्थितो रामः सुग्रीवं पूर्वमनुगृह्य पश्चात्ततः स्वकार्यसिद्धिमकामयतेत्यर्थः।। ६५।।

हिन्दीभाषानुवाद - (सुग्रीव ने राम से कहा-) मुझे दीजिए मैं (भी) आपको दूँगा। आप मुझे (शरण में) रखिये मैं भी (आपका ध्यान) रखूँगा। आप पहले मेरा प्राप्तव्य धन (मेरी प्रिय पत्नी) मुझे प्राप्त कराइए, बाद में मैं भी आपको (आपकी प्रियतमा पत्नी) प्राप्त करने में सहयोग दूँगा।। ६५।।

टिप्पणी- इस एक मन्त्र को छोड़कर शेष सभी मन्त्र ऋग्वेद से सङ्गृहीत हैं। यह मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद (वाजसनेयिसंहिता) के तृतीय अध्याय का पचासवाँ (मन्त्र) है। इसमें सुग्रीव और राम का परस्पर सहयोगानुबन्ध प्रदर्शित है।

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं
मघा विप्रेभ्यो ददतं श्रृणोमि।
किं ते ब्रह्माणो गृह्णते सखायो
ये त्वा या निदधुः काममिन्द्र।। ६६ ।।

एवं सकामौ जाम्बवत्सुग्रीवनुगृह्य निष्कामे हनुमत्यनुग्रहं चिकीर्षुः रामं हनुमानाह - एवा हीति।। एव एवं शास्त्रदृष्टरीत्या हि निश्चितं त्वाम् ऋतुथा काले काले यातयन्तम् अन्तर्यामितया यज्ञादौ विषये यत्नं कारयन्तं तत्फलभूतानि मघा मथानि धनानि च विप्रेभ्यः श्रद्धावद्भ्यो ददतं शृणोमि परन्तु किं कथं ते त्वत्सम्बन्धिनो ब्रह्मणो ब्राह्मणाः मादृशाः गृह्णते गृह्णन्ति, अपितु दीयमानमपि न गृह्णन्तीत्यर्थः। सखायो निष्कामदासाः। अतएव ये त्वा या त्वयि कामं निदधुः, त्वत्काम्ययैव सर्वमहं करोमि न त्वत्तोऽन्यद्वाञ्छामीत्यर्थः। इदं मन्त्रत्रयं कथानुपयुक्तगुणकथनपर-त्वात्प्रङ्गादुपन्यस्तम्।। ६६ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - (सकाम जाम्बवान् और सुग्रीव को अनुगृहीत करने वाले श्रीराम से हनुमान् ने कहा) इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से निश्चित ही आप ऋतुओं के अनुसार (समय-समय पर) अन्तर्यामीरूप से यज्ञों का आयोजन कराते हैं तथा उसके फलभूत धन को श्रद्धालुओं ब्राह्मणों को देते हैं- ऐसा मैं सुनता हूँ। किन्तु क्या वे ब्राह्मण, जो मुझ जैसे आपके सखा हैं, धन लेते हैं? सखा तो निष्कामदास होते हैं। अतएव, हे श्रीराम! वे तो अपनी इच्छा आपकी ही इच्छा में ही रखते हैं (अर्थात् आपकी इच्छा ही उनके लिए सब कुछ है) वे आपकी इच्छानुसार सब कुछ करते हैं और आपसे (बदले में) अपने लिए कुछ भी नहीं चाहते।। ६६ ।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के बत्तीसवें सूक्त का बारहवाँ (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार, इसमें हनुमान ने अपना निष्कामभाव प्रकट किया है। राम कथा के लिए अनुपयुक्त होने पर भी, पूर्वोक्त इन तीनों मन्त्रों को राम के इन प्रबल सहायकों के गुणकथन के कारण प्रसङ्गतः यहाँ सङ्कलित किया गया है।

कथा देवानां कतमस्य यामनि
सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे।
को मृळाति कतमो नो मयस्कर-
त्कतम ऊती अभ्याववर्त्तति।। ६७ ।।

'देहि मे ददामि त' इति वदतः सुग्रीवस्य कार्यं वालिवधाख्यं 'येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्रीति सूचितं पूर्वमेव कृत्वा रामः स्वकार्यं चिन्तयते -कथा देवानामित्यादिना।। कथा केन प्रकारेण शृण्वतां मद्वाक्यमाकर्णयता देवानां वानररूपाणां मध्ये कतमस्य नामस्वरूपं सुमन्तु शोभनतया मन्तव्यं मनामहे जानीमहे। यामनि सीताप्रवृत्त्यर्थे गमने विषये को नोऽस्मान् मृळाति सुखयेत्। कतमो वा नोऽस्माकं मयः सुखं करत् कुर्यात्। कतमो वा ऊती अस्मदीयां विभूतिं सीताख्यां श्रियम् अभ्याववर्त्तति अभ्यानयति। तं न जानीमः इति भावः।। ६७।।

हिन्दीभाषानुवाद - मेरी बातें सुनते हुए (अर्थात् सीता विषयक मेरी चिन्ता से अवगत) इन वानररूप देवों के मध्य, मैं किसके नाम और स्वरूप को जानूँ, जो सीता की खोज के विषय में हमें सुखी करे, कौन है वह जो (उसका पता बताकर) मुझे आनन्दित करे और कौन है वह जो सीतारूपी मेरी लक्ष्मी को वापस लाकर मेरे प्राण बचाये, मेरी रक्षा करे अर्थात् इन वानररूपधारी उस देव को मैं नहीं जान पा रहा हूँ।। ६७।।

टिप्पणी- यह मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के चौंसठवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। सुग्रीव के आदान-प्रदान के सिद्धान्त के आधार पर स्थापित मैत्री के अनुसार श्रीराम ने प्रथमतः वालिवध रूपी उसका कार्य (पत्नी की प्राप्ति भी) कर दिया और तब अपने कार्य की चिन्ता करते हैं। यद्यपि राम सब जानते हैं तथापि सुग्रीव को उसके वचन का स्मरण कराने हेतु और उसे प्रेरित करने हेतु वे अपने कार्य की सिद्धि में समर्थ वानर की पहचान करने के लिए उत्सुक हैं।

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो
वेनन्ति वेनाः पतयन्त्यादिशः।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो
देवेषु मे अधिकामा असंयत।। ६८।।

क्रतवः साक्षात् सत्यसङ्कल्पा इत्यर्थः। क्रतूयन्ति क्रियामात्मन इच्छन्ति अस्मत्सेवां कर्तुमिच्छन्ति। हृत्सु धीतयः हृदयेषु धीमन्तः वेनन्ति शोभन्ते। वेनाः कमनीयाः। आसमन्तात् दिशः पतयन्ति गच्छन्ति। एभ्यो वानररूपेभ्यो देवेभ्योऽन्यो न मर्डिता सुखयिता न विद्यते । मे मम कामाः मनोरथाः देवेषु एषु असंयत अपूर्यन्त।। ६८।।

हिन्दीभाषानुवाद -साक्षात् सत्य-सङ्कल्परूप ये वानर मेरी सेवा करना चाहते हैं। ये बुद्धिमान् हैं और इनके हृदयों में (उदारता है)। ये सुन्दर वानर चारों ओर सभी दिशाओं में जाते हुए शोभा पा रहे हैं। मेरे लिए इन वानरों से अतिरिक्त (इस समय) अन्य कोई सुख देने वाला नहीं है (क्योंकि) मेरे सारे मनोरथ इन्हीं देवताओं पर आश्रित हैं।।६८।।

टिप्पणी-पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र है। (१०.६४.२) । इसमें वानरों के प्रति राम के मनाभावों की अभिव्यक्ति है।

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं
विश्वे शयावन्तु वाजिनो मितद्रवः।
सहस्रसा मेधसा ताविवत्मना
महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे।। ६६।।

इत्यादि चिन्तयित्वा वानरान् प्रति वदति - तेन इति। ते अर्वन्तः शीघ्रगतयो वाजिनो वानराः नोऽस्माकं हवम् आह्वानं शयावन्तु श्रृण्वन्तु। कीदृशाः? हवनश्रुतः हवनं शृण्वन्ति ते, तथा विश्वे सर्वे, मितद्रवः परिमितगतयः। ये त्मना आत्मना सहस्रसाः सहस्रैः सम्मितस्य धनादेः सम्भक्तारः मेधसा ताविव यज्ञे इव समिथेषु सङ्ग्रामेषु महः महनीयम् धनं शत्रूणां वित्तं जभ्रिरे हृतवन्तः। यज्ञे ऋत्विज इव स्वभूतमिति भावः।। ६६।।

हिन्दीभाषानुवाद - पुकार सुनने वाले, वेगशाली वे वानर मेरी बात सुनें। वे सभी वानर अपरिमित गति वाले हैं। जिस प्रकार यज्ञ में ऋत्विग्-गण धन ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार ये हजारों की संख्या में सङ्ग्राम में शत्रुओं के महनीय धन को जीतकर लायें।। ६६।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह छठाँ मन्त्र है (१०.६४.६)। इस मन्त्र में राम ने अपने कार्य के लिए समुद्यत वानरों को कार्योपदेश दिया है।

टीकाकार ने 'वाजिनो मितद्रवः' में 'मितद्रवः' का अर्थ 'परिमितगतयः' किया है जिसका अर्थ 'सीमितगति वाले' है। यह अर्थ, मन्त्रारम्भ में आये हुए 'अर्वन्तो' के अर्थ के विरुद्ध है। वस्तुतः पद है - 'वाजिनोऽमितद्रवः'। इस दशा में सन्धि से अलग करने पर 'अमितद्रवः' प्राप्त होगा, जिसका अर्थ है-'असीमित गतिवाले' और इससे उक्त अर्थविरोध का परिहार होगा।

प्र वो वायुं रथयुजं पुरन्धिं
स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम्।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि
क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः।। ७०।।

भो देवाः वः युष्माकं मध्ये वायुं वायुपुत्रं रथयुजं देहधरं पुरः धीयत इति पुरः सरं स्तोमैः स्तुत्या कृणुध्वं सख्याय सखिवत् कार्याय पूषणं पोषणं मत्कार्यार्थमिमं स्तुवध्यमित्यर्थः। हि यतः ते स्तोमासः सवितुर्देवस्य सवीमनि प्रसवे लोके क्रतुं सङ्कल्पं सचन्ते सम्पादयन्ति। सचितः चेतनस्य पुंसः सचेतसः सहृदयस्य स्तुतयः सहृदयं कार्ये प्रवर्तयन्तीत्यर्थः।। ७०।।

हिन्दीभाषानुवाद-हे देवगण! आप सबके बीच, आगे-आगे चलने वाले वानरदेहधारी वायुपुत्र (हनुमान्) की, अपने मैत्रीपूर्ण कार्य की पुष्टि (पूर्ति) के लिए स्तुति करता हूँ। वे सवितृदेव की सृष्टि (इस लोक में) अपने सङ्कल्प को कार्यरूपता प्रदान करते हैं। (निश्चय ही) बुद्धिमान् पुरुष द्वारा की गयी स्तुतियाँ सहृदय को कार्य में प्रवृत्त करती हैं।। ७०।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र (१०.६४.७) है। इसमें श्रीराम ने यह जानकर कि हनुमान् से ही कार्यसिद्धि होगी, उनकी प्रशंसा की है।

इस मन्त्र में आलङ्कारिक सौन्दर्य भी दृष्टिगोचर होता है। 'सवितुः सवीमनि' और सचन्ते सचितः सचेतसः' में क्रमशः 'स' और 'सच' की नैकधा आवृत्ति होने से अनुप्रास तथा विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

त्रिःसप्त सस्रा नद्यो महीरपो
वनस्पतीन् पर्वताँ अग्निमूतये।
कृशानुमस्तॄन् तिष्यं सधस्थ
आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।। ७१।।

त्रिरावृत्ताः सप्त त्रिःसप्त एकविंशतिः। सस्राः सरन्त्यः नद्यः नदीः महीरपः समुद्रं वनस्पतीन् पर्वतान् अग्निं च वाडवम्। तथा कृशानुं कल्पान्ताग्निं अस्तॄन् अस्यन्ति क्षिपन्ति तान् शेषकालाग्निरुद्रादीन् तिष्यं पुष्योपलक्षितं नक्षत्रमण्डलं च सधस्थे सह तिष्ठन्त्यस्मिन्निति सर्वलोकावासे कृत्स्नब्रह्माण्डे आसमन्तात् स्थितं वस्तुजातं प्रति रुतं शब्दं कुर्वन्नेव द्राति गच्छति गर्जन्नेव ब्रह्माण्डपिण्डमाक्रान्तुं शक्तो रुद्रस्तं हनुमद्रूपं रुद्रेषु मध्ये रुद्रियं रुद्रकर्मार्हं शत्रुसंहारक्षमं हवामहे ऊतये स्वकार्यसमृद्धये स्वेष्ट-सिध्यर्थमित्यर्थः।। ७१।।

हिन्दीभाषानुवाद - इक्कीस प्रवहमान नदियाँ, पृथिवी, समुद्र, वनस्पतियाँ, पर्वत, अग्नि, कल्पान्ताग्नि और समस्त नक्षत्रमण्डल के साथ रहने वाले अर्थात् निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त, अपनी भीषण ध्वनि से सबको आक्रान्त करने वाले, शत्रुसंहाररूप उग्र कर्म करने में समर्थ, रुद्रों में रुद्रावतार हनुमान् का मैं अपने अभीष्टकार्य की सिद्धि के लिए आह्वान करता हूँ।। ७१।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह आठवाँ मन्त्र (१०.६४.८) है। इसमें श्रीराम अपने अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए रुद्रावतार हनुमान् का आह्वान करते हैं। रुद्रों की संख्या एकादश है। हनुमान् रुद्रावतार माने जाते हैं और उनकी सामर्थ्यशक्ति से भी यह अवतारमान्यता पुष्ट होती है।

टीकाकार ने 'रुद्र' की अति समीचीन व्युत्पत्ति की है-'रुतं शब्दं कुर्वन्नेव द्राति गच्छति।'

इस मन्त्र में भी अनुप्रासालङ्कार की छटा दर्शनीय है-
'रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियम् ।'

अपश्यमस्य महतो महित्व -
ममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनूविभृते सम्भरेते
असिन्वती बप्सती भूर्यन्तः ।। ७२ ।।

एवमाज्ञप्तस्य हनुमतो रूपं वर्णयति - अपश्यमिति महतो महित्वं माहात्म्यम् अपश्यं दृष्टवानस्मि। मर्त्यासु विक्षु मर्त्यलोके एवाऽस्य समुद्रं क्रामतो रूपं दृष्टवानस्मि। तथा अस्य हनू मुखफलके नाना पृथक् विभृते विहते व्यात्तं मुखं चाऽपश्यमित्यर्थः। ते एव हनू सम्भरेते संहरेते विश्वस्य संहारं कुरुतः। असिन्वती अबध्नन्ती, अन्योऽन्यमस्पृशन्त्यौ। बप्सती ललमाने। भूरि बहुलम् अत्तः भक्षयतः। प्रश्वासवेगेनैव सर्वमस्योदरे प्रविशति न तु हन्वोर्मेलनेनेति भावः।। ७२।।

हिन्दी भाषानुवाद - (श्रीराम कहते हैं-) मैं इस (हनुमान्) की महनीय महिमा देख रहा हूँ। मैं इसके फैले हुए मुखफलक को भी देख रहा हूँ जो विश्व का संहार करते हुए, परस्पर न लगते हुए संसार को निगलते हुए और सर्वभक्षण करते हुए भी दिखाई दे रहे हैं।। ७२।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के उन्यासीवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। इस मन्त्र में श्रीराम ने अपने कार्यसाधक हनुमान् के माहात्म्य का वर्णन किया है।

गुहाशिरो निहितमृधगक्षी
असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि।
अत्राण्यस्मै षड्भिः सम्भरेन्त्यु-
त्तानहस्ता नमसाऽधि विक्षु।। ७३।।

अस्य शिरो गुहा गुहायां निहितं, वानररूपत्वाच्छिरोऽत्यल्पमित्यर्थः। तथा अक्षी अक्षिणी ऋधक् तले निहिते गभीरे इत्यर्थः। असिन्वन् मुखफलके अबध्नन् असंयोजयन्नेव वनानि जलानि वनस्थानि फलादीनि वा जिह्वयैवातिदीर्घीकृतयाऽत्ति भक्षयति। अस्मै अत्राणि अमत्राणि, वर्णलोपश्छान्दसः, भोजनपात्राणि, अन्नपूर्णानि षड्भिः दूतैः सम्भरन्ति। देवाः सीताज्ञया खलु यक्षा एनं सेवन्त इति भारते दृष्टम्। विक्षु प्रजासु अधि उपरि स्थिताः गन्धर्वादयः नमसा नमस्कारेण निमित्तेन उत्तानहस्ताः बद्धाञ्जलयो भरन्तीति सम्बन्धः।। ७३।।

हिन्दीभाषानुवाद - यह गुहा शिर है अर्थात् इसका सिर, शरीररूपी गुहा में समाया हुआ है और आँखें नीचे की ओर धँसी हुई हैं। यह अपने मुखफलक में जिह्वा को लम्बी करके जल, कन्द-मूल-फलादि का भक्षण करता है। इसके लिए छः दूत भोजनपात्र भरते हैं और मर्त्यलोक से ऊपर के गन्धर्वादि प्राणी हाथ उठाये, इसको नमस्कार करते हैं।। ७३।।

टिप्पणी-पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (१०.७६२) है। इसमें हनुमान का वर्णन है। शिर छोटा होने के कारण लगता है कि वह शरीर गुहा में समाया हुआ है। टीकाकार के अनुसार, सीता की आज्ञा से यक्षादि देवता हनुमान् की सेवा में लगे रहते हैं। इसी आधार पर छः दूतों द्वारा इनका भोजनपात्र भरे जाने की सङ्गति लगाई जा सकती है।

वस्तुतः हनुमान् के स्वरूपवर्णन के लिए इस मन्त्र की योजना समीचीन नहीं जान पड़ती।

प्रमातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्
कुमारो न वीरुधः प्रसर्पदुर्वीः।
ससं न पक्वऽमविदच्छुचन्तं
रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः।। ७४।।

प्रमातुरिति।। यथा पुष्पान्वेषणपरः कुमारो वीरुध ओषधीः प्रसर्पति, एवं हनुमान् मातुः सीतायाः सकाशात् प्रकृष्टतरं गुह्यं गुह्यसन्देशम् इच्छन् उर्वी : भूप्रदेशान् प्रसर्पत् प्रासर्पत्। ससं सस्यक्षेत्रं पक्वमिव, नेत्युभयत्रोपमार्थे तद्वत् पाण्डुरमित्यर्थः। यतः शुचन्तं शोचन्तं सीताया आत्मानम् अविदत् शोकेन लिङ्गेन पक्वक्षेत्रच्छायया च ज्ञातवान्। रिरिह्वांसं लोलिहानं रावणं ग्रसितुमित्यर्थात् रिपः पृथिव्या अन्तर्मध्ये उपस्थे गुप्ते स्थाने स्थितमिति शेषः। प्रमातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्नित्युत्तरमन्त्रे प्रकर्षेण तीर्त्वा मातुर्गुह्यमिच्छन्निति लिङ्गाद् हनू गुहाशिर इत्यादि लिङ्गाच्च सीतान्वेषणार्थं समुद्रं तरितुकामस्य हनुमत एवैतद्रूपं वर्ण्यत इति सहृदयैरेव ज्ञेयम्।। ७४।।

हिन्दीभाषानुवाद - जैसे फूल खोजता हुआ कुमार औषधियों के पास जाता है, वैसे ही माता सीता के पास से गुप्तसन्देश लेने के लिए हनुमान् ने तमाम भूप्रदेशों में विचरण किया। उन्होंने पकी हुई फसल के समान शोक से पीली पड़ी हुई किन्तु रावण को ग्रसने की इच्छा वाली सीता को पृथिवी के एक गुप्तस्थान में खोज निकाला।। ७४।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह तीसरा मन्त्र (१०.७९.३) है। इसमें हनुमान् द्वारा सीता का पता लगाने का उल्लेख है। उपमालङ्कार का प्रयोग है। मन्त्र में दो स्थलों पर आये हुए 'न' इवार्थक - उपमावाचक हैं।

इषुर्न धन्वन् प्रतिधीयते मति-
र्वत्सो न मातुरूप सज्र्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आय-
त्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते।। ७५।।

एवं रूपस्य हनुमतः सीतादर्शनं सीताहनुमतोः संवादादिकं च वर्ण्यते- इषुर्न-धन्वन्नित्यादिना भूयसा प्रबन्धेन। तत्रेदं दशर्चं सूक्तं सोमरूपी विष्णुर्देवता। इषुर्बाणो, न शब्द उपमार्थे। स यथा धन्वन् धनुषि प्रतिधीयते संयोज्यते। एवं मतिर्मेधावी मतिशब्दस्य मेधाविनामसु पाठात्। मेधावी हनुमानपि प्रतिधीयते प्रेर्यते गगनमार्गेण सीतारूपं लक्ष्यं प्रापयितुमिति भावः। स प्रतिहितो ऊधनि गोःक्षीराशये वत्सो न वत्स इव मातुः सीतायाः समीपे स्तनं पातुं शिशुरिव उपसर्जि उपसृष्टोऽभूत्, न तु बाणवल्लक्ष्यभूतां बिभेदेत्यर्थः। सा च माता अग्रे आयती वत्सस्याभिमुखमुपसर्पती गौरिव उरुधारा स्थूलया प्रेमधारया दुहे दुग्धे। तम् इष्टवाक्येनाप्यायितवती। ननु सतीमतिसुन्दरीं च सीतामुपसर्पतोऽस्य चित्तविकारः कथं नासीदित्यत आह - अस्य व्रतेष्विति। अस्य रुद्रस्य व्रतेषु ब्रह्मचर्यादिषु प्राप्तव्येषु सोमः सोमयागादिकं कर्मवृन्दमिष्यते। कर्मभिः शुद्धचित्तस्य परवैराग्यवतः कामविकारशङ्कैव नास्तीत्यर्थः।।७५।।

हिन्दीभाषानुवाद - जिस प्रकार धनुष पर आरोपित बाण प्रेरित होकर तीव्रगति से जाता है, उसी प्रकार हनुमान् भी सीता के पास गए। जैसे बछड़ा दूध पीने के लिए अपनी माता (गाय) के पास जाता है उसी प्रकार हनुमान् भी माता सीता के आगे गए और माता भी अपने बछड़े की ओर आती हुई प्रेमवश स्तनों से दूध की धारा बहाने लगती है। ब्रह्मचर्यव्रत पालन करने और कर्म से शुद्ध हनुमान् के चित्त में कोई (काम) विकार नहीं उत्पन्न हुआ।। ७५।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के नवें मण्डल के उनहत्तरवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। हनुमान् सीता के पास किस तरह, किस भाव से पहुंचे, इसका अत्यन्त सुन्दर काव्यमय (सुन्दर उपमा की योजना द्वारा) वर्णन हुआ है।

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु
मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव
मधुमानद्रप्सः परिवार मर्षति।। ७६।।

उपो-उपैव समीपे एव मतिर्मेधावी हनुमान् पृच्यते संयुज्यते, तेन च मातुः कर्णे मधु मधुरम् अमृततुल्यं वाक्यम्-

"जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः।।
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य राघवस्य महात्मनः।"
- इत्यादिकं सिच्यते श्राव्यते ।

ततश्च तां हनुमति जातविस्रम्भां मातरं मन्द्राजनी वाग्देवता अन्तरासनि मध्ये मुखे स्थित्वा चोदते वक्तुं प्रेरयति। मन्द्राजनी शब्दो वाग्-नामसु पठितः। भाष्ये तु मदकरस्य प्रेरयित्री सोमस्य धारेति व्याख्यातम्। वाग्देवतया प्रेरिता सा यद्वक्ति तदाह-पवमान इति।। पुनाति शोधयतीति पवमानः पापनोदन्वेषको विष्णुः एकोऽपि प्रघ्नतां प्रकर्षेण निघ्नतां कालाग्निरुद्राणां सन्तनिर्निबिडतरः समुदाय इव। द्रप्सः द्रप्सवदुद्रिक्तस्य रावणस्य षष्ठ्याः सु इत्यादेशः। परिवारम् अर्षति समुदायं गच्छति प्रश्नार्थे लेट्। रावणं सपरिवारं भस्मीकर्तुं किमेष्यतीति पप्रच्छेत्यर्थः। कीदृशः पवमानः मधुमान् मयि प्रीतिमान्।। ७६।।

हिन्दीभाषानुवाद - सीता के पास पहुँचकर मेधावी हनुमान् ने कानों में मधुसेक करते हुए (मधुर-प्रियवाणी से) माता को अपना परिचय सुनाया। तब हनुमान् के प्रति विश्वस्त सीता के मुख में स्थित होकर वाग्देवता ने बोलने के लिए प्रेरित किया। क्या मुझमें प्रीति रखने वाले, पापशोधक भगवान् श्रीराम प्रलय करने वाले कालाग्निरुद्रों के सघन समुदाय की तरह रावण को सपरिवार भस्म करने के लिए आयेंगे? - (ऐसा माता सीता ने हनुमान् से पूछा)।। ७६।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (९.६९.२) है। टीका में उक्त प्रसङ्ग में हनुमान् द्वारा कथित प्रिय वाक्य वाल्मीकि रामायण के उक्त प्रसङ्ग के वचनों से मेल खाता है। द्रष्टव्य-वाल्मीकिरामायण, सुन्दरकाण्ड, ३४.२८-४०

संम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययु-
रपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आविवास नमसा सुवृक्तिभि-
र्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये।। ७७।।

सिच्यते मध्वित्येतत्प्रदेशान्तरस्थेन मन्त्रेण विवृणोति - संम्राज इति।। ये सम्राजश्चक्रवर्तिनः सुवृधः सुतरां वृद्धिमन्तः यज्ञं विश्वामित्रस्य आययुः आगतवन्तः। अपरिह्वृता अकुटिलाः, दिवि परशुरामीये स्वर्गलोके क्षयं नाशं दधिरे धृतवन्तः। एवं विश्वामित्र यज्ञगमनं परशुरामलोकभङ्गं चाभिज्ञानमुक्त्वा स्वस्य सम्राट्सम्बन्धित्वमाह-तानिति। तान् श्रीरामभद्राख्यान् आदित्यान् आदित्यवंशजान्। आवि इत्युपसर्गद्वयसम्बन्धात्

वास इत्यस्यावृत्तिः, उवासेत्युत्तमैकवचने लिटि अभ्यासलोप आर्षः। तान् आ उवास तेषां समीपे वासं कृतवानस्मि। नमसा नमस्कारेण दास्येनेत्यर्थः। सुवृक्तिभिः सुतरां वृक्तयो वृजिनानि महान्ति सङ्कटानि तैर्हेतुभिः अदितिम्। 'इयं वा अदितिः' इति श्रुतेः। पृथ्वीं तज्जां त्वाम् उद्दिश्य स्वस्तये कल्याणाय त्वां भर्त्रा सह सङ्गमयितुमित्यर्थः। विवास प्रवासमपि कृतवानस्मि। रामदासोऽहं त्वामुपागतोऽस्मीत्यर्थः। पक्षे, विष्णुभक्तोऽहं यज्ञादीनामनित्यफलतां ज्ञात्वा शुद्धबोधोल्लासिनीं श्रद्धां त्वां प्राप्तोऽस्मीत्यर्थः। अक्षरार्थोऽपि तथैवं योज्यः।। ७७।।

हिन्दीभाषानुवाद-जो सम्राट् समृद्धिशाली यज्ञ में आने वाले, अकुटिल और (परशुराम के) स्वर्ग का विनाश करने वाले हैं, मैं उन्हीं सूर्यवंशी (श्रीरामचंद्र) के पास विनम्रभाव से रहता हूँ। महान सङ्कटों से घिरी पृथिवी और आपके कल्याण के लिए (यहाँ आया हूँ)।। ७७।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के तिरसठवें सूक्त का पाँचवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में हनुमान् भगवान् राम के सेवक के रूप में अपना परिचय देते हैं और सीता के पास आने का प्रयोजन बतलाते हैं।

राम के लिए मन्त्र में प्रयुक्त 'यज्ञमाययुः' का अर्थ टीकाकार ने 'विश्वामित्र के यज्ञ में आए' - किया है। इसके अतिरिक्त अन्य भी समुचित अर्थ हो सकते हैं- विष्णु के रूप में सभी यज्ञों में आये अथवा, सीतास्वयंवर के उद्देश्य से आयोजित धनुर्यज्ञ में आये।

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि
श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतंयते।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो
नृम्णा शिशानो महिषो न शोभिते।। ७८।।

एवं पवमानः सन्तनिरित्यादिना स्वस्मिन् रामानुग्रहं पृष्ट्वा स्वस्य विशुद्धतां मन्त्रद्वयेनाह सीता-अव्ये इति।। अव्ये अवीर्नारी रजस्वला तस्यां योग्यं कर्म अव्यं मैथुनं तस्मिन् अव्ये निमित्ते वधूयुः वध्वा पुत्रभार्यया सह यौति मिश्रीभवतीति वधूयुः दुष्टकामुकोऽपि रावणः त्वचि परिपवते शुद्ध्यति मदप्राप्त्या पाण्डुरो भवतीत्यर्थः। यतः अदितेः अदितिं सीतां मां प्राप्य ऋतं सत्यं ब्रह्मचर्यम् एति प्राप्नोतीति ऋतं यत् तस्मै ऋतंयते रावणाय तत्परिजनः नप्तीः नयतन्ति स्वर्गादिति नप्तय उर्वश्याद्याः स्त्रियस्ताः श्रथ्नीते शिथिलाः करोति बलादाहरति। सीताया अलाभात्तप्यमानं रावणं चिकित्सितुमानीता अपि रम्भादयस्तस्मै न रोचन्त इत्यवज्ञातास्ता भवन्तीत्यर्थः। नन्वीदृशोऽपि बलात्सीतां कुतो न कामयत इत्यत आह-हरिरिति। हरिः सोमश्चित्ताधिष्ठाता अक्रान् एनम् आक्रान्तवान्। यजतः सङ्गतिकर्तॄन् रावणादीन्, अत एव तेषां मदस्संयतो निगृहीतः। अन्यथा, पाण्डुवन्मरणभयमपि त्यक्त्वा ते परदारानाक्रमेयुः।

अतएव नृम्णा कामबलेन शिशानो दीप्यमानो महिषो महान् रावणो न शोभते, न पुष्यत्यपि तु कृश एवभवति।। ७८।।

हिन्दीभाषानुवाद - मैथुन के लिए पुत्रवधू से भी संभोग करने वाला दुष्टकामुक रावण अब शुद्ध हो रहा है, क्योंकि मुझ सीता के यहाँ आ जाने पर अब वह ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है। सीता को न प्राप्त करने से सन्तप्त रावण को स्वर्ग की अप्सरायें भी रुचिकर नहीं लगतीं (उसने उन्हें भी त्याग दिया है) । सोमचित्त के अधिष्ठता हरि ने स्त्रीसंङ्ग करने वाले रावणादि को चेतावनी दे दी है कि उन्हें संयम से रहना चाहिए। अत एव काम से दीप्त होने पर भी अब महान रावण सुशोभित नहीं होता।। ७८।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के नवें मण्डल के उनहत्तरवें सूक्त का तीसरा (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार इसमें तथा अगले मन्त्र में सीता अपनी विशुद्धता प्रतिपादित कर रही है। किन्तु इस मन्त्र में स्पष्टतया तो रावण की कामुकता और काम सन्तप्तता का वर्णन करते हुए सीता, उसे ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के कारण शुद्ध होता हुआ, बता रही हैं। प्रकारान्तर से सीता की विशुद्धता भी व्यक्त होती है। वस्तुतः यह मन्त्रयोजना सन्दर्भ से हटकर और अप्रासङ्गिक है।

उक्षा मिमाति प्रतियन्ति धेनवो
देवस्य देवीरुपयन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्यय-
मत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत।। ७९।।

पूर्वोक्तमेव विवृणोति उक्षेति।। उक्षेवोक्षाः रेतः सेचनकामः मिमाति आत्मानं हिनस्ति, अन्यत्रारमणात्। यतो धेनवः इव धेनवः आगताः दिव्यस्त्रियः प्रतियन्ति परावृत्त्य गच्छन्ति, तावतैव देवस्य धर्मस्य देवीर्देवाङ्गनाः निष्कृतिम् आनृण्यम् उपयन्ति, रावणकृतो, धर्मस्तस्मै दिव्याङ्गनाः समर्प्य कृतार्थोऽभूत, न हि तस्य भोगपर्यन्तं व्यापारोऽस्ति; रावणस्तु स्वदोषान्न भोगभागभूत्। देवदत्तमपि सुखम् अधर्माधिक्यान्नश्यतीति भावः। अतीति- अर्जुनं कृष्णावतारे अर्जुनवृक्षतां प्राप्तं नलकूबरं भाविवृत्त्या वाऽर्जुनशब्दवाच्यम् अव्ययं याति मनसा गच्छतीत्यव्ययम्। रम्भा सम्भोगार्थिनं वारं बालं स्वपुत्रम् अत्यक्रमीत्। बधूयुः रम्भाया आक्रमणेनातिक्रान्तवान्, अतस्तेन शप्तो मरणभयान्न सीतां बलाद्भोक्तुमिच्छति।

ननु पाण्डुवन्मरणभयमप्यतिकामुकत्वात्कुतो न त्यजतीत्यत आह- अत्कमिति। सततं गच्छतीत्यको नित्यप्रवासी परिव्राट। नशब्द इवार्थे। परिव्राजमिव निक्तं निर्णिक्तं सीताविषये दृढब्रह्मचर्यं तं सोमश्चित्ताधिष्ठाता सकलराक्षससंहारमिच्छन् परि परितः चित्तप्रभावात् कामात् अव्यत अरक्षत्। अतोऽयं मां न स्पृष्टवान्। यदि स्पृशेत्, तर्हि नलकूबरशापेन सद्यो नश्येदित्यात्मशुद्धिरुक्ता।। ७९।।

हिन्दीभाषानुवाद – सम्भोग की कामना वाला रावण अपने को (ब्रह्मचर्य के कारण) मार रहा है (मृत्युतुल्य कष्ट उठा रहा है), क्योंकि दिव्याङ्गनायें अभुक्त ही लौट जाती हैं। रावणकृत धर्म भी उसे दिव्याङ्गना समर्पित कर ऋणमुक्त हो जाता है। द्वापर में अर्जुनवृक्ष बन जाने वाले नलकूबर ने (रम्भा को बलात् पकड़ने पर) उसे शाप दे दिया था, अतः वह रावण अब संन्यासी की तरह सीता के विषय में दृढ ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है ।। ७६।।

टिप्पणी – पूर्वोक्त सूक्त का यह चौथा मन्त्र है। इस मन्त्र में भी पूर्वमन्त्र के ही अर्थ का विवरण किया गया है। पूर्वकाल में रावण ने रम्भा के साथ बलात् सम्भोग करने की चेष्टा की थी। इस पर क्रुद्ध नलकूबर ने उसे शाप दे दिया था कि यदि यह पराई स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध रमण करेगा तो मृत्यु को प्राप्त होगा। उसी शापभय से रावण सीता के साथ बलात् रमण करने से डरता है।

अमृक्तेन रुशता वाससा
हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परिव्यत।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे
कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ।।८०।।

अथादृष्टपूर्वां मां त्वं कथं ज्ञातवानिति प्रष्टुमिच्छन्तीं सीतामालक्ष्य हनुमानाह- अमृक्तेनेति।। अमर्त्यः अप्राकृतो हरिर्वानरो मद्रूपी अमृक्तेन असम्मार्जितेन मलिनेन रुशता कनकतन्तुमयत्वात्सूक्ष्मत्वाच्च दीप्यमानेन वाससा वस्त्रेण वियोगिनीचिह्नेन परिव्यत पर्यवेष्टयत् ज्ञातवानित्यर्थः। कीदृशो? निर्णिजानः शोधयन् सीतामन्वेषयन् इत्यर्थः। दिवः सुखस्य पृष्ठामिव पृष्ठम् उच्चस्थानं यदपेक्षयाऽन्यन्महदानन्दस्थानं, भर्तुर्नास्ति-'सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनम्' इति श्रुतेः। तादृशं रामस्य कलत्रं त्वां नभस्यं नभस्मायं नभोऽव्याकृतम् आकाशः शक्तिर्मायेति पर्यायाः तन्मयं परिव्यतेति सम्बन्धः। यत् निर्णिजे कण्टकनिरसनेन ब्रह्माण्डशोधनाय चम्वोः वानरराक्षससेनयोर्बर्हणा निबर्हणाय भस्मीभावाय उपस्तरणमिव कृतवान् परमेश्वरः। अडभावश्छान्दसः। यथा-द्व्यवदानप्रक्षेपार्थिना स्रुचि उपस्तरणं क्रियते, तद्वच्चमूद्वयहोमार्थिना धात्रात्वं निर्मितासीत्यर्थः।। ८० ।।

हिन्दीभाषानुवाद- ("कभी न देखी गयी मुझको तुमने कैसे पहचान लिया?"-सीता द्वारा ऐसा पूछने पर हनुमान् ने कहा-) सीता की खोज करते हुए, स्नान-प्रसाधन न करने पर भी स्वर्णतन्तु से निर्मित सूक्ष्म चमकते हुए वस्त्र तथा विरहिणी के (एकवेणी आदि) चिह्नों से (मैंने) आपको पहचान लिया कि स्वर्णतुल्य सुख के सर्वोच्चस्थान राम की माया (पत्नी) यही हैं। (रावणरूप) कांटें को निकालकर ब्रह्माण्डशोधन के लिए विधाता ने वानरों

और राक्षसों की सेना को भस्म करने के लिए मानो उन्हें उपस्तरण बना दिया है।। ८०।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह पाँचवा मन्त्र है। इस मन्त्र में सीता की जिज्ञासा में हनुमान् उसे पहचान लेने का तरीका बताते हैं। यहाँ यज्ञीय कर्मकाण्डपरक एक अच्छी उपमा द्रष्टव्य है। जैसे इष्टफल की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले यज्ञ के अन्त में वेदी के चारों ओर बिछाये गए कुशास्तरण का भी हवन किया जाता है, वैसे ही सीता की प्राप्ति के लिए युद्ध में दोनों पक्षों- वानरों और राक्षसों की सेनायें भी उपस्तरण की तरह भस्म हो जायेंगी।

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो
मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो
नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन।।८१।।

सूर्यस्येवेति।। यथा सूर्यस्य रश्मयः साकं युगपत् द्रावयित्नवो गमनशीला आशवः शीघ्राश्च, एवं मत्सरासः अहमिव सरन्ति ते मत्सरासः मज्जातीयाः हरयो युगपत्सर्वत ईरते गच्छन्ति। प्रसुपः - प्रस्वपन्ति ते प्रसुपः स्थावरालोकास्तान्प्रति ईरते। कीदृशाः? ततं महान्तं तन्तुम्- 'प्रजाः वै तन्तुम्' इति श्रुतेः। प्रजां तद्धेतून् दारानित्यर्थः। परि परिमार्गितुं सर्गासः सृज्यन्त इति सर्गा निसृष्टाः स्वामिनेति शेषः। तेषां मध्ये मयैव त्वं दृष्टासीति वक्तुमशक्नुवन्नाह - नैन्द्रादिति। इन्द्रादृते इन्द्रानुग्रहं विना किञ्चन किमपि सत्त्वं धाम इन्द्रस्यैव गृहं सीतारूपं न पवते न शोधनायावगच्छति। रामानुग्रहात्त्वामहं दृष्टवानस्मीत्यर्थः ।। ८१।।

हिन्दीभाषानुवाद - जिस प्रकार सूर्य की किरणें एक साथ तीव्र गति से चलती हैं, उसी प्रकार (राम की सेना के) मेरे समान जातीय वानर भी शीघ्रतापूर्वक एक साथ सब जगह जाते हैं। इनकी सृष्टि महान तन्तु (श्रीराम की पत्नी) की खोज के लिए की गई है (और मैंने उन्हीं श्रीराम की कृपा से ही आपको देखा है) क्योंकि उनके अनुग्रह के विना सीता को कोई देख नहीं सकता।।८१।।

टिप्पणी-पूर्वोक्त सूक्त का यह छठाँ मन्त्र (९.६९.६) है।

सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो
वृषच्युता मदासो गातुमाशत।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽ-
स्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः।।८२।।

नेन्द्रादृत इत्युक्तं तदेव स्पष्टयति- सिन्धोरिवेति।। सिन्धोः नद्या प्रवणे निर्झरप्रपाते इव यथा प्रविष्टाः वृषच्युताः स्वातन्त्र्यलक्षणाद्धर्मात् च्युताः प्रवाहवशा भवन्ति एवमाशवः शीघ्रगामिनोऽपि वानराः निम्ने नीचे पातालमध्ये प्रविष्टाः सन्तः वृषाः मासेन सीताशुद्धिमानेष्याम इति स्वप्रतिज्ञात्मकः सेवाधर्मः ततः च्युताः प्रतिज्ञाया अकरणात् नरकं गता इव जाता इत्यर्थः। ते पुनर्मदासः सोमं राजानं स्तुतिभिर्मादयन्तः तत्प्रसादाद्गातुं पृथिवीम् आशत प्राप्तवन्तः। गातुं पदं पृथिवीनामसु पठितम् भाष्ये त्वन्यथा व्याख्यातम्। स्तुतिफलं प्रार्थ्यमानं तावद्दर्शयति- शमिति। हे सोम, नः अस्माकं सम्बन्धिनो रामस्य निवेशे गृहे दारेषु शं कल्याणं तिष्ठतु सर्वदास्त्वित्यर्थः। तथा नः द्विपदे मानुषे रामादिरूपे चतुष्पदे ऋक्षवानररूपे च शं तिष्ठतु, तथा अस्मे अस्माकं वाशाः सङ्ग्रामाः कृष्टयः शत्रुकर्षणं क्षमास्तिष्ठन्तु उपस्थिता भवन्तु। एवं प्रार्थनापूर्वकम् आ नः पवस्वेति तृचेन सोमाभिधं विष्णुं स्तुत्वा तत्प्रसादाद्विलान्निर्गत्य भूमिं प्राप्ता इत्यर्थः।। ८२।।

हिन्दीभाषानुवाद - नदी के प्रवाह में पड़े हुए के समान शीघ्रगामी वानर (सीता को खोजते हुए) पाताल लोक में प्रविष्ट होकर, 'महीने भर में सीता को खोज लेंगे' - इस सेवाधर्म से च्युत होकर मानो नरक में पहुँचे हुए की तरह हो गए। तब उन्होंने सोम की स्तुति की- "हे सोम! हमारे मैत्री में आए हुए श्रीराम के घर (अर्थात् पत्नी के सम्बन्ध) में कल्याण हो और हमारे मनुष्य (रामादिरूप) में और ऋक्षवानररूप में भी कल्याण हो। हमारे सङ्ग्राम में शत्रुओं का कर्षण (पराभव) हो।" (ऐसी स्तुति करने पर) वे वानर शीघ्र ही विवरमार्ग से पृथिवी पर आ गए।।८२।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र (६.६६.७) है।

शुचिः गुनानस्तन्वमरेप-
समव्ये हरिर्यधाविष्ट सानवि।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे
त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः।। ८३।।

ततो बिलान्निर्गत्यापि सीतायाः प्रवृत्तिमलभमानां पुनस्तमेव त्रिरस्मा इत्यादिभिरुत्तरस्य सूक्तस्य दशर्चस्य रेणुदृष्टस्य सप्तभिर्ऋग्भिः स्तुतवतामप्यस्माकं भयमागतमित्याहाष्टम्या- शुचिः पुनान इति।। एकवचनं जात्यभिप्रायम्, शुचिः स्वभावशुद्धोऽपि अरेपसं निष्पापमपि तन्वं तनुं शरीरं पुनानः उपवासैः शोधयन् हरिर्वानरः सानवि सानौ मेरुशिखरे अव्ये सङ्गमे निमित्ते नितराम् अधाविष्ट धावनं कृतवान्। प्रतिज्ञाभङ्गाद्भीतो वानरगणोऽनशनव्रतेन अभयस्थानं ब्रह्मलोकं गन्तुं त्वरावानभूदित्यर्थः। ततः सुकर्मभिः सुकृतवता सम्पातिना पक्षिणा, बहुत्वं पूजायाम्। त्रिधातु क्लीबत्वं छान्दसम्। वातपित्तकफात्मकं वानर शरीरं

मधु आत्मनो अन्नं क्रियते, वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवन्निर्देशः। अतिक्षीणानामेषां मध्ये यो यो मरिष्यति, तमहं भक्षयिष्यामीति मनस्यकरोदित्यर्थः। कीदृशस्त्रिधातुः जुष्टः मित्रादीनां प्रीत्यर्थं सम्यगेतैः सेवितस्तर्पितः। तथा हि- सुपक्वमाहारं भुञ्जानस्याऽपि देहवतोऽग्निस्तुष्यति, सुरसं भुञ्जानस्य रसनादेवता वरुणस्तुष्यति सुस्पर्शं वसनं वसानस्य त्वगृदेवता वायुस्तुष्यति। ईदृशानां देहानां भक्षणेनाहं शुद्धः पुष्टश्च भविष्यामिति सम्पातेराशयः।। ८३।।

हिन्दीभाषानुवाद - स्वभावशुद्ध और निष्पाप होने पर भी वे वानर (प्रतिज्ञाभङ्ग होने से खिन्न होकर अनशन द्वारा अभयस्थान ब्रह्मलोक जाने, अर्थात् देह त्यागने के लिए) मेरुशिखर की ओर दौड़ पड़े। तब (उन्हें इस दशा में देखकर) सम्पाति नामक गीधपक्षी ने मित्र (सूर्य = अग्नि जठराग्नि), वरुण और वायु को प्रसन्न करने के लिए इनके शरीर को अन्न अर्थात् आहार बनाने का निश्चय किया।। ८३।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र नवें मण्डल के सत्तरवें सूक्त का आठवाँ (मन्त्र) है। सीता का पता न लगने पर निराश वानरों ने प्रतिज्ञाभंग हो जाने के कारण (प्रतिज्ञा थी कि एकमास के अन्दर यदि सीता का पता नहीं लगा सके तो प्राण त्याग देंगे) अनशन करके प्राण त्यागने के लिए मेरु शिखर की ओर दौड़ लगाई। उन्हें देखकर वृद्ध गीध पक्षी सम्पाति अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने सोचा कि इनमें से क्षीण देह होकर जो-जो मरेगा, मैं उसका भक्षण करता जाऊँगा। इस प्रकार मैं इनेक शरीर का भक्षण करके क्रमशः जठराग्नि, वरुण और वायुदेव को प्रसन्न करूँगा और स्वयं भी पुष्ट होऊँगा।

टीकाकार ने 'हरिः' का अर्थ वानर करते हुए लिखा है कि जाति के अभिप्राय से एकवचन रखा गया है। पाणिनि व्याकरण के अनुसार जाति में एकवचन का प्रयोग स्वीकृत है- 'जातावेकवचनम्।' इसी प्रकार 'सुकर्मभिः' का अर्थ-'सुकृतवता सम्पातिना' करके लिखा है कि पूजा में यहाँ बहुत्व है। पाणिनि व्याकरण के अनुसार जिस व्यक्ति को आदर देना होता है उसके लिए बहुवचन का प्रयोग करते हैं-'पूजायां बहुवचनम्' यथा 'गुरवः समायान्ति।'

'त्रिधातु' का अर्थ तीन धातुओं - 'वात' कफ और पित्त से बना हुआ शरीर' किया गया है। वस्तुतः ये तीनों शरीर के स्थितिविधायक तत्त्व हैं।

'मधु' का अर्थ 'आत्मनो अन्नम्' करते हुए इसे आत्मा का अन्न अर्थात् आहार कहा गया है। मन्त्रार्थ करते हुए इस आहार से जहाँ एक ओर सम्पाति अपने शरीर को पुष्ट करने की बात कहता है वहीं तीन देवताओं के प्रसन्न होने की भी बात कहता है। टीकाकार के अनुसार, सुपक्व आहार करने से मित्र अर्थात् देहान्तरवर्ती अग्नि तुष्ट होता है; सुरस आहार करने वाले से जीभ का देवता वरुण तुष्ट होता है और सुखदस्पर्श वाला वस्त्र पहनने वाले से त्वचा का देवता वायु तुष्ट होता है।

पवस्व सोम वीतये
वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमाविश।
पुरा नो बाधाद्दुरितातिपारय क्षेत्रीवद्धि दिश आहाविपृच्छते।। ८४।।

तञ्च जिघत्सुमायान्तम् अभिप्रेक्ष्य पुनः सोमं स्तुवन्ति शेषेण ऋग्द्वयेन जीवनार्थम्- पवस्वेति।। हे सोम त्वं वृषा अभिमतफलवर्षुकः देववीतये देवानां पाता प्रयतस्व यतस्त्वम् इन्द्रस्य रामस्य हार्दि हृदयङ्गमं सोमधानं सोमो धीयतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या सोमयागाधिकारे मुख्यं निमित्तं स्त्रीरूपम् आविश प्रविश सोमेनाहं यक्ष्ये इति यथा सीता सङ्कल्पयति, यथा च सोमेन देवाः तृप्यन्ति, तथा रावणवधेन सीताप्रोत्साहनेन च सम्पादयेत्यर्थः। पुरा प्राक् नोऽस्माकं बाधात् अनेन पक्षिणा वधात् दुरिता दुरितानि दुर्मरणानि अतिपारय सङ्कटान्यतिक्रम्योत्तारय इत्युक्त्वा जटायुं स्तुवन्ति। हि प्रसिद्धः तीक्ष्णदृष्टिर्जटायुनामा गृध्रः क्षेत्रवित् सीतास्थानवित् विपृच्छते सीतायाः गतिं विशेषेण पृच्छते रामाय दिशः दिशं संज्ञया आह उक्तवान्। सः रामार्थं मृतोऽपि किञ्चिद्रामकार्यं कृतवान्। वयं तु व्यर्थमेव म्रियामह इत्यर्थः।। ८४।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे सोम, (आप) अभिभूत की वर्षा करने वाले हैं, देवताओं (वानररूप हमारी) रक्षा के लिए प्रवाहित होइए (आगे बढ़िए)। (प्रथमतः) राम के हृदय में सत्यसङ्कल्प के रूप में प्रवेश कीजिए (ताकि हमारी असफलता के कारण हमारे प्रति उनके अन्दर क्रोध न हो) फिर हमें इस पक्षी द्वारा ग्रास बनाये जाने की बाधा से पार उतारिये। राम के पूछने पर सीता का स्थान जानने वाले उस (धन्य पक्षी जटायु) ने वह दिशा बताई थी।। ८४।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह नवाँ मन्त्र (६.७०.६) है।

आत्मोसर्ग करने के लिए मेरुशिखर पर अनशन पर बैठे हुए वानरों का भक्षण करने के लिए जब सम्पाति बढ़ा तब वानरों ने इस सङ्कट से उबारने के लिए सोम की स्तुति की। तत्पश्चात् जटायु का बखान करने लगे।

हितो न सप्तिरभिवाज-
मर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमापवस्व।
नावा न सिन्धुमतिपर्षि विद्वा-
ञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः।। ८५।।

हितो नेति।। हे इन्द्रो, सोमाभिध श्रीविष्णो रामभद्र हितो हितकरो नेत्युपमार्थे यथा- सप्तिरश्वः वाजं सङ्ग्रामं गच्छति, तथा त्वं वाजम् अर्ष अभ्यर्ष अभिमुखं

गच्छ। ततो दारहरान् शत्रून् हत्वा दारैः सङ्गतः सन् इन्द्रस्य हविर्भोक्तुः स्वेनैव सोम रूपेण हविषा जठरम् उदरम् आपवस्व प्रविश। सोमयागान् कुर्वित्यर्थः। नावा नौकायानेन यथा सिन्धुं नदीं नाविका अतिपर्षि अतिपारयन्ति, एवं त्वम् अस्मान् सङ्कटानि अतिपर्षि अतिपारय। कीदृशो? विद्वान् अस्माकं चित्तं जानन् शूरो न युध्यन् शूर इव शत्रून् प्रहरन् नोऽस्माकं निदो निन्दकान् व्यर्थमेते वराकाः मृता इत्येवंवादिनो राक्षसान् अवस्पः अवाङ्मुखं जहि स्पृहि हिंसायाम्। 'बहुलं छन्दसि' इति श्नाप्रत्ययस्य लुक् तिपि गुणे हल्ङ्यादिना तिपो लोपः।। ८५।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे हितकारी राम, जैसे अश्व युद्धक्षेत्र की ओर जाता है वैसे ही आप भी सोमरूप से इन्द्र के उदर में प्रवेश कीजिए। जैसे नाव नदी से पार करती है, वैसे ही आप भी हमें इस सङ्कट से पार उतारिये। आप हमें अच्छी तरह जानते हैं, अतः वीर की तरह लड़ते हुए हमें निन्दक राक्षसों से बचाइए।।८५।।

टिप्पणी - यह पूर्वोक्त सूक्त का दसवाँ मन्त्र (६.७०.१०) है। इस मन्त्र में वानरों ने निन्दक राक्षसों से अपनी रक्षा हेतु श्रीराम का स्तवन किया है।

आदक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३ सदं
वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय
उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे।। ८६।।

तदेवं स्वामिभक्तान् वानरान् ज्ञात्वा सम्पातिरप्यनुजग्राहेत्याह - ऋषभो वैश्वामित्रा नवर्चेन सूक्तेन आदक्षिणेत्यादिना।। शुष्मी बलवान् हरिर्वानरः आ दक्षिणा दक्षिणदिगभिमुखम् आसृज्यते आज्ञाप्यते सीतान्वेषणार्थी त्वं दक्षिणस्यां दिशि लङ्कायां तस्या अन्वेषणं कुर्वित्याज्ञाप्यते, अर्थात् सूक्तान्ते दृष्टेन दिव्येन सुपर्णेनेति गम्यते। एवमाज्ञप्तमात्रो हरिः आसदम् आसीदन्त्यस्मिन्निति रामस्य गृहं सीतारूपं वेति प्राप्नोति। तत्प्राप्य जागृविः जागरूकः सन् द्रुहो द्रोग्धुः रक्षसो रावणात् पाति आत्मानमिति शेषः। स एव हरिः ओपशं सर्वस्य धारकं नभः अव्याकृतं मायामयं सीताख्यं पयः पयस्वत् प्रस्रवयुक्तं कृणुते करोति, वत्सं गौरिव सीता तमवेक्ष्य स्निग्धा भवतीत्यर्थः। कस्मै प्रयोजनाय - चम्वोः वानरराक्षससेनयोः उपस्तिरे उक्तलक्षणाय तत्पूर्वकाय चम्वोः सङ्ग्रामाग्नौ होमायेत्यर्थः। होमस्यापि प्रयोजनं ब्रह्मनिर्णिजे ब्रह्मणः ब्रह्माण्डस्य कण्टकोद्धरणेन शोधनाय, तेन कण्टका एव मृताः। वानरास्तु मृता अपि पुनरुत्थापिता इति ध्वनितम्।। ८६।।

हिन्दीभाषानुवाद - वे (वानर सम्पाति के द्वारा) दक्षिण दिशा में भेजे गए। तब बलवान् वानर (समुद्रलङ्घन-राक्षसहनन-समर्थ हनुमान्) ने (राम की) गृहिणी (सीता) को पा लिया।

'यह जागरूक वानर ही द्रोही राक्षस रावण से मेरी रक्षा करेगा' ऐसा समझने वाली सीता के (स्तनों में) वात्सल्य के कारण उसके लिए दूध उतर आया। ब्रह्माण्ड के कण्टकशोधन के लिए सङ्ग्रामरूपी अग्नि में उसकी सेना का होम करने के लिए भी यह वानर यत्न करेगा।

टिप्पणी- पूर्वोक्त मण्डल के एकहत्तरवें सूक्त का यह पहला मन्त्र (६.७१.१) है। स्वामी राम की भक्ति से भरे उन वानरों को जानकर और जटायु द्वारा राम की सहायता किये जाने की बात सुनकर सम्पाति ने उन्हें खाने का विचार छोड़कर सीता का पता बताया और निर्देश दिया कि सीता के अन्वेषण के लिए दक्षिण दिशा में लङ्का में जाओ। तब हनुमान् गए और उन्हें सीताजी मिल गईं। हनुमान् को राम का सेवक और शक्तिमान् जानकर सीता अपनी रक्षा के प्रति आश्वस्त हुईं और हनुमान् के प्रति उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा।

टीकाकार ने 'ब्रह्मनिर्णिजे' की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ब्रह्माण्ड के कण्टक रूप राक्षस मारे गये और वानरं मरने के पश्चात् भी जीवित हो गए यह ध्वनित होता है।

प्रकृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसूर्यं?
वर्णन्निरिणीते अस्यतम्।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृत-
मुपप्लुतं कृणुते निर्णिजं तना।। ८७।।

आसृष्टो हरिः कथं तां दिशं गतवानित्यत आह - प्रकृष्टहेवेति।। स आसृष्टो हरिः शूषः सीतायाः शोधकः कृष्टिहेव कृष्टयः कर्षकाः लोकानां पीडका राक्षसास्तान् हन्तीति तथा तेषां काल इव क्रूरः प्रैति प्रकर्षेण गच्छति रोरुवत् गर्जन् अस्य कर्षणकर्तुः रक्षोगणस्य वर्णं मुखच्छायाम् असूर्यम् अतिक्रूरं तं प्रसिद्धं निरिणीते निर्गमयति। प्रगतमात्रो रावणादीन् दीनान् करोति किं च वव्रिम् आवरणम् अल्पकायस्वरूपं जहाति त्यजति महदरूपं धारयतीत्यर्थः। तथा वायोः निष्कृतं निश्चितं कृतं वेगवत्त्वम् एति प्राप्नोति ततश्च उपप्रुतं सीतायाः समीपं गन्तुं प्रुतं प्लवनं कृणुते करोति निर्णिजं विशुद्धं यथा स्यात्तथा उपप्रतुं कृणुते तना विस्तारेण महता रूपेण।। ८७।।

हिन्दीभाषानुवाद - वह बलवान् वानर (सीता की खोज करता हुआ) लोकपीडक राक्षसों की हत्या करते हुए काल की तरह क्रूर (भाव से) बढ़ता चला गया। उसकी गर्जना से उन राक्षसों के मुख का रंग ही उड़ जाता था। उसने लघु रूप का त्याग कर दिया, पिता वायु के निश्चित योग से अति वेगवान् हो गया, पुनः ऊपर की ओर उड़कर शरीर का विस्तार कर लिया और सीता के पास पहुंचकर पुनः अपने विशुद्धभाव और आकार में आ गया।। ८७।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (६.७१.२) है। लङ्का में पहुँचे हनुमान् के वीरोचित और शत्रुत्रासद कार्यों का वर्णन किया गया है।

अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्यो-
र्वृषायते नभसा वेपते मती।
स मोदते नसते साधते गिरा
नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि।। ८८।।

अद्रिभिरिति।। स हरिः मध्येमार्गम् अद्रिभिः मैनाकपर्वतेन समुद्रमध्यादुद्गतेन सुतः प्रसुतो मयि विश्रमस्वेति आज्ञप्तः सन् तं गभस्त्योः बाहुभ्यां पठते गच्छति। हस्तस्पर्शमात्रेण तं सम्भावयति, न तु तस्य पृष्ठे तिष्ठतीत्यर्थः। यतः वृषायते वृषवद् बलं स्वीयं प्रकाशयति, अतएव नभसा आकाशेन वेपते सर्वत्र गच्छति। मती मेधावी पूर्वसवर्णः समती मत्या वा मोदते। अनेनाहं मानित इति हृष्टो भवति। अतएव गिरा नसते वाङ्मात्रेण तत्र संश्लिष्टो भवति साधते स्वकार्यं च साधयति, यतो यम्, अप्सु तीर्थरूपासु नेनिक्ते आत्मानं शोधयति, तथा परीमणि परितो मीयते इति परिमा देहो यज्ञभूर्वा तत्र यजते आत्मानमन्तर्यामिणं वा देवान् वा पूजयते। स्वसुकृतबलेनैव सर्वं साधयति न त्वन्यबलेनेति भावः।। ८८।।

हिन्दीभाषानुवाद - मैनाक पर्वत द्वारा विश्राम करने का आग्रह करने पर भी अपने दोनों हाथों से (स्पर्शमात्र करता हुआ) चला गया। वृषभ की तरह अपने बल का प्रकाशन करते हुए वह मेधावी आकाश में सर्वत्र जाता है। वह प्रसन्न होता है, वाणीमात्र से (उस पर्वत के साथ) सम्बन्ध स्थापित करता है। अपना कार्य सिद्ध करता है, जल (अथवा तीर्थों) में अपने को पवित्र करता है तथा अपने अन्तर्यामी देव का भजन करता है (पूजा करता है)।। ८८।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह तीसरा मन्त्र है (६.७१.३) है। इस मन्त्र में मैनाक द्वारा समुद्र लङ्घन करने वाले हनुमान् को समुद्रमार्ग में विश्राम के लिए कहा जाता है किन्तु हनुमान् विनयपूर्वक अस्वीकार करके, केवल हाथों से स्पर्श करके उनके इस अनुग्रह का सभाजन करते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।

मैनाक हिमालय का पुत्र है। जब इन्द्र उड़ने वाले पर्वतों के पंखकाट कर उन्हें पृथिवी पर अचल बना रहे थे तब मैनाक भाग कर समुद्र की शरण में चला गया था और वहीं छिप गया,. जिसके कारण इन्द्र उसे पा न सके। मैनाक ने जब हनुमान् को रामकार्य से समुद्र को लाँघते हुए देखा तो बीच समुद्र मार्ग हनुमान् को अपनी पीठ पर विश्राम करने की सलाह दी किन्तु हनुमान् को अपने स्वामी के कार्य में विलम्ब सह्य न था और अपने

बाहुबल पर भरोसा था। अतः वे विश्राम करने के लिए रुके नहीं और मैनाक का स्पर्श करते हुए आगे बढ़ गए।

परिद्युक्षं सहसः पर्वतावृधं
मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम्।
आयस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि
मूर्द्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः।। ८६।।

परीति।। सहसो वेगात् परिद्युक्षं परितः कात्स्र्न्येन दिवम् अन्तरिक्षं क्षिणोत्यल्पीकरोति तम्। कृत्स्नमप्यन्तरिक्षं हरेर्वेगस्य न पर्याप्तमित्यर्थः। अत एव पर्वतावृधं पर्वतं वर्धयन्तं मैनाकं पूर्वोक्तरीत्या मानयन्तं तं मध्वो मदकराः देवाः परिसिञ्चन्ति पुष्पवृष्ट्यादिना। कीदृशं तं हर्म्यस्य शत्रुपुरस्य सक्षणिम् अभिभावकं यस्मिन् हर्म्ये गावः सुहुतादः सुष्ठु हुतं दत्तमदंति ताः सम्यक् पालिताः, ऊधनि ऊधः प्रभवे क्षीरे अग्रियं श्रेष्ठं सोमं मूर्धनि उच्चस्थाने प्राप्त्ये निमित्ते सति वरीमभिः उरुतरैर्यज्ञादिभिर्हेतुभिः श्रीणन्ति मिश्रयन्ति यतोऽत्र सोमयागादयः प्रवर्तन्ते इत्यर्थः। तथा चोक्तम्-''अग्निहोत्रं च वेदाश्च राक्षसानां गृहे-गृहे इति।। ८६।।

हिन्दीभाषानुवाद - अपने वेग से अन्तरिक्ष को छोटा बना देने वाले, मैनाक पर्वत का समादर करने वाले, शत्रु महलों को पराभूत करने वाले वानर हनुमान् पर देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। राक्षसों के उन महलों में पाली गई गायें हविष्यान्नों को खाती हैं और स्तनों से निकले हुए दुग्धरूपी श्रेष्ठ सोम से विस्तृत यज्ञ-याग प्रवर्तित होते हैं।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह चौथा मन्त्र (६.७१.४) है। इस मन्त्र में हनुमान् द्वारा मैनाक का सभाजन, देवों द्वारा हनुमान् पर पुष्पवृष्टि और हनुमान् द्वारा राक्षसों के महलों को जलाने का वर्णन है। टीकाकार ने टिप्पणी करते हुए एक उद्धरण प्रस्तुत किया है- अग्निहोत्र और वेद राक्षसों के घर-घर में हैं।

समी रथं न भूरिजोरहेषत
दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं
पदं यदस्य मतुथा अजीजनन्।। ६०।।

हर्म्यस्य सक्षणिमित्येतद्विवृणोति-समीति।। ईमित्यन्तलोप इत्यादिना मकारस्य लोपः प्रकरणात्। स खेचरो हनुमान् अदितेः पृथिव्याः उपस्थे श्रेष्ठस्थाने आजिगात् आगतः सिन्धोः पारं प्राप्तः, तत्रापि गोः पृथिव्याः अपीच्यम् अत्यन्तरमणीयम् अस्य रक्षसः पदं स्थानं लङ्काख्यं यत् मतुथाः मननीयगाथाः स्तोतव्याः शिल्पिनो विश्वकर्मादयः अजीजनन्,

तत् उप उपेत्य व्रयति जरयति शिथिलं करोति, य ईं एतत्पदं रथं न रथयोजितमश्वमिव सं समेत्य अस्य भुरिजोर्बाह्वोर्दशस्वरोऽङ्गुलयः अहेषत हेषणं कृतवत्यः, यथाऽश्वोऽश्वमेत्य हेषते, एवम् अस्याङ्गुलयो लङ्काधिष्ठात्रीं देवतामेत्याहेषन्त उभयतश्चपेटिकाभ्यां तां ताडितवानिति भावः।। ६०।।

हिन्दीभाषानुवाद - आकाशचारी उस हनुमान् ने पृथिवी के श्रेष्ठस्थान समुद्र को पार करके, प्रशंसनीय विश्वकर्मा आदि शिल्पियों ने जिसे बनाया, उस पृथ्वी के रमणीयस्थान लङ्का में पहुँच कर उसे जला दिया और इस स्थान पर पहुँच कर उसकी अंगुलियाँ रथ में जोते गये और अश्व की भाँति हिनहिनाईं अर्थात् जैसे अश्व को देखकर अश्व हिनहिनाता है, वैसे ही हनुमान् की दसों अंगुलियाँ लङ्का की अधिष्ठात्री देवी को देखकर हिनहिनाईं (उसे दोनों ओर से चाँटे जड़ने लगी)।। ६०।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह पाँचवाँ मन्त्र (६.७१.५) है। इस मन्त्र में लङ्का में पहुँच कर हनुमान् द्वारा लङ्का को जलाने तथा लङ्किनी राक्षसी को चाँटों से मारने का वर्णन है।

श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं
हिरण्ययमासदं देव एषति।
एरिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो
न देवाँ अप्येति यज्ञियः।। ६१।।

श्येनो नेति।। यथा श्येनो योनिं कुलायं गगनमार्गेण एषति गच्छति एवं देवो महारुद्रः धिया कृतं ब्रह्मसङ्कल्पनिर्मितं सदनं श्रीरामदाररूपं गृहम् एषति। कीदृशं गृहं हिरण्ययम् आसदं हिरण्यं याति प्राप्नोति श्रीरामभद्रदत्तमभिज्ञानाङ्गुलीयकप्रापकं हनुमन्तम् आभिमुख्येन सीदत्युपविशतीत्यासदं यो यज्ञियोऽश्वो न अश्व इव देवान् प्रीणयन् अप्येति, ईम् एनं प्रियं देवानाम् आप्ततमं बर्हिषि यज्ञे निमित्ते यज्ञादिमार्गप्रवृत्त्यर्थं गिरा हेतुभूतया किञ्चिद्वक्तुमित्यर्थः। एरिणन्ति अभिमुखं प्रेरयन्ति, अभिज्ञानप्रदानेन विश्वस्तायां सीतायां हनुमान् वक्तुमारेभे इथ्यर्थः।। ६१।।

हिन्दीभाषानुवाद - जिस प्रकार श्येन (बाजपक्षी) गगनमार्ग से अपने घोसले में जाता है, उसी प्रकार वह देव (रुद्रावतार हनुमान्) स्वर्णमयी उस लङ्का में; जिसे रावण ने खूब सोच समझ कर अपना निवास (सदन) बनाया था; जहाँ सीता बैठी थी, उस स्थान पर पहुँचे। फिर यज्ञीय अश्व की तरह देवताओं को प्रसन्न करते हुए, अभिमुख बैठी हुई सीता से यज्ञमार्ग में प्रवृत्त करने वाली वाणी (संस्कृत) में (कुछ कहने के लिए) प्रेरित होकर बोले।। ६१ ।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह छठाँ मन्त्र (६.७१.६) है।

टीकाकार ने 'सदनं धियाकृतं हिरण्ययमासदं' का अर्थ जिस रूप में किया है, वह प्रसन्न अर्थ नहीं प्रतीत हुआ। मेरी दृष्टि में इसका अर्थ है- 'धियाकृतं हिरण्ययं सदनम् आसदम्' -"रावण द्वारा सोचविचार कर बनाया गया अपना स्वर्ण मयी लड्का रूप निवास स्थान, (उसमें भी) सीता का प्रवास-स्थल।

परा व्यक्तो अरुषो दिवः कवि-
र्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती
रेभो न पूर्वीरुषसो विराजति।। ६२।।

वचनमेवाह- परेति।। दिवो द्युलोकात् परा दूरे व्यक्तः अक्षयदत्तः- "परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते"-इति श्रुतेः। अरुषः शान्तः शुद्धेन रूपेण कविः क्रान्तदर्शी सर्वज्ञो मायाविरूपेण वृषा गृहस्थधर्मरूपः त्रिपृष्ठः त्रयो धर्मार्थकामाः यज्ञराज्यरतिरूपाः दारहरणात् पृष्ठे यस्य स त्रिपृष्ठः। गाः अभि भूप्रदेशान् अभिव्याप्य अनविष्टशब्दमकरोत्। त्वच्छोकेन सर्वा दिशः शून्याः पश्यन् हाहाशब्दं करोतीत्यर्थः। एतेन मधुमान् द्रप्सः परिवारमर्षतीति सीतया पृष्टं यत् रामो मयि प्रीतिमानस्ति इति तस्येदम् उत्तरम्। यत्पृष्टं रावणं सपरिवारं दग्धुमेष्यति तस्योत्तरमाह - सहस्रेति। स इदानीं यतिः त्वत्प्राप्त्यर्थं यतमानः सहस्राणीतिः सहस्राणि अनन्तानि शूराणां नयतीति, तथा-परायतिः शत्रून् पराकर्तुं यतमानः रेभो न शब्दं कुर्वाणो महोक्ष इव पूर्वीरुषस आरभ्य अस्माकं त्वद्वियोगकालमारभ्य सम्प्रति विराजते दीप्यते। बह्वीं सेनामादाय शत्रूनुन्मूलयितुं क्षमते इत्यर्थः।। ६२।।

हिन्दीभाषानुवाद - द्युलोक से परे, व्यक्त, शान्त, क्रान्तदर्शी, धर्मार्थकाम का सेवन करने वाले श्रीराम, पत्नी-हरण के कारण शोक से पृथिवी पर भ्रमण करते हुए विलाप कर रहे हैं इस समय आपको प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील, शत्रुओं को पराजित करने के लिए, आपके वियोगकाल से ही वृषभ की तरह शब्द करते हुए वे हजारों वीर योद्धाओं को लेकर आ रहे है।। ६२।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र (६.७१.७) है। इस मन्त्र में हनुमान् राम की दशा का वर्णन करते हुए, सीता को सान्त्वना दे रहे हैं कि श्रीराम आपको पाने के लिए और शत्रुसंहार के लिए वीर योद्धाओं के साथ आ रहे हैं।

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य
स यत्राशयत्समिता सेधति स्रिधः।
अप्सायाति स्वधया दैव्यं जनं
सं सुष्टुती नसते सङ्गो अग्रया।। ६३।।

त्वेषमिति।। अस्य रामरूपस्य सोमस्य वर्णः क्षत्रियः तेन तत्स्वभावः –'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं' इत्यादिः त्वेषं दीप्तं रूपमात्मनः कृणुते कुरुते, सः यत्र यस्यां समिता समितौ सङ्ग्रामे स्रिधः शोधकान् शत्रून् सेधति निशेधति, तत्र तान् अशयत् शयनमकारयत् अस्मात् कश्चिदपि शत्रुर्जीवन्न मुच्यते इत्यर्थः। तेनाऽवश्यमसौ रावणं सपरिवारं मारयिष्यत्येवेत्युक्तम्। स्वधया पितृकार्येण निमित्तेन दैव्यं जनं देवताकार्यनिमित्तं च अप्साः अपां सनिता विभाजकः सन् याति अनुसरित। सर्वं दैवपितृकार्यमद्भिरेव कुर्वन् स्वयमपि त्वल्लाभार्थमब्भक्षव्रतोऽस्तीत्यर्थः। तथा सुष्टती शोभनया स्तुत्या संनसते देवैः पितृभिश्च सह सङ्गतो भवति, स्तुतिमात्रेण तेषामातिथ्यं करोतीत्यर्थः। कीदृश्या सुष्टुत्या सङ्गे अग्रेयेति-समीचीना गौर्वाणी सुरसंस्कारादिमती अग्रे पुरोवर्तिनी प्रधानभूता यस्यां सा तयेत्यर्थः। सुरसशब्दगुम्फितया स्तुत्येत्यर्थः।। ६३।।

हिन्दीभाषानुवाद – इन (राम) का क्षत्रिय वर्ण ही स्वभावतः इनको तेजोदीप्त करता है। वे जिस सङ्ग्राम में शत्रु का प्रतिरोध करते हैं, उसे धराशायी कर देते हैं। (ऐसे श्रीराम) जल मात्र से देवों और पितरों का (तर्पण आदि) कार्य करते हुए तथा श्रेष्ठ और समीचीन वाणी से प्रयुक्त सुन्दर स्तुतियों द्वारा उनका सत्कार करते हुए आगे बढ़ रहे हैं।

टिप्पणी – पूर्वोक्त सूक्त का यह आठवाँ मन्त्र (६.७१.८) है। इस मन्त्र में हनुमान् सीता के सम्मुख राम के तेज और शौर्य का वर्णन करते हैं तथा उनके पयोव्रती होने के कारण उनकी शारीरिक कृशता का भी वर्णन करते हैं। मन्त्र में वर्णित है कि राम देवों और पितरों को जल और स्तुति-यही अर्पित कर रहे हैं। इससे टीकाकार ने अभिप्राय व्यक्त किया है कि वे स्वयं भी केवल जल ग्रहण कर रहे हैं।

उक्षेव यूथा परियन्नरावी-
दधि त्विषीरधित सूर्यस्य।
दिव्यः सुपर्णो वचक्षत क्ष्मां
सोमः परिक्रतुना पश्यते जाः।। ६४।।

केनत्वं दक्षिणां दिशं प्रति गन्तुं विसृष्ट इति प्रष्टुमिच्छन्तीं सीताम् आलक्ष्य स्वयमेवाह-उक्षेवेति।। यथा उक्षा रेतः सेचनकामः यूथा गोयूथानि परियन् परिक्रामन् एति, एवं दिव्यः सुपर्णः सम्पातिनामा पक्षी वानरयूथानि परिक्रामन् वचनामृत-सेचनकामोऽरावीत्-इमं शब्दं कृतवान्। कोऽसौ यः सूर्यस्य त्विषीः दीप्तीः अधि अधिकम् अधित धृतवान्। सम्पातिजटायू पक्षिणौ अरुणपुत्रौ सूर्यं स्प्रष्टुं प्रस्थितौ। तयोः सूर्यदीप्त्या दह्यमानयोर्मध्ये सम्पातिः स्वपक्षाभ्यां जटायुमाच्छादयत् अधिको दग्धोऽभूदित्युपाख्याने। यः सुपर्णः क्ष्मां पृथ्वीं कृत्स्नाम् अवचक्षत उपरिभूत्वा अधः पश्यति, स एव क्रतुना उपासनया सोमः सोमभावं गतः। स च तस्य जाः जायां सीतां

परिपश्यते दिव्यदृष्ट्या त्वां दृष्ट्वाऽमुष्मिन् स्थले सीताऽस्तीत्यस्मान् प्रयुक्तवानित्यर्थः। एतेन यदुक्तम्-'नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन' इति तस्याऽयमुपसंहारः। सोमः परिक्रतुना पश्यते जा इति।। ६४।।

हिन्दीभाषानुवाद – सम्पाति नामक एक दिव्य पक्षी घूमता हुआ हमारे वानरयूथ के पास उसी तरह आया जैसे कोई वृषभ गोयूथ के पास जाता है। सूर्य के तेज से जले हुए पंखों वाले तथा ऊपर से ही पृथिवी पर सर्वत्र देखने वाले, उपासना से सोम (अर्थात् ब्रह्म) भाव को प्राप्त सम्पाति ने अमृतवचनों से सींचते हुए, राम की जाया-आपको देखकर हमें बताया।। ६४।।

टिप्पणी- पूर्वोक्त सूक्त का यह नवाँ मन्त्र (६.७१.६) है। मन्त्र की व्याख्या करने से पूर्व टीकाकार ने उसकी प्रस्तावना में कहा है कि हनुमान् ने जब यह जान लिया कि सीता पूछना चाहती है कि तुम्हें दक्षिण दिशा की ओर आने के लिए किसने प्रेरित किया, तब हनुमान् (सीता के पूछने से पूर्व ही) यह (मन्त्रार्थ) बोल पड़े।

इस मन्त्र में सम्पाति और जटायु का एक उपाख्यान संकेतित है जिसे टीकाकार ने स्पष्ट करते हुए लिखा कि युवावस्था में सम्पाति और जटायु सूर्य को छूने के लिए उड़े। सूर्य के समीप जाने पर जब ताप असह्य हो गया तब जटायु को झुलसने से बचाने के लिए सम्पाति ने उसे अपने दोनों पंखों से ढँक लिया। इस प्रकार जटायु तो बच गए किन्तु सम्पाति के पंख झुलस गए। अन्यत्र इस घटना का उल्लेख प्रकारान्तर से प्राप्त होता है कि जटायु पहले ही लौट आए और सम्पाति हठवश और आगे बढ़ गए तथा सूर्य के ताप से झुलस कर पृथिवी पर गिर पड़े।

अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।। ६५।।

एवं रामानुग्रहमात्मनि श्रुत्वा सीता हनुमन्तं स्वस्य दुःखमिष्टञ्च निवेदयति- अवीरामिवेति द्वाभ्याम्।। अयं शरारुर्मुमूर्षुः रावणः माम् अवीरामिव वीररहितामिव अभिमन्यते हिनस्ति राक्षसी-द्वारा तर्जयति, उत परन्तु अहं वीरिणी वीरवती अस्मि इन्द्रपत्नी परमेश्वरस्य सहचारिणी मरुद्वायुस्तत्पुत्रः त्वं च सखा यस्याः सा मरुत्सखाऽस्मि। विश्वस्मात् त्रैलोक्यादिन्द्र उत्तरः उत्कृष्टतरः, अत एवं वीरवतीं मां धर्षयन् अयं मरिष्यत्सेतेत्यर्थः।। ६५।।

हिन्दीभाषानुवाद-यह मुमूर्षु (मरने के कगार पर पहुँचा) रावण मुझे असहाय (वीररहित) समझ कर राक्षसियों द्वारा धमकाता है। किन्तु मैं तो वीर-पत्नी हूँ, परमेश्वर की सहचारिणी हूँ, वायुपुत्र हनुमान् मेरे सखा हैं और मेरे पति-परमेश्वर सर्वलोकोत्तर (सबसे बढ़कर) हैं।। ६५।।

टिप्पणी - यह मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के छियासीवें सूक्त का नवाँ (मन्त्र) है। इसमें सीता हनुमान् को आप बीती सुनाकर अपना धैर्य बतलाती हैं।

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वावगच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।। ६६।।

संहोत्रामिति।। होत्रम् अग्निहोत्रादिकं समनं, 'यान्येव सङ्ग्रामनामानि तानि यज्ञनामानि' इत्युक्तेर्यज्ञं वा या नारी पुरा अवगच्छति सा ऋतस्य कर्मणो यज्ञादेः वेधाः स्रष्टा वीरिणी वीरयुक्ता च भूत्वा इन्द्रपत्नी यथा महीयते होत्रादिना तथा पुनरिन्द्रः करोत्विति शेषः। पक्षे, यज्ञविवेकाभ्याम् अग्निजटायुभ्यां संरक्षितां श्रद्धां मां बोध। राम एव नेतुं समर्थ इति भावः। मरुत्प्राणः सूत्रात्मा।। ६६।।

हिन्दीभाषानुवाद - जो स्त्री पहले से ही अग्निहोत्रादि को सम्यग् जानती है, वह यज्ञादिकर्त्री होने से वीर युक्त होकर परमेश्वर की पत्नी (सहचारिणी) के रूप में महनीय (पूज्य) होती है (क्योंकि) परमेश्वर तो लोकोत्तर हैं।। ६६।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दसवाँ मन्त्र (१०.८६.१०) है। अर्थ की दृष्टि से यह पूर्वोक्त मन्त्र का अनुवर्ती ही है।

इदं त एकं पर ऊं त एकं
तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व।
संवेशने तन्व ? श्चारुरेधि
प्रियो देवानां परमे जनित्रे।।६७।।

एवं सीतयोक्तो हनूमान् सीतामाह - इदमिति - भोः सीते त्वं द्विदलस्य दाम्पत्यस्य इदं त्वद्रूपमेकं दलम्, पर ऊं तारकं पुरस्ताच्च समुद्रस्य पारेतवैकं दलं रामरूपमस्ति। अतस्तृतीयेन मया ज्योतिषा प्रभवता सहायेन संविशस्व मिथुनीभव। अहं त्वां प्रापयिष्यामीत्यर्थः। संवेशने संयोगे तन्वः शरीरार्धस्य चारुः शोभनो देवानां प्रियो यज्ञार्हस्ते भर्ताऽस्ति, त्वं च जनित्रे प्रजोत्पत्यै स्वगृहे एधि स्थिरा भव। पक्षे, निष्कामभक्तिरेव श्रद्धां बोधोन्मुखीकर्तुमर्हेति भावः।। ६७।।

हिन्दीभाषानुवाद - तुम्हारा एक यह है और तुम्हारा एक दूसरा वह है (अर्थात् हे सीते! द्विदल रूप तुम्हारे दाम्पत्य का एक दल तुम यहाँ हो और दूसरा दल (राम) समुद्र के उस पार हैं। मुझ तीसरे की सहायता से उस परमज्योतिर्मय रूप (ब्रह्मरूप राम) से मिल जाओ (अर्थात् मैं तुम्हें राम से अवश्य मिलाऊँगा) तुम्हारे मिलन में शरीर की शोभा से युक्त वे श्रीराम देवों के प्रिय हैं और तुम (दाम्पत्य के) चरमोद्देश्य रूप सन्तान की उत्पत्ति में स्थिर रहो।। ६७।।

टिप्पणी - यह मन्त्र दसवें मण्डल के छप्पनवें सूक्त का पहला मन्त्र है। इस मन्त्र का अर्थ खींचतान कर रामकथापरक किया गया है और अन्तिम वाक्य तो सर्वथा असङ्गत प्रतीत होता है।

तनूष्टे वाजिन् तन्वं ? नयन्ती
वाममस्मभ्यं धातुशर्म तुभ्यम्।
अह्नुतो महो धरुणाय देवान्
दिवीवज्योतिः स्वमामिमीयाः।।६८।।

एवमुक्ता सीता हनुमन्तमाह - तनूष्ट इति।। हे वाजिन् वेगवान् वानर, ते तव तनूः अङ्गानि प्रतितन्वं स्वशरीरं नयन्ती प्रापयन्ती चेत् स्याम्, तर्हि तुभ्यं धातुवच्छरीरेण स्वशरीरं सन्धानम् अस्मभ्यं शीघ्रं रामदर्शनकारित्वेन शर्मप्रदमपि वामं कुटिलं राजभार्यापि परपुरुषस्पर्शं प्राप्तवतीत्यकीर्तिकरमित्यर्थः। रावण-स्पर्शस्त्वनिच्छन्त्या जात इति न तत्र मम दोष इति भावः। अतोऽह्नुतः परैरनभिभूतः महो महान् रामः देवान् देवकार्यं कृत्वा मां परीत्य स्वीकरोत्वित्यर्थः। नियाः आमी इति मध्यमो व्यत्ययेन वा।। ६८।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे वेगवान् वानर, तुम्हारे शरीर पर अपना शरीर ले जाती हुई (अर्थात् तुम्हारे कन्धे पर चढ़कर-बैठकर जाती हुई) शीघ्र ही राम के दर्शन कराने से तुम्हारे शरीर का तो कल्याण होगा किन्तु मेरे लिए यह अशोभनीय (निन्द्य कर्म) होगा। अतः पराभूत न होने वाले वे महान् श्रीराम देवताओं का कार्य करके (रावणादि का वध करके) द्युलोक की ज्योति की तरह मुझे स्वीकार करेंगे।। ६८।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (१०.५६.२) है। इस मन्त्र की संस्कृत टीका अस्पष्ट और अधूरी है। मन्त्र के उत्तरार्ध के कई पदों का स्पर्श भी संस्कृत टीका में नहीं किया गया है।

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचै-
र्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै।
उदस्तम्ना पृथिवीं द्यामभीके
भ्रातुः पुत्रान् मघवन् तित्विषाणः।। ६६।।

एवं चेत् किञ्चिद्विश्वासकरमभिज्ञानं रामाया ब्रूहीत्युक्ता सीता हनुमन्तमाह-दूरे तदिति।। तद् बुद्धिस्थं गुह्यं दूरे बहुकालिकं पराचैर्दूरदेशीयैर्नाम निश्चितं बुद्धयस्वेति शेषः। यत् यन्निमित्तं भीते द्यावापृथिव्यौ त्वा त्वां वयोधै वयसो मम पीडाकरस्य पक्षिणो विग्रहस्तस्मै तदर्थं आह्वयेताम् एनां काकेभ्यस्त्राहीत्याहूतवत्यौ तदा पृथिवीं द्यां च

उदस्तभ्नां स्तब्धीकृतवानसि। अभिके कामुके पक्षिणि निमित्तभूते सति हे मघवन् लक्ष्मीपते भ्रातः पुत्रान् विष्णोस्तव भ्राता इन्द्रः तत्पुत्रान् काकरूपान् बहुत्वमार्षं, तित्त्विषाणः इषीकया दीपयन् त्वदस्त्रदापितं काकं कृत्स्ने द्यावापृथिव्यावपि त्रातुं न शक्ते अभूतामित्यर्थः। काकतुल्यं रावणं हत्वा मां नयेति भावः। पक्षे, कर्मैव श्रेयो न बोध इति विपर्ययो बोधभ्राता तज्जः संशयः काकः बोधप्रियां श्रद्धां कदर्थयन् बोधेन त्रैलोक्यादपनीत इति भावः। मघवन् लक्ष्मीपते विद्यापते।। ६६।।

हिन्दीभाषानुवाद - बहुत समय तक बहुत दूर रहने वाली मुझ (सीता का) नाम वे याद करें- (इसके लिए एक अभिज्ञान-वचन दे रही हूँ) - हे मघवन् (श्रीराम)! उस नीच पक्षी से डरने पर जो मैंने तुम्हें पुकारा तो तुमने अपने भाई के कामुक पुत्र (इन्द्रपुत्र जयन्त जो काकरूप धारण करके आया था) को (सींक के वाण से) जलाते हुए उसके लिए द्यावापृथिवी को स्तब्ध कर दिया था (अर्थात् उसके पीछे सींक का बाण छोड़ दिया था जिसके तापत्रास से व्याकुल होकर सभी लोकों में भागता फिरा और उसे कहीं शरण नहीं मिली)।। ६६।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र दसवें मण्डल के पचपनवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। इस मन्त्र में हनुमान् के आग्रह पर सीता ने राम के लिए अभिज्ञान वचन कहा है। विष्णु इन्द्र के छोटे भाई (उपेन्द्र) हैं- ऐसी पौराणिक प्रसिद्धि है। जयन्त, इन्द्र का पुत्र है अतः विष्णु के सम्बन्ध से वह (राम के) भाई का पुत्र है। जयन्त ने राम के प्रभाव को न जानते हुए सीता को (वनवास की अवधि में कभी) चोंच से मारने की कामुक चेष्टा की थी। कौवे के प्रहार से भयाक्रान्त सीता के आर्तस्वर से राम को काकरूप जयन्त की इस धृष्टता पर क्रोध हो आया और उन्होंने सींक का एक बाण जयन्त पर छोड़ दिया। उस बाण से अपनी रक्षा के लिए काकरूप जयन्त तीनों लोकों में भागता फिरा किन्तु किसी ने उसे शरण न दी। तब अन्ततः वह राम की ही शरण में आया। चूँकि राम का बाण अमोघ है, अतः दण्डस्वरूप उसकी एक आँख उस बाण ने लेकर उसके प्राण छोड़ दिये। रामकथा के प्रसङ्ग में यह जयन्तोपाख्यान प्रसिद्ध हैं जयन्त की इस कुचेष्टा को केवल सीता और राम ही जानते थे, अतः यह गुप्तवचन अभिज्ञान रूप है।

देवास आयन् परशूँरबिभ्रन्-
वाना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्।
निसुद्र्वं दधतो वक्षणासु
यत्रा कृपीटमनुतद्दहन्ति।। १००।।

देवास आयन्निति।। देवास आयन्नित्येकस्मिन् बहुवचनं बहुत्वभ्रमात्, देवाः आयन् आगताः पर एवं सीतासन्देशं प्राप्य प्रस्थातुं हनुमान् शत्रुसम्पदं बबाधे तदावेदयन्ति

राक्षसा रावणं प्रति। शून् अस्मदीयानेव अबिभ्रन् धृतवन्तः विड्भिर्जनसन्तानरूपाभिः प्रजाभिः सह वाना वनानि वृश्चन्तः छिन्दन्तः अभ्यायन् सुद्रु सुष्ठु द्रवतीति तं शीघ्रगम् अग्निं सेतुनिबद्धं तडागजलं वा वक्षणासु गृहैकदेशविशेषेषु सेतुभङ्गेन नदीषु वा निदधतः सन्तः, यत्र कूपीटं वाप्यादौ जलमस्ति, तदपि अनुदहन्ति काष्ठादिकं दहन्तस्तदूष्मणा वाप्यादीन्यपि शोषयन्तीति भावः। कूपीटमग्नियोनिः काष्ठादिकं वा कूपीटजत्वात् तदनु अन्यदपि वज्रपाषाणादिकं दहन्तीत्यर्थः। पक्षे, कामस्य नगरं विषया, भोगः आरामः तज्जो हर्षः पुत्रः, तां विष्णुभक्तिं शमदमवैराग्यगर्भितत्त्वादनेकरूपाम् उच्छिनत्तीत्यर्थः ।। १००।।

हिन्दीभाषानुवाद - (इस प्रकार सीता से अभिज्ञान वचन प्राप्त करके लङ्का से जाने के पूर्व हनुमान् ने लङ्का में वनोपवन विध्वंस तथा दहन आदि कार्य किये। उन कार्यों को राक्षस रावण से कह रहे हैं-) एक देव (वानर) आया है और वह हमारी सन्तानरूप प्रजाओं के साथ ही वनों का उच्छेदन करता हुआ विचरण कर रहा है। शीघ्र फैलाने वाली अग्नि से गृहादि जलाने के साथ-साथ तडाग वापी आदि के जल को भी (जलाकर) सुखा दे रहा है और उसके पीछे लगी आग से अन्य भी काष्ठादि वस्तुयें जला रहा है।। १००।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र दसवें मण्डल के अट्ठाइसवें सूक्त का आठवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में हनुमान् द्वारा वनविध्वंस और लङ्का-दहन किए जाने का वर्णन है। मन्त्र की संस्कृत टीका आरम्भ में भ्रमात्मक है। टीकाकार का कथन है- 'देवास आयन्त्येकस्मिन् बहुवचनं बहुत्वभ्रमात्'; किन्तु कहीं भी (मन्त्र के वर्णन में) बहुत्व का भ्रम नहीं है। रामकथा के इस प्रसङ्ग में सर्वत्र राक्षसगण एक ही हनुमान् को देखते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में इस प्रसङ्ग के आरम्भ में लिखा है- "नाथ एक आवा कपि भारी। तेहि असोक बाटिका उजारी।।"

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात्।
बृहन्तं चिदृहते रधयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः।।१०१।।

एवं श्रुत्वा रावणः शोचति- शशः क्षुरमिति।। यथा शशः पशुः क्षुरं तीक्ष्णधारं लोहं प्रत्यञ्चं अभिमुखधारं जगार निगीर्णवान् अन्तःकृन्तन्नेव प्रविशति, एवं सीतां स्ववधार्थमानीतवानित्यर्थः। अद्रिं शैलं लोगेन लाति आदत्ते उद्गिरतीति लोगो लोष्टस्तेन आराद्दूरात् आगत्य व्यभेदं भेदितवानस्मि, वृहन्तं महान्तं आत्मानं चित् निश्चितं ऋहते क्षुद्राय सुखाय रन्धयानि पीडयानि यथा वयत् गच्छन् वत्सः वृषभं महोक्षं शूशुवान् वर्धमानः आधिक्यं दर्शयन्।। १०१।।

हिन्दीभाषानुवाद - (राक्षसों से ऐसा सुनकर रावण शोक करता है) जैसे कोई पशु छुरे को धार की ओर से निगल लेता है, ढेलवाँस से दूर से पर्वत को फोड़ता है, वैसे ही

मैं अपनी महान् आत्मा को क्षुद्र सुख के लिए पीड़ित कर रहा हूँ जैसे कि बढ़ता हुआ बछड़ा विशाल वृषभ को देखकर पीड़ित होता है।। १०१।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह नौवा मन्त्र (१०.२८.६) है। राक्षसों ने आकर जब हनुमान् द्वारा किये जा रहे उपद्रव और उत्पीड़न की सूचना रावण को दी तब रावण शोक करने लगा। उसका यह मानना था कि लङ्का में सीता को लाकर मैंने स्वयं अपने विनाश का आयोजन किया है। यह मेरा आत्मघाती आचरण वैसा ही है जैसे कोई पशु (अविवेकी) धार की ओर से छुरा निगल जाय। छुरा अन्तःकर्तन करता हुआ अन्दर जायेगा। जैसे कोई दूर से ढेलवाँस से पर्वत को भेदना चाहता है किन्तु पर्वत से टकरा कर वह ढेला (पत्थर का टुकड़ा) वापस आकर ढेलवाँस चलाने वाले को ही आहत कर देता है। जैसे (बिगड़ैल) साँड़ को देखकर छोटा बछड़ा भयभीत हो जाता है, वैसे ही लङ्का की ओर आते हुए राम को सुनकर (अथवा उपद्रवकारी हनुमान् की बात जानकर) रावण भी भयभीत हो गया है।

मन्त्र में प्रयुक्त 'लोगेन' की व्युत्पत्ति संस्कृत टीका में जिस प्रकार दी हुई है (लाति आदत्ते उद्गिरतीति लोगो लोष्टस्तेन) उससे गाँवों में चिड़ियों को उड़ाने मारने के लिए प्रयुक्त 'ढेलवाँस' या 'फटकेना' का बोध होता है। 'ढेलवाँस', सुतली या पतली रस्सी द्वारा बनाई जाती है। बीच में थोड़ी चौड़ी जालीदार बुनावट करके उसके दोनों ओर समान लम्बाई की रस्सी के छोर होते हैं। दोनों छोरों को मिलाकर पकड़ते हैं तथा बीच की उस चौड़ी बुनावट में पत्थर आदि का टुकड़ा (ढेला) रखकर दोनों छोरों को अंगुली में फंसाकर पहले वृत्ताकार घुमाते हैं और जब खूब वेग से ढेलवाँस घूमने लगती है तब लक्ष्य साधकर उसका एक छोर छोड़ देते हैं। वह ढेला, ढेलवाँस से निकलकर तीव्र गति से लक्ष्य की ओर जाता है। इसी तरह दो फाँक की लकड़ी में लचीली वस्तु (रबर या ट्यूब का टुकड़ा) बाँधकर उसके बीचोबीच पत्थर का छोटा टुकड़ा (गिट्टी) या सिटकी आदि रखकर उस लचीली वस्तु को तानकर लक्ष्य की ओर सिटकी या गिट्टी फेंकते हैं। इसे 'फटकेना'. कहते हैं। ढेलवाँस और फटकेना को 'गुलेल' भी कहा जाता है।

सुपर्ण इत्था नखमासिषायाऽ
वरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्
गोधा तस्मा अयथंकर्षदेतत्।। १०२।।

एवं श्रुत्वा विचिन्त्यापि रावणो हनुमन्तं बबन्धेत्याह - सुपर्ण इति।। सुपर्णः पक्षिवत्खेचरो रावणः इत्था एवं व्यालग्राहिवत्, नखं न खिद्यते छेदनभेदनादिनेति नखं हनुमन्तम् आसिषाय ब्रह्मपाशैराबबन्ध, स चावरुद्धो बद्धोऽपि परिपदं न सिंहः

सिंह इव स्वतन्त्रः परितो गच्छत्येव तथा तर्ष्यावान् तृषाक्रान्तो जलाशयाभिमुखो महिषो महानारण्यकः चित् इव निरुद्धोऽपि रोधकान् कर्षत्। एवमेतत् तस्मै हनुमते अयथं असदृशं गोधा परिवेष्टनं पाशैर्बन्धनं, गुध परिवेष्टने पंचाद्यचि टापू, दुर्बलैर्निरुद्धस्तानेव कर्षन् यथेष्टं सञ्चरतीति भावः।। १०२।।

हिन्दीभाषानुवाद – पक्षी की तरह आकाशचारी रावण ने हनुमान् को ब्रह्मपाश से बाँध लिया। इस प्रकार बाँधे जाने पर भी हनुमान् सिंह की तरह (स्वतन्त्र रूप से) विचरण करते रहे। हनुमान् को पाश से बाँधना अनुचित था और इसीलिए वे बाँधे जाने पर भी बाँधने वालों को उसी तरह खींचते रहे जैसे जंगली भैंसा प्यासा होकर जलाशय की तरफ जाते हुए सारे अवरोधों को असमर्थ बना देता है।। १०२।।

टिप्पणी – पूर्वोक्त सूक्त का यह दसवाँ मन्त्र है। इसमें रावण द्वारा हनुमान् को बाँधने का वर्णन है।

मन्त्र में आए हुए पद 'सुपर्ण' का अर्थ, टीकाकार नें रावण किया है। अर्थसङ्गति के लिए 'पक्षिवत्खेचरो रावणः' लिखा है। इसी प्रकार टीकाकार ने मन्त्र में प्रयुक्त 'नखम्' का अर्थ 'हनुमन्तम्' (नख=हनुमान्) किया है और व्युत्पत्ति दी है-'न खिद्यते छेदनभेदनादिनेति नखं हनुमन्तम्।'

अक्षानहो नह्यत नोत सोम्या
इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टाबन्धुरं वहताभितो रथं
येन देवासो अनयन्नभि सप्रियम्।। १०३।।

स एवं ब्रह्मपाशैर्बद्धोऽपि तान् यदा न गणयति तदैनं देवाः प्रार्थयन्ते ब्रह्मपाशानामपमानो मा भूदित्येतदर्थम्–अक्षानह इति।। भोः सौम्याः विष्णुभक्ताः अक्षानहः अक्षं रावणपुत्रं मृत्युपाशैर्बध्नन्तो यूयं नह्यत न आत्मानमपि बध्नीत, रशनाः ब्रह्मपाशान् इष्कृणध्वं स्वीकुरुध्वम् आ उत पश्चात् पिंशत विभजत स्वीकृत्य खण्डयत अष्टाबन्धुरं जानुद्वयकूर्परद्वयस्कन्धद्वयजङ्घाद्वयेषु बन्धनवन्तं रथं देहम् अभितो नगरे वहत प्रापयत ये न देवासो देवाः अभिप्रियं स्वेष्टम् अनयन् प्राप्नुवन् पुरे सञ्चरता कृत्स्नेऽस्मिन् दग्धे देवाः सुखं प्राप्स्यन्तीत्यर्थः। पक्षे, अक्षानहः इन्द्रियजयिनः अमितः कर्मोपासनामार्गयोः विधिनिषेधपाशानङ्गीकृत्य विषयान् भोगांश्चोत्साद्य लब्धपरोक्षबोधाः अशनादीनि प्राणादिषु प्रक्षिप्य आत्मानममसङ्गं भावयतेत्यर्थः।। १०३।।

हिन्दीभाषानुवाद – हे सौम्य, रावणपुत्र अक्ष को मृत्युपाश से बाँधते हुए तुमने अपने को नहीं बाँधा (किन्तु अब इस) ब्रह्मपाश (से बन्धन) को स्वीकार कर लो, बाद में भले ही

इसे तोड़ देना। आठ जगह से बंधे हुए अपने शरीर को नगर में ले चलो ताकि देवगण अपना प्रिय कार्य पा सकें।। १०३।।

टिप्पणी - यह मन्त्र दसवें मण्डल के तिरपनवें सूक्त का सातवाँ (मन्त्र) है।

टीकाकार के अनुसार देवगण हनुमान् से ब्रह्मपाश में बँध जाने के लिए प्रार्थना करते हैं ताकि ब्रह्मपाश का अनादर न हो। ब्रह्मपाश में बँधकर नगर में पहुँच जाने पर ही हनुमान् लङ्कादहन रूप देवों का प्रिय कार्य कर सकेंगे।

रक्षोहणं वाजिनमाजिघर्मि
मि प्रथिष्ठमुपयामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः
स नो दिवा सरिषः पातु नक्तम्।। १०४।।

एवं बद्धस्य हनुमतः पुच्छे लापितामग्निं सीता प्रार्थयते - रक्षोहणमिति।। रक्षोहणं रक्षसाम् अक्षादीनां हन्तारं वाजिनं हरिं वानरं दृष्ट्वा आजिघर्मि क्षरामि शोकेनाऽश्रूणि निवर्तयामीत्यर्थः। अतो मित्रं हनुमत्पितुर्वायोः सखायं प्रथिष्ठं प्रथमानम् अग्निं शर्म हनूमते कल्याणं उपयामि उपेत्य याचामि। तत्त्वायामीतिवत् वर्णलोपश्छान्दसः। शिशानो दीप्यमानोऽग्निः क्रतुभिः यज्ञैः पूर्वम् अस्माभिः समिद्धः सन्दीपितः स इदानीं नोऽस्मत्सम्बन्धिनं जनं दिवा नक्तं च सरिषः हिंसातः पातु। पक्षे, अग्निर्विज्ञानम्, तद्युता भक्तिः कृत्स्नां कामसम्पदं नाशितवतीत्यर्थः।। १०४।।

हिन्दीभाषानुवाद - राक्षसों का हनन करने वाले इस वानर (हनुमान्) को (इस दशा में) देखकर मैं शोक से आँसू बहाती हूँ। इसलिए हनुमान् के पिता वायु के मित्र अग्नि से हनुमान् के कल्याण की याचना करती हूँ। (हनुमान के पूँछ में) प्रदीप्त यह अग्नि हमारे द्वारा यज्ञ में पहले संवर्धित किया गया है और अब यह दिन रात (सदैव) हमारे सखा की हिंसा से रक्षा करे।। १०४।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सत्तासीवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है । इस मन्त्र में, हनुमान् के पूँछ में लगी हुई अग्नि को देखकर सीता शोक से रोने लगती हैं और फिर अग्नि से हनुमान् के कल्याण की कामना करती हैं।

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधाना-
नुपस्पृश जातवेदः समिद्धः।
आजिह्वया मूरदेवान् रमस्व
क्रव्यादोवृक्त्व्यपिधत्स्वासन्।। १०५।।

अयोदंष्ट्र इति।। अयोदंष्ट्रः अर्चिषा ज्वालया यातुधानान् राक्षसान् उपस्पृश, हे जातवेदः, समिद्धः सन् जिह्वया महाज्वालया मूरदेवान् मूलदेवान् पूर्वदेवान् असुरान् इति यावत् आरभस्व स्पृश। क्रव्यादो मांसादांश्च तान वृक्त्वी एकीकृत्य च आसन् आस्येऽपिधत्स्व तिरोहतान् कुरु। पक्षे, अयोदंष्ट्रोऽभेद्यार्थभेदनक्षमः अर्चिषा सात्त्विकवृत्त्या यातुधानान् क्रोधादीन् निगृह्णीष्व, जातवेदः हे अग्ने, अतीतानेक जन्मादिदुःखज्ञ शेषं स्पष्टम्।। १०५।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे अग्नि, तुम अपनी लपटों से राक्षसों को लपेट लो। अपनी महाज्वाला रूपी जिह्वा से उन्हें लपक लो और उन मांसाहारियों को एकत्र करके निगल जाओ।। १०५।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (१०.८७.२) है। इसका अर्थ पूर्व मन्त्रार्थ का पूरक ही है। टीकाकार ने मूरदेव =मूलदेव का अर्थ 'असुर' किया है। वस्तुतः वैदिक असुर (असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः) का अर्थ देवता ही था। आगे चलकर इसका अर्थ-व्यत्यय हो गया।

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेद-
स्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं
तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः।। १०६।।

यत्रेति।। तं रावणं कामं वा विध्य भिन्धि दूरीकुरु वा शर्वा सर्वाणि हिंस्राणि रक्षांसि शिशानः दीपयन् तयोरुभयोरपि अस्ता अस्तानि गृहाणि दृषत्काष्ठादिमयानि कामविषयभूतानि स्रगादीनि वा, शेषं स्पष्टम्।। १०६।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे जातवेद, हे अग्नि, इस समय आप जहाँ देख रहे हैं, वह चाहे स्थिर (स्थावर) हो अथवा चलता (जङ्गम) हो, अथवा वह अन्तरिक्ष के मार्ग से चलता हो, उसे प्रदीप्त होकर मार डालो और उनके घरों को जला डालो।।१०६।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह छठाँ मन्त्र (१०.८७.६) है। इसका भी अर्थ पूर्वमन्त्रार्थ का पूरक है।

परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम्।। १०७।।

परीति।। हे अग्ने, त्वा त्वां विप्रं व्यापकम्, हे सहस्य तेजस्विन् पुरं परि अरिनगरस्य परितः धीमहि स्थापयामः कृत्स्नं नगरमावेष्ट्य यथा बहिर्निःसर्तुमन्यो न शक्नोति तथा स्थिरो भवेत्यर्थः। धृषत् अन्यं धर्षयन् वर्णो यस्य तं त्वां धृषद्वर्णं दिवे

दिवे नित्यं भङ्गुरं विनाशिशीलं मायामयं अहङ्कारादि तद्वत् तां भङ्गुरावतां हन्तारं निधीमहि। पक्षे, सर्वशरीरस्थं पाप्मानं भस्मीकुरु यथा बहिर्वासनाः न निःसरेयुस्तथेति भावः।। १०७।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे अग्नि, हे तेजस्वी, तुझ व्यापक को इस नगर के चारों ओर स्थापित करते हैं। इस पूरे नगर को चारों ओर से घेरकर इस प्रकार स्थिर हो जाओ कि कोई इससे बाहर निकल न सके। दूसरों के वर्णों (रंगों) को अपने वर्ण से घर्षित करते हुए (मलिन करते हुए) तुमको, इन क्षणिकजीवी राक्षसों के विनाशक के रूप में (स्थापित करते हैं)।। १०७।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह बाईसवाँ मन्त्र (१०.८७.२२) है। इस मन्त्र का भी अर्थ पूर्वोक्त मन्त्रों के अर्थ का पूरक है।

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते
सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती
पुरुष्टुतस्य कतिचित्परि प्रियः।। १०८।।

एवं लङ्कां दग्ध्वा वानरैः सह हनुमान् रामं प्रत्यागत इत्याह- हरिं मृजन्तीति।। हरिं वानरं हनुमन्तं कृतकार्यं मृजन्ति प्रेम्णा हस्तेन परिमार्जयन्ति के अरुषः रोषरहिताः शान्ताः श्रीरामभद्राः, बहुत्वं पूजायाम्। एतेनान्वेषणात्प्राकृतकोपाः स्थिता इति गम्यते। न शब्द उपमार्थे, उत्तरान्वयी यथा धेनुभिर्धेनुप्रभवैः पयोभिः कलेशे द्रोणकलशे सोमः समज्यते सङ्गतो भवत्यतिशयाधानाय, एवं यो हरिर्युज्यते अर्थात् स्वामिनेति लभ्यते। स च हरिः वाचम् उदीरयति। हिन्वते वर्धयते च स्वामिनं यतो मती मेधावी, सुपः पूर्वसवर्णः। तामेव वर्धनरूपां वाचमाह - पुरुष्टुतस्य कतिचित्परिप्रिय इति।। बहुभिः ब्रह्माद्यैः स्तुतस्य तव मदीयाः परिप्रियः परितः प्रीणयन्ति ताः स्तुतिवाचः कतिचित् कियत्यः यावती स्तुतिर्मया कर्तव्या सा सर्वथाप्यत्यल्पैवेति भावः।। १०८।।

हिन्दीभाषानुवाद - क्रोधरहित (अर्थात्) शान्त श्रीराम ने कृतकार्य हनुमान् को प्रेमपूर्वक उसी तरह स्पर्श किया जैसे कलश में गाय के दूध के साथ सोम को मिलाया जाता है। इस प्रकार स्वामी के पास पहुँचे हुए (सम्मानित) और स्वामी की वृद्धि चाहने वाले मेधावी वानर हनुमान् ने कहा कि ब्रह्मा आदि से स्तुत आपके लिए प्रसन्न करने वाली मेरी स्तुतियाँ कुछ कम ही हैं।। १०८।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के नौवें मण्डल के बहत्तरवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है।

टीकाकार के अनुसार सीता का पता लगाकर, श्रीराम के लिए उनका अभिज्ञान लेकर और लङ्का को जलाकर हनुमान् (समुद्र के इस पार लौटकर) प्रतीक्षारत वानरों से सङ्गत होकर श्रीराम के पास पहुँचे। सीता का पता लग जाने से, वानरों के प्रति राम का रोष समाप्त हो गया। वे क्रोधरहित, शान्त और प्रसन्न थे। उन्होंने यह कार्य करने वाले हनुमान को स्पर्श करके उनके प्रति सम्मानपूर्ण आभार व्यक्त किया। मन्त्र में इसके लिए एक वैदिक (यज्ञीय) उपमा प्रयुक्त की गयी है। हनुमान् को राम द्वारा स्पर्श किया जाना वैसा ही है जैसा कि सोम द्वारा कलश में रखे गये गोदुग्ध का। यज्ञ के अवसर पर सोम-संस्कारों का वर्णन मिलता है जिसमें सोम के साथ अन्य वस्तुएँ भी मिलाई जाती हैं और तब उनकी संज्ञा भिन्न-भिन्न हो जाती है। यथा- गवाशिर (गोदुग्ध मिश्रित सोम) दध्याशिर (दधिमिश्रित सोम), यवाशिर (जौ के सत्तू के साथ मिश्रित सोम) इत्यादि। इस प्रकार के मिश्रणों से सोम के गुण, स्वाद, और प्रभाव-उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है। राम से संगत हनुमान् और अधिक प्रभावशाली तथा यशस्वी होंगे।

श्रीराम ने हनुमान् की भूरिशः प्रशंसा की और हनुमान् ने भी राम की स्तुति की और कहा कि आप तो ब्रह्मादि के द्वारा अतिशय स्तुत हैं और उनकी स्तुतियों के समक्ष मेरी स्तुतियां तो कुछ नहीं हैं।

साकं वदन्ति बहवो मनीषिण
इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः।
यदीं मृजन्ति सुभगस्तयो नरः
सुनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु।। १०६।।

साकमिति।। अतः परं बहवो मनीषिणो धीमन्तो वानराः साकं युगपत् श्रीरामभद्रं प्रवदन्ति, यत् यतः कारणात् ते सर्वे इन्द्रस्य जठरे जठरतृप्त्यर्थं सोमं पयोभिर्मिश्रयितुम् आदुहुः दुग्धवत्या धेन्वाः कृतसोमयागात्तेषां रामपर्यन्तं गतिरासीदित्यर्थः। कुत एवं रामस्य दौर्लभ्यमत आह - यदिति।। यत् यतः ईम् एनं रामं काम्यं कमनीयं मधु अमृतं नरो मनुष्याः सुभगस्तयः प्रज्ञानांशवो विशुद्धचेतस्त्वाद्येषां ते तथाभूताः दशभिः सनीळाभिः समाननीडाभिः पञ्चभिः प्राणवृत्तिभिः पञ्चभिर्धीवृत्तिभिश्च सर्वैः कर्मभिः सर्वैर्ज्ञानैश्च मृजन्ति मृगयन्ति, तस्माद्रामेण सह संवादो महतः पुण्यस्य फलमिति ज्ञेयम्।। १०६।।

हिन्दी भाषानुवाद - फिर तो सभी बुद्धिमान् वानर एक साथ मिलकर श्रीराम की स्तुति करने लगे- श्रीराम को प्राप्त करने के लिए ही (सोमयाग में) सभी इन्द्र की उदरतृप्ति के लिए सोम से गोदुग्ध को मिलाते हैं। इन कमनीय और अमृतरूप श्रीराम को प्राप्त करने के लिए ही सभी मनुष्य, प्रज्ञानरश्मि से विशुद्ध चित्तवाले प्राण की पाँच तथा बुद्धि की पाँच वृत्तियों से अर्थात् सभी कर्मों से आराधना करते हैं, खोजते हैं।। १०६।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (६.७२.२) है। इस मन्त्र में बुद्धिमान् वानरों द्वारा राम की स्तुति किए जाने का वर्णन है। विशुद्ध चित्त वाले मनुष्य श्रीराम को प्राप्त करने के लिए सभी कर्मों द्वारा प्रयत्न करते हैं। 'सुनीडाभिः दशभिः' की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने लिखा है - 'पञ्चभिः प्राणवृत्तिभिः पञ्चभिर्धीवृत्तिभिश्च' पञ्चप्राण हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। इसी प्रकार बुद्धीन्द्रियाँ भी पाँच हैं- चक्षु, त्वक्, घ्राण, रसना और कर्ण।

अरममाणो अत्येति गा अभि
सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम्।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनङ्गृसः
सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेतिजामिभिः।। ११०।।

संवादमेवाह तिसृभिः - अरममाण इति।। इन्द्र ते ऋत्वियः सोम इति पदचतुष्टयमुत्तरमन्त्रादपकृष्यते हे इन्द्र श्रीराम ते तव सोमः सोमाभिषवनिमित्तभूता ऋत्वियः ऋतौ ईयते गम्यत इति ऋत्वियः ऋतुशब्दकादिणः। कः इयङ् ऋतुकालैकगम्या जायेत्यर्थः। स सोमस्त्वद्वियोगातुरः सूर्यस्य दुहितुः पतिव्रतात्वेनातिप्रसिद्धायाः सावित्र्याः प्रियं रवं कीर्तिशब्दं तिरः तिरस्कृत्य गाः भूप्रदेशान् अभितो व्याप्य अत्येति अतिक्रम्य गच्छति लोकान्तराणीति शेषः। एवं तस्याः पातिव्रत्यमुक्त्वा दुःखमाहुः- अन्विति।। अस्मै एनम् उक्तविधं त्वदीयं सोमं प्राप्तुं विनं कमनीयं वस्तुजातं समर्पयितुं गृह्णातीति विनङ्गृसौ रावणः जोषं पर्याप्तं यथा स्यात्तथा अन्वभरत् अनुहरति सर्वं कमनीयायै प्रयच्छति। अथापि सा संक्षेति अतिशयेन क्षीयत एव जामिभिः सहचरीभिः स्वसृभिः एकयोनिभिः द्वयीभिरुभयीभिः चेतोवृत्तिभिः हेतुभूताभिः संक्षेति इष्टवियोगजैः शोकादिभिरनिष्टसंयोगजैर्भयादिभिश्चातिक्षीणास्तीत्यर्थः।। ११०।।

हिन्दीभाषानुवाद - (हे राम! तुम्हारे वियोग से) अत्यन्त खिन्न सोम सूर्य की पुत्री (पतिव्रता सावित्री) की कीर्ति (प्रिय शब्द) का तिरस्कार करके पृथिवी को छोड़कर अन्य लोकों में चला गया। रावण ने उस सोम को प्राप्त करने के लिए सुन्दर वस्तु आदि समर्पण-रूप बहुविध प्रयत्न किया तथापि वह (सावित्री) इष्टवियोग से अपनी सहचरियों के साथ शोक के कारण क्षीण हो रही है।। ११०।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह तीसरा (६.७२.३) मन्त्र है। इस मन्त्र के कथ्य का रामकथा से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। सोम के लोकान्तरगमन का प्रसंग राम, सावित्री और रावण से जोड़ा गया है। राम के वियोग से खिन्न सोम पृथिवी छोड़कर अन्यत्र चला गया और उसने सावित्री की कीर्ति का भी तिरस्कार कर दिया। रावण उस सोम को पाने के लिए अनेक प्रयत्न कर रहा है किन्तु सावित्री अपनी सखियों के साथ क्षीण हो रही है।

मन्त्रोद्धृत तथ्यों के समर्थन में टीकाकार ने कोई अवान्तर कथा भी सङ्केतित नहीं की है। अतः अर्थसङ्गति में कठिनाई है।

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः
पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः।
पुरन्धिवान् मनुषो यज्ञसाधनः
शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते।। १११।।

नृधूत इति।। नृभिः राक्षसीभिर्धूतोऽवधूतः भीषितः अद्रिसुतः अद्रयः पाषाणाः सुता आज्ञप्ताः यस्मै पाषाणैरियं चूर्णीकर्तव्येति एवं भीषितोऽपि बर्हिषि तृणे निषण्णा इति शेषः। प्रियस्तव गवां पतिर्जितेन्द्रियः प्रदिवः पुराणः इन्दुः ईश्वरः स्वसंरक्षणे प्रभुः ऋत्वियः व्याख्यातः पुरन्धिवान् बहुधीयुक्तः मनुषो मनुष्यरूपस्तव यज्ञसाधनः सहध ार्मचारी धिया शुचिः पवते आत्मानं पुनाति।। १११।।

हिन्दीभाषानुवाद - राक्षसियों के द्वारा डराई गयी, पत्थरों से धमकाई गयी, वह सीता तृणों पर बैठी हुई है। जिसके पति आप, जितेन्द्रिय, पुराणपुरुष सर्वशक्तिमान् ईश्वर बुद्धिसम्पन्न कहे गए हैं, वह सीता मनुष्य रूप में आपके यज्ञ की सहायिका अर्थात् सहधर्मचारिणी, बुद्धि से पवित्र होते हुए भी अपने को पवित्र बना रही है।। १११।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह चौथा मन्त्र (९.७२.४) है। इस मन्त्र में (हनुमान्) लङ्का में रह रही सीता की दुर्दशा का वर्णन कर रहे हैं। मन्त्रार्थ करने में टीकाकार का पाण्डित्यहठ और क्लिष्टकल्पना दर्शनीय है। सीता ने मन से भी परपुरुष का चिन्तन नहीं किया है, अतः बुद्धि से तो पवित्र है ही (शुचिः धिया), नाना प्रकार के संत्रास सहन करते हुए, वह शरीर से भी अपने को पवित्र बनाये रखने में सफल है।

नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽ
अनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते।
आप्राः क्रतून् समजैरध्वरे मती-
र्वेर्नद्रुषच्चम्वो इरासदद्धरिः।। ११२।।

नृबाहुभ्यामिति।। हे इन्द्र ते तव सोमः सोमयागसाधनं सीताख्यः बाणरूपेण परीतः सन् बाहुभ्यां नररूपस्य तव बाहुभ्यां भुजाभ्यां चोदितः प्रेरितः सन् अनुष्वधं स्वधा अन्नं तेन तद्विकारो देह उच्यते प्रतिशरीरं पवते गच्छति शीघ्रमेवेतयर्थः। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवन्निर्देशात्। कीदृशः धारया अविच्छिन्नप्रवाहेण सुतः निसृष्टः त्वं च क्रतून सङ्कल्पान् स्वस्य सीताया अस्मदीयांश्च आ अतिशयेन आप्राः पूरितवानसि; कार्यसिद्धयवश्यंभावको भूतप्रयोगोऽगन्म सुवः सुवरगन्मेतिवत् तथा

अध्वरे युद्धयज्ञे चम्वोः वानरराक्षससेनयोः मतीः बुद्धीः बुद्धिधर्मान् शौर्यादीन् समजैः सम्यक् जितवानसि। अस्मिन्निरपेक्ष एव शत्रून् निहन्तुं समर्थोऽसीत्यर्थः यतस्त्वेति भावः। कथं युष्माभिः सीता दृष्टेत्याशङ्कायां हनूमन्तं निर्दिश्य वदन्ति- वेर्नद्रुषत् पक्षीव वृक्षारूढो हरिर्हनुमान् आसदत् प्राप्तवान् त्वदीयं सोमसाधनमित्यनुषङ्गः समुद्रव्यवहिते पक्षिवरप्राप्ये देशे सीता हनुमता समुद्रं लङ्घयता दृष्टेत्यर्थः।। ११२।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे राम! यह तुम्हारा सोमरूप बाण (तुम्हारी) दोनों भुजाओं से प्रेरित होकर प्रत्येक शरीर में शीघ्रतापूर्वक जाता है। निरन्तर निकलने वाले अपने सङ्कल्पों को, सीता की और हम लोगों की (आशा में) भर दिया है। इस युद्धयज्ञ में वानरों और राक्षसों की सेना के शौर्यादि को तुमने अच्दी तरह अपने अधीन कर लिया है। पेड़ पर चढ़ने वाले पक्षी की तरह हनुमान् ने समुद्र को पार करके सीता को प्राप्त किया है।। ११२।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह पाँचवाँ (६.७२.५) मन्त्र है।

अंशु दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं
कविं कवयोऽपसो मनीषिणः।
समीं गावो मतयो यन्ति संयत
ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः।। ११३।।

ततः किं वृत्तमत आह-अंशुं दुहन्तीति।। अंशुम् अंशुमन्तं सूर्यं वायुमग्निं वा त्रयः केशिन इति, 'अग्निर्वायुः सूर्यश्च केशिनः' इति स्मृतेः। तस्मात् अपसः कर्माणि दुहन्ति। यथा, गोः सारभूतं पयो दुह्यते एवम् अग्नेः सारः परदाहकत्वं सूर्यस्य सर्वविषयप्रकाशकत्वं, वायोः शीघ्रगामित्वं बलवत्त्वं च मनीषिणो मनोनिग्रहसमर्थाः मतयो मेधाविनः वानरा दुहन्ति आददत इत्यर्थः। कीदृशम् अंशुं स्तनयन्तं गर्जन्तं प्रख्यातमित्यर्थः। अक्षितमक्षीणं बलेन वेगेन चेत्यर्थः। कविं क्रान्तदर्शिनम् एतानि क्रमेणाग्निवायुसूर्याणां योग्यतया विशेषणानीति ज्ञेयम्। गर्जन्तोऽक्षीण बलवेगाः गगनमार्गेण गच्छन्तीत्यर्थः। गत्वा च किं कृतवन्तस्तदाह - समिति।। संयतः समेतीति संयत् संहतमचञ्चलं तस्य ऋतस्य सलिलस्य योना योनौ, सुपो डादेशः। आकरे समुद्रे, आधारे सदने, निषदने निमित्ते पुनर्भुवो गावः, पूर्वं धातुः सकाशात् जाताः, पश्चाच्चतुष्कोणत्वाद्याकरेण शिल्पिभ्यो नलादिभ्यो भूताः गावो भूमयः सुघटितशिलारूपाः ईं लोकप्रसिद्धवत् संयन्ति एकीभावेन मिलन्ति। यथा- पट्टाङ्गणेष्वविवृतसन्धयः शिला निविशन्ते, एवं स्तब्धोदके सिन्धावपीति तथांशु दुहन्तीति सम्बन्धः।। ११३।।

हिन्दीभाषानुवाद - मेधावी और मनोनिग्रहसमर्थ वानररूप देवों ने सूर्य, अग्नि और वायु से उनके कार्यों के सारभूततत्त्वों को ग्रहण कर लिया (दुह लिया) ओर इस प्रकार वे

अक्षीणबलवेग वाले गर्जना करते हुए गगन मार्ग से जाने लगे। उन्होंने मिलकर समुद्र पर शिलाओं को जोड़कर विस्तृत सेतु का निर्माण करके भूमि जैसा बना दिया।। ११३।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह छठाँ मन्त्र (६.७२.६) है। इस मन्त्र में वानरों के शौर्य और सेतु निर्माण का निरूपण है। 'अंशुं दुहन्ति' का अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है जैसे गायों से सारभूत दूध दुहा जाता है। वैसे ही बुद्धिमान, जितेन्द्रिय वानरों ने अग्नि से उसका सारभूत तत्त्व 'परदाहकत्व' दुह लिया (ले लिया)। इसी प्रकार, सूर्य से 'सर्वविषयप्रकाशकत्व' तथा वायु से 'बल-वेग' ले लिया।

नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ऽ-
पामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः
सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः।। ११४।।

नाभेति।। दिवो द्युलोकादपि महः महति अपामूर्मौ सलिलानां सङ्घे, 'द्यौः समुद्रसमन्तर' इति द्युसमुद्रयोः साम्यदर्शनात् तादृशे समुद्रे अन्तःमध्ये, समुद्रस्य मध्ये इत्यर्थः। पृथिव्याः नाभा। सुपो डादेशः। नाभिः नाभावुत्पन्नः पर्वत इति यावत् स धरुणो धारकोऽभूत्। समुद्रे नौकावत्पर्वतसमुदायोऽपि वानराणां धारणार्थं सेतुरूपेण स्थित इत्यर्थः। कीदृशो नाभा सिन्धुषु नदीषु निमित्तभूतासु उक्षितः सिक्तः शिरसि प्रवर्तमानाभिर्नदीभिः आर्द्रीकृतः अतिशयेन महानित्यर्थः। एतेन, 'दशयोजनविस्तीर्णे दशयोजनमायते' सेतौ तत्तत्पर्वतशिरोगता नद्योऽपि बह्व्यः सन्तीत्युक्तम्। कथं सलिले शिलानां तरणमत आह- इन्द्रस्येति।। इन्द्रस्य परमेश्वरस्य रामस्य वज्रः वज्रवदप्रतिहतगतिः वृषभो धर्मः विभूनि व्यापकानि वसूनि फलानि यस्य स विभूवसुः। दैर्घ्यं सांहितिकम्। सोमः सोमयागादिजन्मा हृदे जनानां हृदयशोधनाय पवते गच्छति। कीदृशः सोमः मत्सरः देवानां मदकरः हर्षद इति यावत्। यथाऽऽग्नेये दिव्ये धर्मबलादग्निः स्वीयं दाहकत्वं त्यक्त्वा शीतत्वं भजति एवमिहापि रामधर्मबलाद् विशुद्धहृदयो महोदधिरपि स्वीयं मज्जकत्वं क्लेदकरत्वञ्च त्यक्त्वा घनत्वं गतः, तेन तत्र पाषाणास्तरन्तीति भावः।। ११४।।

हिन्दीभाषानुवाद - द्युलोक से भी महान् समुद्र के मध्य, जो नदियों से सिक्त और पृथिवी की नाभि से उठे हुए पर्वतों से भरा हुआ है, जलसङ्घात पर (वानरों ने) सेतु का निर्माण किया। परमेश्वर श्रीराम के वज्र के समान अप्रतिहतगति वाले धर्म के व्यापक फल के बल पर, हृदय शोधन के जाते हुए आनन्दप्रद सोम के समान शिलायें जल पर तैरने लगीं।। ११४।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र (६.७२.७) है। इसमें समुद्र पर सेतु-बन्धन का वर्णन है। टीकाकार के अनुसार, राम के धर्मबल से समुद्र भी विशुद्ध हृदय हो गया

और उसने डुबोने और गीला करने का अपना स्वभाव छोड़ दिया तथा घनत्व को धारण कर लिया ताकि शिलायें उस पर तैरती रहें।

जाया तप्यते कितवस्य हीना
माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽ-
न्येषामस्तमुपनक्तमेति।। ११५।।

ततः परं द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां सोममेव स्तुत्वाऽग्रिमसूक्तस्य स्रक्वेद्रप्सस्येत्यादेराद्येन चतुर्ऋचेन पुनः सेतुबन्धनमेव स्तुतं तद्ऋक्चतुष्टयमग्रे व्याख्यास्यते। ततः परम् ऋक्पञ्चकं शेषभूतं तूपोद्घात एव व्याख्यातं तदेवं सेतुबन्धां तां कथां समाप्य हनुमति समुद्रमुल्लङ्घ्याऽऽगते लङ्कायां किं वृत्तमित्याशङ्कायां पुत्रवधनगरदाहादिना तप्तयोर्मन्दोदरीरावणयोः शोकमाह-जायेति।।

कितवस्य धूर्तस्य कपटसंन्यासिनः सीताहर्तुः रावणस्य जाया मन्दोदरी तप्यते। यतः हीना पुत्रेणैव क्वस्विच्चरतः परलोकं कर्मानुरूपं गच्छतो माता हतपुत्रेत्यर्थः। कितवोऽपि ऋणावा, ऋणशब्दो दुर्गभूमौ लङ्काख्यदुर्गवान् समुद्रजलाश्रयवानपि हनुमत्प्रतापं दृष्ट्वा बिभ्यत् भयं कुर्वन् रावणः अन्येषां राघवाणाम् अस्तं गृहं सीतां धनं राज्यं च इच्छमानः इच्छन् उपनक्तं प्रदोषकाले एति सीतास्थानं रत्यर्थी सन् गच्छति। पक्षे, हर्षनाशेन सुखस्वादरूपायां मातर्युपतप्तायां कामरावणो मधुमत्याख्यां योगभूमिम् अयोगिभिर्दुर्गमां लङ्कारूपमाश्रितोऽपि भक्तेभ्यो बिभ्यत् रजोगुणस्योदयकाले पुनः श्रद्धां वशीकर्तुं कामयत इति भावः।। ११५।।

हिन्दीभाषानुवाद - कपटसंन्यासी धूर्त रावण की पत्नी मन्दोदरी (हनुमान् द्वारा मारे गए) कर्मानुरूप किसी लोक में गए हुए पुत्र के वियोग के शोक से सन्ताप कर रही है। समुद्रजल से घिरे लङ्का दुर्ग में रहते हुए भी रावण हनुमान् के प्रताप को देखकर डरता हुआ, राघव श्रीराम की भार्या रूप धन की इच्छा करता हुआ प्रदोषकाल में सीता के स्थान को जाता है।। ११५।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के चौंतीसवें सूक्त का दसवाँ (मन्त्र) है। प्रस्तुत मन्त्र में लङ्कादहनादि दुर्धर्ष कर्म करके हनुमान् के चले जाने पर लङ्का में व्याप्त भय और शोक का चित्रण किया गया है। पुत्र-वध से शोक-सन्तप्ता मन्दोदरी और हनुमान् के प्रताप से भीत रावण का वर्णन है। साथ ही सीता के प्रति रावण की कामुकता का भी सङ्केत किया गया है।

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा
शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याऽहमेकपरस्य हेतो-
रनुव्रतामप जायामरोधम्।। ११६ ।।

सः रावणः पुनः सीतया यो वः सेनानीरिति प्रत्याख्यातः उभयभ्रष्टः पुत्रं भार्याञ्चाऽनुशोचति-नमेति।। एषा भार्या मा मां न मिमेथ न हिंसितवती, न जिहीळे न ममहेलनं कृतवती, तथा सखिभ्यो मत्प्रियेभ्य उत मह्यं च सर्वदा शिवा कल्याणरूपैवासीत्। ताम् अनुव्रतां जायाम् अक्षस्य सम्बन्धी यः एकश्चासौ परश्च एकपरस्तस्य हनुमतो हेतोः अपारोधम् अक्षं निघ्नता हेतुभूतेन तेन अपरुद्धवानस्मि धिङ् मामित्यर्थः। पक्षे, रतिं नाशयतः कामस्य वीर्यं बलं च धिग्धिगिति भावः।। ११६ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - (सीता द्वारा तिरस्कृत होकर रावण, पुत्र और पत्नी के प्रति शोक करता है-) इस मेरी पत्नी मन्दोदरी ने न कभी मुझे मारा और न ही मेरी उपेक्षा (अवहेलना) करती है अपितु मेरे प्रियजनों और मेरे लिए सदैव कल्याणरूपा ही रहती है। मेरे ही कारण हनुमान् द्वारा मेरा पुत्र अक्ष मारा गया अतः अपनी अनुकूल आचरण करने वाली पत्नी को मैंने ही इस प्रकार (पुत्र वियोग से) दुःखी किया है (मैं उसका अपराधी हूँ, मुझे धिक्कार है)।। ११६ ।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (१०.३४.२) है। इसमें सीता द्वारा तिरस्कृत, इस प्रकार उभयभ्रष्ट रावण का सन्ताप वर्णित है।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य
नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्।। ११७ ।।

द्वेष्टीति।। रावणबन्धोः कस्यचिदुक्तिः श्वश्रूर्दारपक्षीयान् स्त्रीगणान् हितोपदेशकतॄन् द्वेष्टि, जाया अपरुणद्धि भोगादौ निरुन्धे, नाथित उपतप्तः मर्हितारं सुखयितारं परदारसङ्गं न विन्दते। अतोऽस्य कितवस्य भोगं शरीरं न विन्दामि न पश्यामि। अयं कामवेदनया मरिष्यत्येवेत्यर्थः।। तत्र दृष्टान्तः - जरतो जीर्यमाणस्याश्वस्य मृत्युना क्रेत्रा वा नीतस्य शरीरं न दृश्यत एवमस्यापीत्यर्थः। पक्षे, विष्णुभक्त्या उपतापितः कामो भोगासक्तिं सुखास्वादलक्षणां रतिं च परिहरति, श्रद्धाञ्च वशीकर्तुं न क्षमते। अतोऽस्य स्वरूपं शीघ्रमेव नंक्ष्यतीति भावः।। ११७ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - हितकर सीख देने वाली सास आदि वृद्धा स्त्रियों से द्वेष करता है

(अर्थात् बड़ों की शिक्षा पर ध्यान नहीं देता) इसकी पत्नी भी भोगादि से इसे मना करती है और यह व्यथित होकर सुख देने वाले परस्त्रीसङ्ग को भी नहीं प्राप्त करता। इस प्रकार बढ़ती आयु के कारण जीर्ण होते हुए अथवा किसी क्रेता के द्वारा खरीद कर ले जाये गए अश्व का शरीर जैसे नहीं दिखाई देता, वैसे ही मैं इस धूर्त रावण के शरीर को भी नहीं देख रहा हूँ अर्थात् यह कामवेदना से शीघ्र ही मर जायेगा।। ११७।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह तीसरा मन्त्र (१०.३४.३) है। इसमें रावण की दुर्दशा के सम्बन्ध में उसके किसी आत्मीय की उक्ति बताई गयी है।

सभामेति कितवः पृच्छमानो
जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति कामं
प्रतिदीव्ने दधत आकृतानि।। ११८।।

सभामेतीति।। एवं हनुमता लङ्कादाहे कृते सति कितवो धूर्तो रावणः पृच्छमानः प्रश्नार्थी सन् सभामेति जेष्यामीति अहङ्कारेण तन्वा शरीरेण शूशुजानो वर्धमानः। वस्य जत्वं छान्दसम्। अक्षासः अक्षसदृशाः कनिष्ठभ्रातरो विभीषणादयः अस्य कामं मनोरथं वितिरन्ति विशेषेण तिरस्कुर्वन्ति। कीदृशाः प्रतिजिगीषते रामाय कृतानि सीताख्यपणितद्रव्यलाभसूचकानि लक्षणानि आदधतः समर्थयन्तः। पक्षे, सभा शास्त्रम्। अक्षासः प्रमाणानि प्रतिदीव्ने बोधाय शेषं प्राग्वत्। अत्र प्रास्य धारा इति मन्त्रः पठनीयः। स च व्याख्यात उपोद्धात एव तत्र सख्युर्विष्णोर्जामिं जायां सीताख्यां क्रन्दन्तीमपि भगवान् न एति न प्राप्नोतीत्येव पदार्थः, शेषं पूर्ववदेव।। ११८।।

हिन्दीभाषानुवाद -"मैं ही जीतूँगा न!"-ऐसा पूछता हुआ वह धूर्त रावण अहङ्कार से अपने शरीर को फुलाये हुए राजसभा में आता है। प्रतिरोध के लिए तरह-तरह की आकृतियाँ धारण करने वाले इस रावण के अक्ष सदृश (पुत्रवत्) कनिष्ठभ्राता विभीषण आदि इसके इस प्रकार के मनोरथ को व्यर्थ (अर्थात् तिरस्कृत) करते हैं अर्थात् विरोध करते हैं ।। ११८।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह छठाँ मन्त्र (१०.३४.६) है। इसमें रावण के मिथ्या दम्भ और सभा में उसके आडम्बर तथा विरोध का वर्णन है।

उदीर्ष्वातः पतिवतीं ह्येऽ३षा
विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां
स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि।। ११९।।

एवमुक्तवापि सभ्या रावणं प्रार्थयन्ते- उदीर्ष्वेति ।। अतः सीताभिलाष निर्बन्धादुदीर्ष्व उद्गच्छ निवृत्तो भव; हि यतः एषा पतिवती परभार्या, विश्वावसुं रावणव्यामोहकारी गन्धर्वः विश्वानि वसूनि यस्मिन् इति वा अवाप्तसकलकामं रावणं त्वां नमस्कारेण सह गीर्भिर्वाग्भिरीळे स्तौमि प्रार्थयामि। अन्यां पितृगृहस्थाम् अप्रत्तां कन्यामिच्छ, व्यक्तां विस्पष्टां जातस्त्रीलक्षणां सः सा स्त्री ते तव भागः जनुषा जन्मना तस्य तं विद्धि प्राप्नुहि ।। ११६ ।।

हिन्दीभाषानुवाद -(सभासद रावण से निवेदन करते हैं कि-) सीता को पाने का हठ छोड़ दीजिए क्योंकि यह पतिव्रता पर पत्नी है, आपकी सारी कामनायें पूर्ण हैं (आप सकल मनोरथों को प्राप्त कर चुके हैं); हम नमस्कार पूर्वक इन वचनों से आपसे विनती करते हैं। आप किसी अन्य कुमारी कन्या से विवाह कर लीजिए और सहजतया जो आपके भाग्य में हो उसे अपनी भार्या बनाइए।। ११६।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पचासीवें सूक्त का दूसरा (मन्त्र) है। इस मन्त्र में उस कामार्त रावण के हितेच्छु सभासद उससे सीता को पाने का हठ छोड़ने और किसी अन्य अनूठा कन्या से विवाह के लिए प्रार्थना करते हैं।

उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळा॑महे त्वा।
अन्ययामिच्छ प्रफर्व्यं? सं जायां पत्या सृज।। १२०।।

उदीर्ष्वेति।। अत्र द्वितीयमन्त्रे इच्छेत्यन्तं प्राग्वत् प्रफर्व्यं प्रकर्षेण फलाभ्यां स्तनाभ्यां वेति रंहतीति प्रफलवीः। लस्य रत्वम् अन्तलोपश्च छान्दसः। प्रफर्व्यं सुस्तनीमित्यर्थः। जायां सीतां पत्या रामेण संसृज साभ कुर्वित्यर्थः। पक्षे, बोधप्रियां श्रद्धामपहाय विषयसुखदायिनीं श्रद्धामाश्रयस्वेति भावः। बोधेन सह कुर्वतस्तवाऽपि कल्याणं भवति-'बुद्धानां च तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' इति सर्वकर्मफलभागित्वश्रवणात्।। १२०।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी रावण ! हम नमस्कारपूर्वक तुम्हारी विनती करते हैं कि सीता की ओर से अपना मन हटा लो। किसी अन्य कन्या की इच्छा करो और इस सुस्तनी सीता को उसके पति से मिला दो।। १२०।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के बयासीवें सूक्त का बाईसवाँ (मन्त्र) है। यह मन्त्र पूर्वमन्त्र का ही अनुवाद है। इसमें आए हुए एक विचित्र पद 'प्रफर्व्यम्' की व्युत्पत्ति प्रदर्शित करते हुए टीकाकार ने उसका अर्थ 'सुस्तनी' (सुन्दर स्तनों वाली) किया है और उसे 'जायाम्' का विशेषण बनाया है। 'प्रफर्वी' शब्द ऋग्वेद के इस एक स्थान के अतिरिक्त, तैत्तिरीय संहिता (४.२.५.६) वाजसनेयी संहिता (१२.७१), मैत्रायणी संहिता (२.७.१२), काठक संहिता (१६.१२) और अवेस्ता (५.२२.७) में भी आया है और उक्त स्थलों पर इसका अर्थ-'विलासिनी पीवरशरीरिणी स्त्री' है।

उतत्वः पश्यन्नु ददर्श वाच-
मतु त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे
जायेव पत्ये उशती सुवासाः।। १२१।।

एवं बोध्यमानेषु रावणादिषु किं वृत्तमत आह-उतत्व इति।। उत त्वः अपि चैकः प्रहस्तादिः पश्यन् एकेन हनुमता कृतं कदनं पश्यन्नपि वाचं वचनस्यार्थं न ददर्श मदान्धत्वात्। उत त्वः अप्येको रावणादिः शृण्वन्नपि शुकसारणादिमुखेन परबलमाकर्णयन्नपि न शृणोति, तन्मनसि न न करोति दुराग्रहग्रस्तत्वात्। उतो अपि त्वस्मै अन्यस्मै विभीषणाय तन्वं स्वरूपं वाक् स्वार्थं प्रकटीकरोति, यथा उशती कामयमाना जाया पत्ये सुवासाः ऋतुमती स्वं गुह्यं दर्शयति, तद्वत् अन्यैरदृष्टोऽपि भावी विभीषणादिभिर्दृष्ट इत्यर्थः।। १२१।।

हिन्दीभाषानुवाद - एक ओर हनुमान् द्वारा किए गए विध्वंस को देखकर भी उसका अभिप्राय नहीं देखता (समझता। और दूसरी ओर, विभीषणादि की बातों को सुनते हुए भी नहीं सुनाता (ध्यानदेता)। किन्तु वाणी (रावण से) अन्य विभीषणादि के लिए अपने स्वरूप (अर्थ) को उसी प्रकार प्रकट कर देती है जैसे कामनावती सुन्दर वस्त्रों से आवृत भी पत्नी (अनावृत होकर) अपने पति के लिए अपना शरीर समर्पित कर देती है।। १२१।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एकहत्तरवें सूक्त का चौथा (मन्त्र) है। रावण मदान्धता के कारण वास्तविकता को देखकर भी अनदेखी कर रहा है और अपने दुराग्रह के कारण हितैषियों की बातें सुनकर भी अनुसुनी कर दे रहा है किन्तु विभीषण आदि स्पष्टरूप से भावी घटनाओं को पहले से ही देख-सुन रहे हैं।

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति
वितर्तुराणो अपरेभिरेति।
अनानुभूतीरवधून्वानः
पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति।। १२२।।

ततस्ते किं चक्रुरत आह-परा पूर्वेषामिति।। पूर्वेषां जन्मबन्धूनां रावणादीनां सख्या सख्यानि स्नेहं परावृणक्ति दूरीकरोति विभीषणादिः, विशेषेण तर्तुराणः मरणं तर्तुकामः अपरैः कार्यबन्धुभिः रामादिभिः सह सख्यानि एति अभिगच्छति, अनानुभूतीः रावणादीनां भ्रान्तिज्ञानानि अवश्यमेव शत्रुन् जेष्याम इत्येवंरूपाणि अवधून्वानो दूरीकुर्वन् इन्द्रः इदं भाविकदनं पश्यतीति इदन्द्र, इदन्द्र एव इन्द्रो विभीषणः पूर्वीः शरदः कालमृत्युं तर्तरीति अतिशयेन अमरत्वं प्राप्य तरति। इदमीदृशमिति-'तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते' इति श्रुतिदृष्टमत्र इन्द्रशब्दस्य निर्वचनं ज्ञेयम्। पक्षे, पूर्वेषां कामादीनाम् अपरेषां शमादीनां अनानुभूतीर्देहाद्यात्मभ्रान्तीः।। १२२।।

हिन्दीभाषानुवाद - विभीषणादि, ज्येष्ठभ्राता रावणादि की सहज बन्धुता (स्नेह) का त्याग कर विशेष रूप से मृत्यु को पार करने के लिए (मोक्षप्राप्त्यर्थ) इस कार्य में सहायक श्रीरामादि के साथ सखाभाव स्थापित करते हैं। 'शत्रु को अवश्य जीतूँगा' इस प्रकार के रावण के भ्रान्तिज्ञान को दूर करते हुए विभीषण भावी नरसंहार को देखते हुए कालमृत्यु को पार कर गए।। १२२।।

टिप्पणी - यह मन्त्र ऋग्वेद के छठें मण्डल के सैंतालीसवें सूक्त का सत्रहवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में विभीषण द्वारा रावण का आश्रय त्याग कर राम का आश्रय ग्रहण करना वर्णित है।

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था
येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
समर्यमा सम्भगो नो निनीया-
त्सं जास्पत्य सुयममस्तु देवाः।। १२३।।

एवं कुर्वतां विभीषणादीनां पुरोहिताः स्वस्त्यनं कुर्वन्ति-अनृक्षरा इति। ऋग्भ्यो वेदमार्गात् क्षरन्ति ते ऋक्षराः राक्षसादयः कण्टकाः तद्रहिताः अनृक्षरा, अतएव ऋजवः पन्थाः पन्थानः सन्तु, येभिः यैः पथिभिः नोऽस्माकं सखायः वरेयं वरे श्रेष्ठे भूस्थानं याति सञ्चरति तं सर्वोपरि वैकुण्ठे स्थितमपि भूस्थं रामं यन्ति गच्छन्ति, अर्यमा देवो नः अस्मदीयान् संनिनीयात् रामेण सह ऐक्यं गमयतात् भगश्च संनिनीयात् तथा जास्पत्यं सीतारामयोर्दाम्पत्यं धर्मः सुयमं सुसंयतम् अस्तु, भो देवाः।। १२३।।

हिन्दीभाषानुवाद - राक्षसादि रूप कण्टकों से रहित अतः सरल-सत्य मार्ग से चलने वाले हमारे सखा विभीषण श्रेष्ठ भूस्थान पर, जो सर्वोपरि वैकुण्ठ में रहने पर भी राम का निवास है, जाते हैं। अर्यमा देव हमें राम के साथ मिलायें और हमें ऐश्वर्य प्रदान करें तथा सीता-राम का दाम्पत्य धर्म सुसंयत हो।।१२३।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पचासीवें सूक्त का तेईसवाँ मन्त्र (मन्त्र) है। इसमें पुरोहितों द्वारा विभीषण का स्वस्त्ययन किया गया है।

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशा-
द्यनत्वाबध्नात् सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽ-
रिष्ठां त्वा सह पत्या दधामि।। १२४।।

गच्छन् विभीषणः सीतामाश्वासयति- प्र त्वेति ।। त्वा त्वां वरुणस्य पाशात् प्राणिदुःखदात् प्रमुञ्चामि, येन पाशेन त्वा त्वां सविता कर्माध्यक्षो देवः अबध्नात्, सुशेवः सुसुखः ऋतस्य कर्मफलस्य योनौ भोगस्थाने सुकृतस्य पुण्यस्य लोके स्थाने अरिष्टां निर्दुःखां त्वां सह पत्या दधामि मा चिन्तां कुर्वित्यर्थः। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवन्निर्देशः।। १२४ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - (राम के पास जाते हुए विभीषण, सीता को आश्वस्त करते हैं-) जिस पाश से तुम्हें कर्माध्यक्ष देव सविता ने बाँध रखा है, उस दुःखद वरुणपाश से तुम्हें मैं छुड़ाऊँगा। तुम दुःखों से रहित होकर, सुखपूर्वक, सत्यकर्मफल के भोगस्थान-पुण्यलोक में अपने पति के साथ विचरण करोगी।। १२४।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पचासीवें सूक्त का चौबीसवाँ (मन्त्र) है। इसमें विभीषण द्वारा सीता को आश्वासन दिया गया है।

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽ-
युक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः।
उद्भाननावमनयन्त धीरा
आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन्।। १२५।।

ततो विभीषणे दासतां गते रामः सेतुं कृत्वाऽतरदित्याह - आ सूर्य इति।। सूर्यः सूर्यवंशो रामः शुक्लं शुद्धम् अर्णः समुद्रजलम् अरुहत्। केनोपायेनेत्यत आह - अयुक्तेति। यत् यतः हरितः पर्वततत्त्वसामान्यात् विराडङ्गुलिरूपान् पर्वतान् अयुक्त सेतुरूपेण योजितवान्। वीतपृष्ठाः अनुच्चाः सुसमा इत्यर्थः। ताश्च धीराः हनुमदादयः उद्भाननावम् उदकदेशेन नावमिव अनयन्त आनीतवन्तः। अगाधे जले कथमासां न मज्जनं जातम् अत आह- आशृण्वतीरिति। आशृण्वतीः आज्ञाकारिण्यः आपः समुद्ररूपाः अर्वाक् अतिष्ठन् उपस्थानं दासवदकुर्वन्। पक्षे, सूर्य, आत्मा शुक्रमर्णः ब्रह्म समुद्रम् हरितः इन्द्रियनद्य आपो मनः।। १२५।।

हिन्दीभाषानुवाद - सूर्यवंशी श्रीराम ने विराट् पुरुष के अङ्गुलिरूप पर्वतों को जोड़कर सेतु निर्माण करके शुद्ध जल में आरोहण किया। आज्ञाकारी सेवकों की तरह समुद्र-जल शान्त पड़ा रहा और बुद्धिमान् हनुमान् आदि वानरों ने उन पर्वतों को जल पर नावों की तरह चलाया।। १२५।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के पैंतालीसवें सूक्त का दसवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में समुद्र पर सेतुबन्धन की विधि वर्णित है।

अश्मन्वती रीयते संरभध्व-
मुत्तिष्ठत प्रतरतासखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः
शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान् ।। १२६ ।।

अश्मन्वतीति ।। अश्मन्वती पाषाणवती तन्मयी सेतुरूपा नो रीयते आक्रम्यते। संरभध्वम् त्वरध्वम् उत्तिष्ठत प्रतरत समुद्रं भो सखाय इति सेनापतिवाक्यम्। अत्र पुरस्थायां लङ्कायां ये अशेवाः अस्माकमसुखाः क्रूरा असन् प्रदीप्यन्त, तान् जहाम गच्छाम हन्तुमिति शेषः। अभि अभिमुखं वाजान् सङ्ग्रामान् शिवान् जयप्रदान् वयय् उत्तरेम कृतकृत्या भवेमेत्यर्थः। पक्षे, अश्म शरीरम् अस्त्यस्यां साऽश्मन्वती गलितदेहाभिमानिनी ध्याननौरित्यर्थः। शेषं सुगमम् ।। १२६ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - (वानर सेनापति ने, समुद्र पर सेतुनिर्मित हो जाने पर कहा-) हे मित्र वीरों, उठो- शीघ्रता करो और इस पाषाणमय सेतु से समुद्र को पार करो। यहाँ सामने लङ्का में हमारे लिए असुखकर जो क्रूर राक्षस हैं, उन्हें मारने के लिए हम लोग प्रस्थान करें। निश्चिय ही हम लोग अभिमुख सङ्ग्राम में कल्याणप्रद पार (अन्त) को प्राप्त करेंगे अर्थात् विजय प्राप्त करेंगे।। १२६ ।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के तिरपनवें सूक्त का आठवाँ मन्त्र है। टीकाकार के अनुसार सेतु बँध जाने पर वानर सेनापति वानरों को लङ्का पर चढ़ाई करने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं।

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं
जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया
जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ।। १२७ ।।

उरुमिति ।। समुद्रतरणानन्तरं राक्षसैः सह युद्धे प्रवृत्ते भो नराः नररूपिणौ युवां यज्ञाय देवहिताय उरुं महान्तं लोकं रक्षस्तमोनाशनेन प्रकाशांचक्रथुः, उ निश्चितं यतः सूर्यादीनां जनयितारौ युवाम्, तथा दासस्य रावणस्य मायाः नागपाशबन्धाद्याः जघ्नथुः नाशयामासथुः युवां वृषशिप्रस्य महोक्षसदृशशरीरस्य पृतनाज्येषु; पक्षे, यज्ञोपयोगाय माया लयविक्षेपरूपाः ।। १२७ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे नररूपधारी आप दोनों (राम-लक्ष्मण) देवताओं के हित के लिए विस्तृत लोक को, राक्षस रूपी अन्धकार के विनाश से प्रकाशित करेंगे। भीषण युद्धों में वृषभ की तरह ओंठ (थूथन) वाले दास (नीच रावण) की माया (राक्षसी वृत्तियों) का संहार करेंगे।। १२७ ।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के सातवें मण्डल के निन्यानबेवें सूक्त का चौथा (मन्त्र) है। टीकाकार के अनुसार रामलक्ष्मण द्वारा भावी राक्षससंहार की सूचना दी गयी है।

हरयो धूमकेतवो वातजूता उपद्यवि।
यतन्ते पृथगग्नयः ।। १२८।।

हरयं इति।। हरयो वानराः धूमवत् धूसराः केतुवदूर्ध्वीकृतानि पुच्छानि यैस्ते धूमकेतवः, वातो जूतो अतिवेगात् प्रवर्तिता यैस्ते वातजूताः उपद्यवि अन्तरिक्षे यतन्ते। अन्तरिक्षचरान् राक्षसान् बाधितुं यत्नं कुर्वन्ति पृथक् पृथक् प्रत्येकमिति यावत्। अग्नयः अग्निवदितरनैरपेक्ष्येण सर्वं राक्षसकुलं दग्धुं क्षमा इत्यर्थः। पक्षे, हरय इन्द्रियाणि हार्दाकाशे यतन्ते प्रवेष्टुमिति शेषः। अग्निवन्निर्दोषाः।। १२८।।

हिन्दीभाषानुवाद - धूसरवर्ण वाले, पताका की तरह अपनी पूँछों को ऊपर किए हुए, वायु अथवा वायुपुत्र हनुमान् से प्रेरित अतः अत्यन्त वेगशाली वानरगण पृथक् पृथक् अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले राक्षसों पर प्रहार करते हैं और उन्हें अग्नि की तरह जलाने में समर्थ हैं।। १२८।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के आठवें मण्डल के तैंतालीसवें सूक्त का चौथा (मन्त्र)है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश।। १२६।।

रूपमिति।। रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। यावन्ति राक्षसानां रूपाणि तावन्ति तत्प्रतिकूलानि रूपाणि दधारेत्यर्थः। तदस्य रामस्यानेकरूपत्वं प्रति चक्षणाय विरोधिरूपान्तरप्रत्याख्यानाय। न तु राम एव विश्वरूपोऽस्ति, अतस्तेषु रूपेषु स्वावयवेष्विव अन्योऽन्यं बाध्यबाधकभावो न युक्त इत्याशङ्क्याह-इन्द्र इति।। इन्द्रो रामः पाशान्यायेन बहुवचनमवयवाभिप्रायम्। तथा च सत्त्वप्राधान्येन देवरूपः, रजःप्राधान्येन असुररूपः, तमःप्राधान्येन राक्षसरूप इति पुरुरूपो बहुरूप ईयते गम्यते। यथा सर्वरसोपादानस्यापि जलस्य स्वाभाविकं माधुर्यमिक्षुद्राक्षादिष्वतिशयेनाभिव्यज्यते। निम्बुमरिचादिषु तदभिभूयौपाधिकमम्लकटुत्वादिकं प्रथते तद्वदिदं द्रष्टव्यम्। अतस्तेषां बाध्यबाधकभावो युज्यत एव। हि यस्मात् अस्य इन्द्रस्य दशशता सहस्रम् अनन्ता इत्यर्थः। हरयो वानरा राममनोऽनुवर्तिनः कायव्यूहे योगिशरीरान्तरवद्युक्ताः सन्नद्धाः दृश्यन्त इति शेषः। राम एव सर्ववानररूपोऽभवदित्यर्थः। तथा च श्रुतिः- 'अयं वै हरयोऽयं वै दश च शतानि च सहस्राणि च बहूनि चाऽनन्तानि च' इति। पक्षे, देवासुराः शमकामादयः, इन्द्र आत्मा, हरय इन्द्रियवृत्तयः शेषं समानम्।। १२६।।

हिन्दीभाषानुवाद - राक्षसों के प्रत्याख्यान के लिए राम ने भी एक-एक राक्षस के रूप के विरुद्ध उतने ही रूप धारण किये। अपनी (योग) माया से राम अनेक रूप धारण करते हैं। सहस्रों वानर राम के अनुवर्ती हैं और सभी वानरों के रूप में राम ही अवस्थित हैं।। १२६।।

टिप्पणी - यह मन्त्र ऋग्वेद के छठें मण्डल के सैतालीसवें सूक्त का अठारहवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में राम की विभुता का ख्यापन करते हुए कहा गया है कि वानरों के रूप में स्वयं राम ही विद्यमान हैं और राक्षसों के प्रत्याख्यान के लिए जो राक्षस जिस रूप में था, राम भी प्रत्येक राक्षस के लिए वैसे ही रूप में हो गए। राम अपनी माया के बल से सर्वसमर्थ हैं।

यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम्।
वधीदुग्रो रिणन्नपः।। १३०।।

य इति।। यो रामः सृबिन्दं सरंति पतन्ति बिन्दुवद्वर्तुलाः शिरोरूपा अवयवा यस्य स सबिन्दवः। अदन्तत्वम् आर्षम्। अत एवानर्शनिम् अगतिकम्। ऋष गतिस्तुत्योरित्यस्य सौत्रस्य धातोरिदं रूपम्। पिप्रुमिव पिप्रुं शरीस्थचर्म कीलवज्जगत्यां मष्याकारचिह्नरूपं दासं रावणं सर्पवत् सविषोच्छ्वासं वधीत् अवधीत्। उग्रः यतः सामुद्रीरपि रिणन् सेतुकरणेन हिंसन्, तस्य कृतानि प्रवोचतेति पूर्वमन्त्रगतेनान्वयः। सृबिन्दादयः पञ्चराक्षसा इति भाष्यम्। पक्षे, सृबिन्दं निर्वीर्यम्, अनर्शनिं चित्तनिरोधादगतिकम्, पिप्रुं प्रसर्पणशीलं लोभकुम्भकर्णम्, दासं दस्यत्युपक्षिणोतीति कामरावणम्, अहीशुवम् क्रोधेन्द्रजितं च अपः देहं रिणन् प्रविलापयन् योऽवधीत्, तस्य योगिनः कृतानि।। १३०।।

हिन्दीभाषानुवाद - जिस उग्र राम ने समुद्र पर सेतु बाँधकर, बिन्दु के समान टपकने वाले शिरोऽवयव वाले, अगतिक, शरीर के मस्से के समान जगत् के कील-रूप, सर्प के समान फुफकारने वाले नीच रावण को मार डाला।। १३०।।

टिप्पणी -प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के आठवें मण्डल के बत्तीसवें सूक्त का दूसरा (मन्त्र) है।

भद्रो भद्रया सचमान आगात्
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठ-
न्नुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्।। १३१।।

भद्र इति।। भद्रः रामभद्रः सीतया सह सचमानः सज्जमानः आगात् दण्डकारण्यमित्यर्थात्। स्वसारम् अङ्गुलयः स्वसारः तद्वन्तं सीतायाः पाणिं ग्रहीतुं जारो

रावणः पश्चात् रामात्परोक्षे अभ्येति आगत इति पूर्वोक्तानुवादः। ततो रावणे हते सति, 'जाया गार्हपत्य' इति श्रुतेः। जायासहचरोऽग्निः, द्युभिः द्युलोकसाधनतया द्युशब्दवाच्यः, रामदारैः सह रामं रामस्याभिमुखम् अस्थात् स्थितवान्, सुप्रकेतैः शोभनचिह्नैरिति दारनिर्दोषत्वं सूचितम्, वितिष्ठन्नस्थादिति सम्बन्धः तिष्ठन्नासीदित्यर्थः। उशद्भिर्दीप्यमानैः वर्णैः लोहितादिवर्णज्वालाभिरूपलक्षितः, अयं चार्थः- पुनः पत्नीमग्निरदादिति मन्त्रान्तरेऽपि दृष्टः। पक्षे, भद्रो बोधः, भद्रया श्रद्धया, जारः कामः, अग्निर्वाक्।। १३१।।

हिन्दीभाषानुवाद - श्रीरामभद्र सीता के साथ (वनवास के लिए) तैयार हो कर दण्डकारण्य में जब आए थे, तब (राम की अनुपस्थिति में) कपटवेश में कामुक रावण सीता का हरण करने के लिए आया था। उस समय अग्निदेव ही सीता के साथ थे। अब रावण के मर जाने पर जब अग्निदेव सुन्दर चिह्नों और देदीप्यमान वर्णों से सुशोभित हो, द्युलोक साधनभूत सीता के साथ (सीता का निर्दोषत्व सिद्ध करने के लिए) राम के सम्मुख उपस्थित हुए।।१३१।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के तीसरे सूक्त का तीसरा (मन्त्र) है। इसमें रामकथा के एक पूर्ववृत्त का उल्लेख है। जब रावण सीताहरण के लिए पञ्चवटी में गया था, उससे पूर्व ही राम ने सीता को अग्निदेव को सौंपकर प्रकटतया छाया सीता को पर्णशाला में रख छोड़ा था। रावण ने इसी छायासीता का हरण किया था। रावण के मारे जाने पर अग्निदेव सीता को लेकर उसकी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिए और उसे राम को सौंपने के लिए उपस्थित हुए हैं।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽ-
कूपारः सलिलो मातरिश्वा।
वीळहुरास्तप उग्रो मयोभू-
रापो देवीः प्रथमजा ऋतेन।। १३२।।

तेऽवदन्निति।। ते प्रसिद्धाः देवर्षयोऽग्निना आनीतायाः सीतायाः ब्रह्मकिल्बिषे ब्रह्मचर्यक्षरणाख्ये दोषे विषये ऋतेन सत्यशपथेन अवदन्, इयं निर्दोषेति शपथपूर्वकं राममवदन्नित्यर्थः। ते के? अकूपारः समुद्रः सलिलो निर्मलः सलिलाधिपो वा, वीळहुराः कालचक्रचालकाः निमेषाद्यधिष्ठायो देवताः, तपो धर्मः, उग्रः, मयः सुखं भवत्यस्मादिति मयोभूर्वातः, आपः शरीरम्, तच्चिह्नानि वेत्यर्थः।। १३२।।

हिन्दीभाषानुवाद - अग्निदेव के द्वारा लाई गयी सीता के ब्रह्मचर्यविषयक दोष के सम्बन्ध में, प्रमुख प्रसिद्ध देवर्षियों, समुद्र, जल के अधिष्ठातृदेवता, वायु, कालचक्र के चालक निमेषादि ने, राम से कहा कि सीता निर्दोष है। उन्होंने सत्यसङ्कल्प (शपथ) पूर्वक कहा

कि इस अयोनिजा देवी के शारीरिक चिह्नों से प्रमाणित है कि इन्होंने उग्र तप (धर्माचरण) किया है और ये निर्दोष हैं।। १३२।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एकसौनौंवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। इसमें साक्षी देवताओं ने राम को सीता की शुद्धि का प्रमाण दिया है।

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां
पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसी-
दग्निर्होता हस्तगृह्यानिनाय।। १३३।।

ते किमवदन्तित्यत आह-सोम इति।। प्रथमो राजा सोमः ब्रह्मजायां बृहस्पतिभार्यां पुनः हृत्वा तस्यां पुत्रमुत्पाद्य पश्चात् प्रायच्छत् दत्तवान्, अहृणीयमानः अनिन्द्यमान इतरैः तारायां पातिव्रत्येन स्वकृतदोषाभावात् तस्याश्च अन्वर्तिता अनुग्रन्ता वरुणो मित्र आसीत्, अग्निर्होता एनां हस्तगृह्य हस्ते गृहीत्वा आनिनाय। तस्मात्तारावदियं स्वयमदुष्टा त्वया स्वीकार्येतिभावः।। १३३।।

हिन्दीभाषानुवाद - पहले राजा सोम के द्वारा बृहस्पति की पत्नी का हरण किया गया और फिर लौटाया गया। दूसरों के द्वारा तारा के पातिव्रत दोष के अभाव से निन्दा नहीं हुई। वरुण-मित्र ने इस निर्दोष तारा का अनुगमन किया। सीता को भी होता अग्नि हाथ पकड़कर लाये हैं, यह निर्दोष है, अतः यह आपके द्वारा स्वीकार्य है।।१३३।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (१०.१०६.२) है। इसमें उन देवर्षियों द्वारा बृहस्पतिभार्या का पुरा वृत्तान्त देकर राम से सीता को स्वीकार करने का अनुरोध किया गया है।

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या
ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्येतस्थ एषा
तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य।। १३४।।

हस्तेनेति।। अस्या हस्तेनैव ग्राह्यः ग्रहणं तदेव आधिः दुःखं जातं न तारावत् सङ्गेन यतः सर्वे देवाः ब्रह्मजाया ब्रह्मचर्यवती परभार्येयमिति चाऽवोचन् इत एव अनिच्छन्तीमेनां धर्षयतस्तव नलकूबरशापनाशो भविष्यतीत्यवदन्नित्यर्थः। अतो हेतोः दूताय पार्षदाय रावणाय प्रह्ये प्रकर्षेण जिहीत इति प्रहीस्तस्मै, वेगेन गच्छते एषा न तस्थे न तमनुसृतवती, तथा तेन प्रकारेणाऽनया क्षत्रियस्य रामस्य राष्ट्रोपलक्षितं कुलधर्मादिकं गुपितं रक्षितम्।। १३४।।

हिन्दीभाषानुवाद - रावण ने इसका हाथ पकड़ा - यही इसके लिए बड़ा भारी दुःख है और यह ब्रह्मचर्यवती है - ऐसा सबने इसके लिए कहा है। शीघ्रतापूर्वक जाते हुए आपके पूर्वपार्षद रावण का इसने अनुसरण नहीं किया और इस प्रकार क्षत्रिय आप (राम) का कुलधर्म सुरक्षित है।। १३४।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह तीसरा मन्त्र (१०.१०६.३) है। इसमें पूर्वमन्त्र का ही अर्थानुवाद है।

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे
सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता
दुर्धां दधाति परमे व्योमन्।। १३५।।

देवा इति।। एतस्यां निमित्तभूतायां भीमा मृत्युप्रदा उपनीता बलाद्गृहीता ब्राह्मणस्य ब्रह्मविदः दुर्धां नरकयातनां दधाति परमे व्योमन् परलोके।। १३५।।

हिन्दी भाषानुवाद - जो सप्तर्षिगण तपस्या करने के लिए बैठें हैं और जिन देवताओं को पहले यह दिखाई पड़ीं, उन सभी ने इनकी वन्दना की है। यह सीता बलपूर्वक हरण करने वाले ब्राह्मण रावण के लिए मृत्युप्रदा है और परलोक में नरकयातना प्राप्त कराने वाली है।। १३५।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का चह चौथा मन्त्र (१०.१०६.४) है। इसमें कहा गया है कि सीताहर्ता रावण मरने के बाद परलोक में भी नरकयातना भोगेगा।

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः
स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः
सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः।। १३६।।

ब्रह्मचारीति।। ब्रह्मचारी प्राणः स्वाभाविकसङ्गृहीतः विषो व्याप्याः प्रजाः वेविषत् व्याप्नुवन् एकं मुख्यं अङ्गं चक्षुः तेन प्रमाणभूतेन जुह्वं न जुह्वस्थहविवत् शुद्धाम्।। १३६।।

हिन्दीभाषानुवाद - देवताओं का विषतुल्य (प्रबल विरोधी शत्रु) वह ब्रह्मचारी (संन्यासी वेषधारी) रावण (सीता का अपहरण करने के लिए) चारों ओर व्याप्त होता हुआ (दृष्टि डालता हुआ) जाता है (गया)। जिस प्रकार देवगण अग्नि में आहुति की गयी हवि को प्राप्त करते हैं और उस राजा सोम के द्वारा लाई गयी भार्या (तारा) को जैसे बृहस्पति

ने स्वीकार किया, वैसे ही आप भी सीता को स्वीकार कर इसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाइए।। १३६।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह पाँचवाँ मन्त्र (१०.१०६.५) है। इसमें भी पूर्व मन्त्रार्थों का ही अनुवर्तन है।

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ।। १३७।।

पुनरिति।। देवा अग्न्यादयः, मनुष्याः दशरथादयो राजानः इन्द्रयमवरुणसोमाः सत्यं शपथं कृण्वानाः ददुः रामायेति शेषः ।।१३७।।

हिन्दीभाषानुवाद - अग्नि आदि देवों ने, मनुष्यों (ऋषियों-मुनियों) ने और फिर विषीषण सुग्रीवादि राजाओं ने सत्य शपथ करते हुए सीता को पुनः राम के लिए दे दिया।। १३७।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह छठाँ मन्त्र (१०.१०६.६) है। यह भी पूर्ववर्ती मन्त्रों का पूरक है।

मन्त्र १३५, १३६ और १३७ में आये हुए 'मनुष्याः' का अर्थ संस्कृत टीकाकार ने 'राजानः' के साथ मिलाकर 'मनुष्याः दशरथादयो राजानः' अर्थात् 'मनुष्य दशरथ आदि राजाओं ने' किया है। यह अर्थ उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि यहाँ सीता के पुनः ग्रहण किये जाने का प्रसङ्ग है। राम के वनवास के फलस्वरूप दशरथ स्वर्गवासी हो चुके हैं और यह घटना उसके चौदहवें वर्ष में रावणवध के पश्चात् घटित हो रही है। ऐसी स्थिति में दशरथ के उपस्थित होने की प्रासङ्गिकता नहीं है। कदाचित् यदि वे स्वर्ग से आकर उपस्थित हों भी तो वे उस समय राजा नहीं होंगे।

अतः देवों, मनुष्यों और राजाओं का सन्दर्भ पृथक्-पृथक् ग्रहण किया जाना समीचीन होगा।

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम्।
ऊर्जं पृथिव्या भक्तायोरुगायमुपासते।। १३८।।

पुनर्दायेति।। विवाहापेक्षया इदानीं पुनर्दत्वा देवैर्निकिल्बिषं निर्दोषं यथा स्यात्तथा कृत्वी कृत्वा दत्त्वा च उरुगायं महाकीर्तिम् उपासते देवर्षयः। कथम्भूतम्? पृथिव्याः ऊर्जमन्नाद्यं भक्ताय विभज्य विभीषणसुग्रीवलक्ष्मणादिभ्यो राज्यानि विभज्य देवब्राह्मणा यज्ञार्थं च विभज्य स्थितमिति शेषः ।। १३८।।

हिन्दीभाषानुवाद - सीता को निर्दोष प्रमाणित कर और विवाह के पश्चात् इस समय उन्हें पुनः राम को देकर देवों-ऋषियों ने महान् यश प्राप्त किया। पृथ्वी के राज्य को

विभीषण, सुग्रीव, लक्ष्मण आदि में बाँटकर श्रीराम सुखपूर्वक रहने लगे।। १३८।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र (१०.१०६.७) है। इस मन्त्र में पूर्वागत अर्थ का उपसंहार है।

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ
आदिदेताः प्रविविज्रे जवेन।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रेऽ-
थैता न रमन्ते नितिक्ताः।।१३९।।

तत्र प्रथमं प्रकृतैरेव कर्मभिरुपासकाः स्तुवन्ति- सृज इति। सिन्धून् समुद्रान् सप्तचतुरो वा अहिना रावणस्य कालसर्पेण जग्रसानान् ग्रस्तान् सृज असृजः अभयदानेन पुनः सृष्टवानसि। तथा- आदित् अस्मादेव रावणात् एताः सिन्धुभार्याः नद्यः प्रविविज्रे प्रकर्षेण भीताश्चलितवत्यः जवेन वेगेन; तथा- मुमुक्षमाणा रावणकारागारादात्मनो मोक्षमिच्छन्तो मुमुच्रे मुक्ताः; अथ अन्यदा एता देवताः न रमन्ते इति एव यतः नितिक्ताः नितरां कटुकाः शोकोपहतरसाः इदानीं सम्यगवर्तन्त इत्यर्थः। पक्षे, सिन्धून् मैयादीन्, यमनियमप्राणायामप्रत्याहारसंयमतर्कान् वा पूर्वोक्तान्, एताः शमदमादयः, मुमुक्षमाणाः जीवा अहिना मोहेन।। १३९।।

हिन्दीभाषानुवाद - (श्रीराम ने) रावणरूपी दानवसर्प से ग्रस्त समुद्रों को अभय प्रदान कर यथास्थित किया। नदियाँ रावण के भय से अति तीव्र वेग से प्रवाहित होती थीं (उन्हें भी यथापूर्व प्रवाहवती कर अभय दान दिया)। जो देवता रावण के कारागार में उस समय शोकोपहत होकर कभी प्रसन्न नहीं रहते थे, उन मोक्षार्थी देवों को भी कारागार से मुक्त कर सुखी बनाया।। १३९।।

टिप्पणी - यह मन्त्र, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एक सौ ग्यारहवें सूक्ता का नवाँ (मन्त्र) है। राम द्वारा उन सबको अभय दिए जाने का वर्णन है जो रावण द्वारा त्रस्त और निरुद्ध थे।

सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवाय-
न्त्सनज्जार आरितः पूर्भिदासाम्।
अस्तमाने पार्थिवावसून-
यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः।।१४०।।

सीता रामं प्रत्युपगतेत्यन्यापदेशेनाहुः - सध्रीचीरिति।। सध्रीचीः सहधर्मचारिण्यः पूजार्थं बहुत्वम्। सिन्धुं समुद्रवदापारं रामम् उशतीरिव कामयमाना नद्य इव आयन्

आगताः, आसां जारो रावणः सनत् सर्वदा पूर्मित शरीरशोषणो यः सः आरितो हिंसितः। पक्षे, समूले कामे हते श्रद्धादयो ब्रह्मात्रिमुखं प्रापुरित्यर्थः। हे इन्द्र हे राम ते तव अस्तं गृहम् अयोध्यां हार्दाकाशं वा पार्थिवानि वसूनि सर्वे कामा आजग्मुः अस्मे अस्मांश्च त्वद्दर्शिनः पूर्वी सूनृताः वेदस्य वाचः ' एष सर्वेश्वरः' इत्यादयः 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादयो वा आजग्मुः। ब्रह्मभावेन बहिर्भवन्तं हार्दाकाशे चात्मानं त्वां पश्याम इत्यर्थः।।१४०।।

हिन्दीभाषानुवाद - जिस प्रकार नदी समुद्र के पास जाती है, उसी प्रकार सहधर्मचारिणी सीता (राम को) चाहते हुए, सिन्धु के समान अपार महिमा वाले राम के पास आई। सीता के प्रति कामभाव रखने वाला शरीरशोषक रावण मारा गया। हे राम, तुम्हारे घर अयोध्या में सभी भौतिक धन-ऐश्वर्य भरे हुए हैं और आपको जानने वाले हमारे हृदय में आपके लिए वेदवाणी प्रादुर्भूत हुई अर्थात् हम अपने हार्दाकाश में आपका ब्रह्मरूप में साक्षात्कार करें।। १४०।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दसवाँ मन्त्र (१०.११.१०) है। इसमें भी पूर्ववर्ती मन्त्रार्थों का अनुवर्तन हुआ है।

सचन्त यदुषसः सूर्येण
चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्।
आयन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न
पुनर्यतो न किरद्धानुवेद।। १४१।।

ईदृशज्ञाने हेतुमुपासनामाह- सचन्त इति।। केतवो ज्ञानवन्तोऽस्य रामस्य रासं पदम् ऋचः सामानि यजूंषि - 'सा हि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतां त्रयीं तत्सारभूतप्रणवरूपां शब्दतोऽर्थतश्चाविन्दन्, यस्त्वत्र शब्दमय्यां सम्पदि उकारो नास्तीति मन्यते, तं प्रत्येवं वदेत्, यत् यतः उषसः उषसम् उषोवदल्पप्रकाशं विराजं अकाररूपं सूर्येण पूर्णप्रकाशेन हिरण्यगर्भेण उकाररूपेण सचन्त ऐक्यमनयन्, कार्यत्वसामान्यादकार-मध्ये एव उकारस्यान्तर्भावो बोध्यः। एवमपि अमित्येवापेक्षितं न तु रामित्यत आह - चित्रामिति।। चित्रभानुत्वाच्चित्रो अग्निः रेफः सोऽस्यामस्तीति चित्रा सस्वरशब्दवर्ती ततः सवर्णदीर्घे रामित्यर्थः। चित्रशब्दान्मत्वर्थीये अर्श आद्यचि टाप्। एवं च रेफार्थे नाग्निनाचिदाभासेन सहितानि समष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणानि रामित्यनेन दर्शितानि, अर्द्धमात्रा तु प्रणवदत्राप्यन्तरस्ति, यां रां केतवोऽविन्दन् सा पुनर्ददृशे रामिति रेफाकारमकाराः पुनर्दृश्यन्त इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तो - दिवो नेति। नेत्युपमार्थः। दिवः स्वप्नाः स्वल्पं प्राप्य यथा जाग्रद्दृष्टमेवार्थजातं पुनस्तत्सदृशं दृश्यते, तद्वत्समष्टित्रयवाचकात् रांपदात् क्रमेण सदृशव्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकरणवाची रामिति पदं पुनः पठेदित्यर्थः। अस्य विशेषणम्-

आयन्नक्षत्रमिति।। आ इति स्वरूपं य इवाचरतीति यत् आचारक्विबन्तात् यत् प्रातिपदिकात् कर्तरि क्विबिति तस्मिंस्तुक्। तेन य इति स्वरूपं सिद्धम्। इदं वर्णद्वयं द्वितीयेन रामित्यनेन सह पठितं चेत् रामायेति चतुर्थ्यन्तं नाम भवति, नक्षत्रपदेन मुख्यत्वाच्चन्द्रः तेनाऽस्य कारणम्– 'हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमाः' इति श्रुतिप्रसिद्धं हृदयं गृह्यते। यथा– 'ता अन्नमसृजन्त' इत्यन्नशब्देन पृथिवी तद्वत् तेनागमप्रसिद्धो हृदयशब्दार्थो नमः शब्द उद्धृतो भवति। एषां सर्वेषां वर्णानां सङ्कलनेन 'रां रामाय नमः' इति उद्धृतो वेदितव्यः। एतत्फलमाहयतो नकिरद्धानुवेदेति। यत इति तस्य यतमानस्य यतेः नकिः न किरति इतस्ततो विक्षिप्यत इति नकिः अविक्षिप्तं मनः अद्धा साक्षात् नु निश्चितं वेद जानाति एनं मन्त्रं जपन्नेतदर्थं मनसा साक्षात् करोतीत्यर्थः। 'मनसैवेदमाप्तव्यम्' इति श्रुतेः। मन्त्रार्थस्तु रां रां चासौ आश्चेति रां रामः तस्मै रामाय नमस्करोमि प्रह्वो भवाम्यहम्– 'तत्राकारे वै सर्वा वाग्' इति श्रुतेः। अर्धमात्रागर्भितौ सामासौ व्यष्टिसमष्टित्रिकौ अकारार्थः ईप्सिततमत्वं चतुर्थ्यर्थः। तच्च तत्रान्वितमपि नान्तः प्रज्ञमित्यादि –'स आत्मा स विज्ञेयः' इत्यन्तश्रुत्या इतरेषां द्वादशानां निरस्तत्वेनार्ध मात्रार्थे त्रयोदश एव पर्यवस्यति। तेन नम्यत्रयं नन्तृत्रयं नतिश्चैतेषां प्रकाशार्थं यदीप्सिततममर्धमात्राख्यं वस्त्वहमस्मीति तत्र 'नान्तःप्रज्ञाम्' इति सौत्रस्य चिदाभासस्य निरासः– 'न बहिःप्रज्ञम्' इति वैराजस्य नोभयतः प्रज्ञमित्युपहितानुपहितोभयस्वरूपदर्शिन ऐश्वरस्य न प्रज्ञामिति तत्सदृशत्वेऽपि तदन्यस्य तैजसीयस्य – 'न प्रज्ञानघनम्' इति विशेषविज्ञानहीनस्य प्राज्ञीयस्य, तथा– 'अदृष्टम्' इति दृष्टसजातीयस्य सौत्रस्योपाधेः 'अव्यवहार्यम्' इति व्यवहारार्हस्य बैजोपाधेः, 'अग्राह्यम्' इति योगिग्राह्यस्यैश्वरोपाधेः, 'अलक्षणम्' इति विशेषलक्षणवतो वैश्वोपाधेः, 'अचिन्त्यम्' इति चिन्तानिर्वतर्यस्य तैजसोपाधेः, 'अव्यपदेश्यम्' इति 'न किञ्चिदवेदिषम्' इति व्यपदेशार्हस्य प्रज्ञोपाधेः, 'ऐकान्त्यप्रत्ययसाह्यम्' इति षण्णामाभासानां प्रपञ्चोपशममिति षण्णामुपाधीनाम् अद्वैतमिति सर्वेषां निरासः। शिवमित्यर्थमात्रार्थानन्दमात्रस्य परिशेष इति विभागो ज्ञेयः।। १४१।।

हिन्दीभाषानुवाद – (इस प्रकार के ज्ञान का हेतु उपासना है, अतः उपासना के विषय में कहते हैं–) ज्ञानियों ने राम के 'राम' इस पद को, त्रयी (ऋक्, साम, यजुः) के सारभूत 'प्रणव' के रूप में शब्दतः – अर्थतः प्राप्त कर लिया क्योंकि उषा की तरह अल्पप्रकाशरूप 'अकार' विराज ने पूर्णप्रकाश रूप सूर्य अर्थात् उकाररूप हिरण्यगर्भ से ऐक्य प्राप्त कर लिया। रेफ रूप अग्नि से मिलकर वह सस्वरशब्दवान हो गया और जैसे जाग्रदवस्था में दिखाई पड़ा हुआ, स्वप्न में दिखाई पड़ने पर तत्सदृश ही होता है वैसे ही ज्ञानियों ने पुनः राम को देखा। वह राम ज्ञानियों के हृदय में प्रविष्ट होकर एकाग्र मन के द्वारा अन्यत्र नहीं विक्षिप्त हुआ और इस प्रकार ज्ञानियों ने उस राम को जाना अर्थात् प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया।। १४१।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह सातवाँ मन्त्र (१०.१११.७) है। टीकाकार ने इस मन्त्र का स्पष्टार्थ न करके अत्यन्त विस्तृत और अस्पष्ट टीका की है, जिससे स्पष्टार्थ का बोध होने में बड़ी कठिनाई है। मन्त्रार्थ प्रकृत प्रसंग से भी कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं रखता। शब्दव्युत्पत्ति के साथ प्रतीकार्थों की योजना करते हुए टीकाकार ने दुरूह शैली में मन्त्र व्याख्या प्रस्तुत की है। श्रुतियों के उद्धरण और तन्त्रोपासना की प्रविष्टि के कारण टीका अत्यन्त क्लिष्ट और बोझिल हो गयी है। जिन्हें श्रुति-परम्परा, तन्त्रोपासना और उनके रहस्य का ज्ञान नहीं है उन्हें इस मन्त्र की टीका दुर्ज्ञेय ही है। संस्कृत टीका को टटोल कर यथा-मति मन्त्र का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त
रुद्र यत्तेजनिम चारु चित्रम्।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि
तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्।। १४२।।

एतस्य मुख्यमुपासकं रुद्रं स्तुवन्ति- तव श्रिय इति।। हे रुद्र हे हनुमान्, तव श्रिये त्वदधिगतसम्पत्प्राप्त्यर्थं रामविद्यावाप्त्यर्थं मरुतो देवः मर्जयन्त शोधयन्ति, तपोध्यानादिनात्मानं यत् यतस्ते तव जनिम जन्म चारु रम्यं यतस्त्वया चित्रं पदं रेफाख्येणाग्निना युक्तं, 'चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्' इत्युदाहृतमन्त्रे प्रसिद्धं रामित्येवं रूपं विष्णोरूपमं विष्णुवाचकस्य पदस्य समीपे दृश्यमानं यथा स्यात्तथा निधायि न्यधायि निहितम्। अत्र, 'गं गणपतये नमः, दुं दुर्गायै नमः' इति मन्त्रशास्त्रमर्यादया रामित्यस्य समीपे सपूर्वकमेव विष्णुवाचिपदं निधेयम्- तच्च राघवादिपदेभ्यः शीघ्रतरं रामपदमेव वर्णसाम्याधिक्यादुपस्थितं भवति, तेन रामपदेन सह नाम नमन्त्यनेनेति नाम नतिवाचिपदम्। उपासिनामविशिनष्टि गोनां गुह्यमिति। गोनामिन्द्रियाणां गूहनस्थानं हृदयमित्यर्थः। तेन हृदयशब्दितं नमः पदमुद्धृतं भवति, तद्योगाच्च रामपदादपि चतुर्थी भवति, तेन 'रां रामाय नमः' इति यक्षराण्युद्धृतानि भवन्ति। यतस्त्वया चित्रं पदं विष्णोरूपमं निधायि, यतश्च तेन सह गोनां गुह्यनाम पासि, अतस्ते जनिम चार्वित्यन्वयः।। १४२।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे रुद्रावतार हनुमान्, तुम्हारे द्वारा अधिगत रामविद्यारूपी सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए देवता भी अपने को तपोध्यानादि के द्वारा शुद्ध करते हैं (सर्वात्मना प्रयत्न करते हैं)। इस रामविद्या को अधिगत करने से तुम्हारा जन्म सुन्दर (सफल) हो गया है। तुम राम के समीप (सदृश) जिस विचित्र (श्लाघ्य) स्थान को धारण करते हो, उससे इन्दियों के गुह्य नाम (हृदय) की रक्षा करते हो अथवा हृदय में रखकर उसकी उपासना करते हो।। १४२।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के तीसरे सूक्त का तीसरा (मन्त्र) है। इस मन्त्र में हनुमान् की रामभक्ति की प्रशंसा करते हुए उसे श्लाघ्य कहा गया है। यहाँ भी मन्त्रशास्त्र की मर्यादा का सङ्केत करते हुए रामोपासना का निर्देश दिया गया है तथा पूर्वमन्त्र के ही तत्त्वार्थ को उदाहृत किया गया है।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं
कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्र।
अहं कुत्सामार्जुनेयं पृञ्जेहं
कविरुशना पश्यतामा।। १४३।।

एवं राममुपासीनो रामतादात्म्याभिमानत्सार्वात्म्यं प्राप्तो वामदेवापरनामा रुद्रो रामविशेषणरेवात्मानं स्तौतीत्याह बृहदारण्यकश्रुतिः, तद्धेतत्पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे – अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति।। यस्मिन् वंशेऽहमुत्पन्नस्तत्प्रवर्तकौ मनुसूर्यावहमेवाभवम्, यश्च मदवतारनिमित्तं दशरथेन तोषितः कक्षीवान् ऋषिर्विप्रो दीर्घदर्शी भाविकार्यज्ञः सोऽप्यहमेवास्मि, अहम् आर्जुनेयपुत्रं कुत्सं कुत्सनामानं पृञ्जे अर्जुन्याः पुत्रं पूर्वबालत्वादपक्वमेव मृतं सन्तं नितरां भर्जितवानस्मि दीर्घायुष्य प्रदानेन बहुतरतपनपरिस्यन्दसंसर्गात् शिथिलतरत्वचं कृतवानस्मीत्यर्थः। तथा कतेः पिता भृगुः 'अन्नं विराट्' इतिवत्कारणे कार्योपचारः, तव भार्याम् अन्यो हरिष्यतीति मह्यं शापं ददद्यो भृगुः सोऽप्यहमेवेत्यर्थः। तथा नु उशना कवेः पुत्रः शुक्रो मच्छत्रूणां तेजो वृद्धिकरः सोऽप्यहमेव। अतो मा मां सर्वात्मानं श्रीरामभद्रं पश्यत भोः साधका इति शेषः।। १४३।।

हिन्दीभाषानुवाद - (जिस वंश में मैं अवतीर्ण हुआ हूँ, उस वंश के प्रवर्तक जो मनु और सूर्य हैं) वह मैं मनु हुआ हूँ और मैं ही सूर्य भी हूँ। मेरे जन्म के निमित्त यज्ञ कराने वाले जो कक्षीवान् ऋषि हैं, वह मैं ही हूँ। मैं ही आर्जुनेय पुत्र कुत्स ऋषि हूँ, मैं ही भृगु हूँ और मैं ही शुक्राचार्य भी हूँ। अतः हे विप्रो, सर्वत्र मुझे ही देखिए।। १४३।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के चौथे मण्डल के छब्बीसवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। इस मन्त्र में राम की व्यापकता का निदर्शन है। टीकाकार ने वृहदारण्यक उपनिषद् का सन्दर्भ देते हुए लिखा है कि वामदेव नामक रुद्र, राम के विशेषण के माध्यम से अपनी ही स्तुति कर रहे हैं। उन्होंने अपने को मनु, सूर्य, कक्षीवान्, कुत्स, भृगु और शुक्राचार्य बताते हुए वस्तुतः अपनी सर्वात्मकता प्रतिपादित की है। श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १०) में कृष्णावतार विष्णु ने अपनी विभूतियों का ख्यापन करते हुए वस्तुतः इसी मन्त्रार्थ का उपबृंहण किया है। तुलना कीजिए-'ज्योतिषां रविरंशुमान्', 'महर्षीणां भृगुरहं', कवीनामुशना कविः'। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में- 'सीय राम मय सब जग जानी।'

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासा-
मिन्द्रस्या याः प्रसवे सस्रुरापः।
क्व स्विदग्रं क्व बुघ्न आसा-
मापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः।। १४४।।

एवं जीवन्मुक्तस्य सार्वात्म्यमुक्त्वा विदेहमुक्तस्य कैवल्यमाह - दूरं किलेति।। प्रथमाः पूर्वे सनकाद्याः आसाम् आपो अद्भ्यः सकाशाद् दूरं जग्मुः, आपः इन्द्रस्यात्मनः प्रसवे सृष्टिकर्मणि प्रसस्रुः ब्रह्माण्डरूपेण प्रसृताः, सकारणे पिण्डब्रह्माण्डे परित्यज्य शुद्धं ब्रह्म प्राप्ता इत्यर्थः। अन्ये तु आसामपाम् अग्रम् अवसानप्रत्यासन्नो भागः क्वस्वित् तथा बुध्नो मूलं क्व मध्यं च क्व? भोः आपः वः युष्माकम् अन्तश्च नूनं निश्चितं क्व स्विदस्ति, तं जानीम इति भ्राम्यन्तीत्यर्थः।। १४४।।

हिन्दीभाषानुवाद - ब्रह्मा की सृष्टि में जो जल सर्वप्रथम प्रवाहित हुआ, प्रथम उत्पन्न हुए जीव उससे बहुत दूर चले गए अर्थात् जल से उत्पन्न उन प्रथम जीवों की सृष्टि का दूर-दूर तक विस्तार हुआ। इस जल का आदि कहां हैं? मूल कहाँ है? मध्य कहाँ है? और अन्त कहाँ है? - इसे तुममें से कौन निश्चित जानता है? (इसे केवल मैं ही जानता हूँ)।। १४४।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के एक सौ ग्यारहवें सूक्त का आठवाँ (मन्त्र) है। संस्कृत टीका के अनुसार जीवन्मुक्त की सर्वात्मकता कहने के पश्चात् इस मन्त्र में विदेहमुक्त का कैवल्य (मोक्ष) कहा गया है। किन्तु टीका में उस अर्थ का खींचतान कर प्रतिपादन किया गया है। इस मन्त्र की संगति रामकथा से दिखाई नहीं पड़ती और यह स्वतन्त्र ही प्रतीत होता है।

वस्तुतः इस मन्त्र में राम (विष्णु) के आश्रयरूप जल (जिसके कारण उनकी संज्ञा 'नारायण' है) के अनिर्वचनीय महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है और विष्णु का आधार (आश्रय) होने के कारण उसे भी सृष्टि का आदि तत्त्व और आदि कारण माना गया। मनुस्मृति में स्पष्टतः कहा गया है- 'अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्' (१.८)।

**प्रवः पान्तं रघुमन्यवोन्धो
यज्ञं रुद्राय मीळहुषे भरध्वम्।
दिवो अस्तोष्यासुरस्य वीरै-
रिषुध्येव मरुतो रोदस्योः।। १४५।।**

एवं सफलोपासनां समाप्य तत्प्राप्तिकामैस्तत् सम्प्रदायप्रवर्तको रुद्रोऽप्याराधनीय इत्याह - प्रवः पान्तमिति।। हे रघुमन्यवः रामव्रतवो रामोपास्तिकामा इति यावत्

मीढुषे विद्यामृतवर्षिणे रुद्राय यज्ञं भरध्वम्। कीदृशं यज्ञम्? वः युष्माकं अन्धः अन्नं तद्विकारं देहं मनश्च पान्तं रक्षन्तम्, 'अन्नमयं हि सोम्य मनः'- इति देहवन्मनसोऽप्यत्र विकारत्वं श्रुतम्। कीदृशमन्धः? यत् दिवः स्वर्गापेक्षयाऽपि अस्तौषि स्तुतं वेदे, 'ता अब्रुवन् सुकृतं बत'' इति मानुषदेहस्य देवताभिरपि पुण्यत्वेन स्तुतत्वात्। असुरस्य सुरां विनाऽप्यमरस्य ब्रह्मणो वीरैः पुत्रैः सनकादिभिरस्तौषीति सम्बन्धः। मरुतां बाणवदाशुगाः प्राणाः रोदस्योर्भुवि दिवि च वसतां पुंसां नृणां देवानां च इषुधौ निषङ्गे इव देहे अर्द्धनिष्क्रान्ताः सन्ति, इषुध्येति - सुप आच्। चञ्चलत्वाज्जीवितस्य शीघ्रं तारकप्राप्तरुद्रं यजेतेति भावः।। १४५।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे रामव्रती जनों! विद्यामृतवर्षी रुद्र के लिए यज्ञ करो जो तुम्हारे अन्नों (अर्थात् अन्नमय कोष देह) की रक्षा करता है। इस मनुष्य देह की स्तुति ब्रह्मपुत्र सनकादि भी करते हैं और जो भूलोक और द्युलोक में रहने वाले पुरुषों (देवों-मनुष्यों) के तरकश के समान है (अर्थात् जैसे तरकश में अर्धनिष्क्रान्त बाण रहते हैं, वैसे ही इन देहों के प्राण भी अर्धनिष्क्रान्त हैं।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के पहले मण्डल के एक सौ बाईसवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। इसमें रुद्र की यज्ञोपासना का निर्देश है और कहा गया है कि राम के उपासकों को रुद्र की भी उपासना अवश्य करनी चाहिए। रुद्र के उद्देश्य से किया गया यज्ञ मनुष्य के शरीर की रक्षा करता है। जैसे तरकश में अर्धनिष्क्रान्त बाण रहते हैं वैसे ही मनुष्य के प्राण भी शरीर से अर्धनिष्क्रान्त ही रहते हैं। वे कब निकल जाँय इसका कोई ठिकाना नहीं। अतः जीवन की अनित्यता और अनिश्चय के कारण शीघ्र ही रुद्र का यजन करते हुए अपने जीवन की रक्षा करनी चाहिए।

हिरण्यकर्णम्मणिग्रीवमर्ण-
स्ते नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आजग्मुषी-
रुस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे।। १४६।।

अनिज्यमानोऽपि रुद्रो देशविशेषे कालविशेषे च कारुणिकत्वात्तारकं जनमात्रस्योपदिशतीति अत्र हि जन्तोः प्राणेषु प्रयाणेषु रुद्रः तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षीभवतीति अविमुक्तं प्रकृत्य जाबालाम्नातमर्थम् ऋषिराह- हिरण्यकर्णमिति।। हरणात् हिरण्यं तारकं महावाक्यं कर्णे पतति, येन तत् हिरण्यकर्णं मणिः आत्मतत्त्वं ग्रीवास्थेन उत्क्रममाणप्राणेन लभ्यते यत्र तत् मणिग्रीवम्, अर्णो जलं नोऽस्माकं विश्वेदेवाः सर्वाणीन्द्रियाणि वरिवस्यन्तु सेवन्ताम्। अत्राहोरात्रपदयो पूर्वापरवर्णलोपात् होरापदमिव हिरण्यकर्णमणिग्रीवपदयोरपि पूर्वापरावयवलोपेन मणिकर्णपदं

निष्पन्नं स्त्रीत्वं लोकात्, तेन मणिकर्णिका रूपमर्णोऽत्र ग्राह्यम्। पदद्वयस्यैकस्वर्यपाठेनाङ्गाङ्गिभावावगमात्। तत्त्वज्ञानस्य वाक्यकारणकत्वेन तदर्थयोरपि तथात्वावगमाच्च अतोऽत्रार्णः शब्देन तदभिमानिनीं देवतामालक्ष्य तस्यां च विग्रहवत्त्वं प्रकल्प्य तत्रालङ्कारक्लृप्त्यर्थं पदद्वयमिति क्लिष्टकल्पना नोत्तिष्ठति, गौरवादैकस्वर्यपाठविरोधाच्च। अत्र हि वैदिकाः प्रथमं पदमाद्युदात्तं द्वितीयं सर्वानुदात्तं च पठन्तीति प्रसिद्धम्, न च तस्य सर्वानुदात्तत्वे पूर्वावयवत्वमन्तरेणान्यन्निमित्तमस्तीति स्वरशास्त्रविद एव विदांकुर्वन्तु। अर्णसः सेवायाः फलमाह-अर्य इति। अर्य ईश्वरो महारुद्रः उदाहृते सूक्ताद्यमन्त्रे दृष्टः। गिरिधारकरूपाः उस्राः मन्त्रसिद्धिरूपाः कामधेनवश्च सद्यः तपोजपादिकं विनैव अकस्मादाजग्मुषीः आगमनशीलाः सर्वे अस्मे अस्मान् चाकन्तु तर्पयन्तु, उभयेषु सविल्पकनिर्विकल्पकभावेषु सिद्धिभिः स्वरूपानन्देन च प्रीणयन्तु। अत्र समाधिव्युत्थानव्यक्त्यपेक्षया बहुत्वम्। आ इत्यस्यावृत्त्या सद्य आजग्मुषीरित्यस्य पदद्वयस्याप्यावृत्तिः। अनाराधितोऽपि रुद्रो मणिकर्णिकायामन्तकाले तारकब्रह्मोपादिशति, किं पुनराराधित इति तदुभयं तारकार्थिना न मोक्तव्यमित्यर्थः। यत्तु, 'वर्णोऽरणीयमपत्यम्' इति व्याख्यातं तदर्णः शब्दस्य उदकनामसु पाठादपत्यनामस्वपाठाच्च श्रुतहान्य-श्रुतकल्पनाप्रसङ्गादुपेक्ष्यम् ।। १४६ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - हमारी-तुम्हारी (अर्थात् सबकी) इन्द्रियाँ मणिकर्णिका के (पवित्र) जल का सेवन करें। (इससे प्रसन्न होकर) महारुद्र और मन्त्रसिद्धिरूपा कामधेनुयें अकस्मात् ही आकर हमें तृप्त करें तथा सविकल्पक-निर्विकल्पक भावों में सिद्धियों के द्वारा स्वरूपानन्द से हर्षित करें।। १४६ ।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह चौदहवाँ मन्त्र है। इसमें श्री रुद्र की प्रसन्नता और उसके फल का वर्णन है।

संस्कृत टीकाकार ने मन्त्र की टीका करते हुए मन्त्र में आए हुए पदों से 'मणिकर्णिका' पद की निष्पत्ति की है। जैसे पूर्वापर लोप द्वारा बनने वाले 'होरा' रूप की सिद्ध हो जाती है (अहोरात्र में से आरम्भ के अ तथा अन्त के त्र को काटकर 'होरा' पद बन जाता है) वैसे ही 'हिरण्यकर्णमणिग्रीवमर्णः' से आदि के 'हिरण्य' तथा अन्त पद ग्रीव को काटकर 'मणिकर्ण' और अब 'मणिकर्णिका' बना दिया।

टीकाकार का कहना है कि बिना यज्ञ किये ही रुद्र देशविशेष और कालविशेष में करुणापूर्वक जनसमान्य को भी तारकमन्त्र का उपदेश देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। अन्तकाल में जो मणिकर्णिका तीर्थ में पहुँच जाता है, भगवान् रुद्र उसे तारकमन्त्र देकर अमरत्व और फिर मुक्ति प्रदान करते हैं।

न स स्वो दक्षो वरुण धृतिः सा
सुरामन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उ पारे
स्वपूनश्च नेदनृतस्य प्रयोता।। १४७।।

अतः परं विग्रहधर्मैरेव स्तुवन्ति सस्व इति।। हे वरुण हे वरणीयसः दक्षः तत्सामर्थ्यं समुद्रोल्लङ्घनादि हनुमदादीनां स्वः स्वकीयं न भवति, किन्तु तवैव सा धृतिः अधिष्ठातृत्वम्। यतो ज्यायान् भवान् ईश्वरः कनीयसोऽस्मदादेर्जीवस्य उ पारे समीपेऽस्ति अतस्त्वदीयेनैव सामर्थ्येन समुद्रतरणादिकमेते कारिताः। अन्यसामर्थ्येनान्यः करोतीत्यत्र दृष्टान्तः– सुरेति।। सुरा मद्यम्, मन्युः क्रोधः, विभीदकः विभीतकः, तत्स्थक-लिः अचित्तिः, भूतप्रेताद्यावेशजन्य उन्मादः एतैराविष्टः पुरुषोऽशक्तोऽपि शक्तसाध्यं कर्म करोति तद्वदयमपीत्यर्थः। जायां संविशिनष्टि स्वप्नश्च नेति। स्वप्न इव इत् अनृतस्येव भयसुखदेस्तद्हेतोश्च प्रयोता संयोजयिता वियोजयिता च। 'यु मिश्रणामिश्रणयोः'-इत्यस्य रूपम्। यः स्वप्नवत् कृत्स्नं प्रपञ्चं सृजति संहरति च तस्य अस्मदुपबृंहणं कियदिति भावः।। १४७।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे वरुण! (हनुमान् आदि ने जो समुद्रलङ्घन किया) वह अपना (उनका) सामर्थ्य न था अपितु वह आपका अधिष्ठातृत्व था (और उसके कारण ही वह सम्भव हुआ), क्योंकि हम छोटों से बड़े आप सामर्थ्यशाली हम जीवों के समीप हैं, अतः समुद्रतरणादिक कार्यों को आपके सामर्थ्य ने ही कराया। जैसे मद्य, क्रोध, जुआ और उन्मादादि से आविष्ट पुरुष अशक्त होते हुए भी शक्तसाध्य कर्म कर डालते हैं। (ईश्वर= आप जैसे ऐश्वर्यशाली) स्वप्न की तरह सुख-दुःख के प्रयोजक-वियोजक हैं अर्थात् स्वप्नवत् समस्त जगत्प्रपञ्च के कर्ता-संहर्ता हैं और हम तो उसमें निमित्त मात्र होकर उसका उपबृंहण करते हैं।। १४७।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के सातवें मण्डल के छियासीवें सूक्त का छठाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में अन्य देवविग्रह (वरुण) के व्याज से श्रीराम की स्तुति करते हुए उनके सामर्थ्य का बखान किया गया है।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुद्रं कुयवं न्यस्मा अरुन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्।। १४८।।

लोकस्थोऽपि अलौकिकं कर्म करोषीत्याह-त्वं हेति।। हे इन्द्र त्वं ह प्रसिद्धं त्यत् इतरेषां परोक्षं कुत्सं ऋषिम् आवः रक्षितवानसि कदा समर्ये कालेन सह स्पर्द्धायां सत्याम्। तन्वा मृतस्य पुत्रस्य शरीरेण सहागतस्य पितुर्वाक्यं शुश्रूषमाणः मनसि कुर्वन् मृतं पुत्रमानीय द्वारि शोचतो विप्रस्य वाक्यं श्रुत्वा यममपि जित्वा तत्पुत्रमानीतवानसीत्यर्थः।

कथं मृतमपि रक्षितवानित्यत आह-दासमिति। दासं शूद्रं शूद्रस्यायोग्येन तपसा शुष्यन्तं कुयवं कुत्सितेन स्वस्य दोषहेतुना मुनिधर्मेण युज्यते स्वधर्मेण च सेवया वियुज्यत इति कुयवम्, अस्मै आर्जुनेयाय अर्जुन्याः पुत्राय कुत्साय तज्जीवनार्थं न्यरन्धयः नितरां हिंसितवानसि। शिक्षन् शिक्षयन् धर्म मर्यादाम् ।। १४८ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - हे राम! यह प्रसिद्ध है कि कुत्स ऋषि की तुमनें रक्षा की। मृतपुत्र के शरीर के साथ द्वार पर आये विप्र के शोक वचन को सुनकर, काल को जीतकर तुमने उसका पुत्र ला दिया (जीवित कर दिया) और इसके कारण रूप शूद्र दास को अनुचित तपस्या से हटाया तथा आर्जुनेय के लिए उस शूद्र का वध करके उसे धर्ममर्यादा की शिक्षा दी ।। १४८ ।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के सातवें मण्डल के उन्नीसवें सूक्त का दूसरा (मन्त्र) है। इस मन्त्र में उस वृत्तान्त को संकेतित किया गया है जिसमें एक शूद्र के (शूद्र का नाम शम्बूक था) तपस्या के कारण ब्राह्मणपुत्र की अकाल मृत्यु हो गयी। वह ब्राह्मण अपने पुत्र के शव को राजद्वार पर रखकर विलाप करने लगा तथा धर्म की दुहाई देकर राम को धिक्कारने लगा। राम ने पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि उनके राज्य में शम्बूक नामक एक शूद्र अनुचित तपश्चरण कर रहा है। वह नीचे अग्नि जलाकर, वृक्ष की डाल से उलटा लटक कर धूम्रपान करते हुए तपस्या कर रहा है। राम ने वर्णधर्म के विरुद्ध इस अनुचित रीति से तप करने के लिए शम्बूक का वध (दण्डस्वरूप) किया। इससे ब्राह्मणपुत्र जीवित हो गया और धर्ममर्यादा की सुरक्षा हुई।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विद्रमः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः ।। १४९ ।।

एवं रामभद्रं स्तुत्वा हनुमता सह जाम्बवन्तं स्तुवन्ति-यत्रौषधीरिति ।। यत्र हनुमति जाम्बवति वा द्रोणाचलस्यानेतरि सर्वौषधीस्वरूपगुणाभिज्ञे वा निमित्तभूते सति ओषधीः सर्वाः ओषधयः सशल्ययो राघवयोर्विशल्यकरणार्थाः समग्मत सङ्गताः। तत्र दृष्टान्तः- यथा राजानः समितौ सभायां सङ्गच्छन्ते, तद्वत् समिताविव स विद्रमो व्यापकः सर्वौषधीनामानेता प्रयोक्ता वा भिषक् रोगक्षयकृदित्युच्यते, स एव रक्षोहा रक्षोहन्तॄणां रामादीनां जीवनप्रदानात् अमीवचातनः अमीवान् दुष्टान् हन्तुं चातयते प्रार्थयते स तथा दुष्टवधकाम इत्यर्थः ।। १४९ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - जैसे राजागण सभा में जाते हैं वैसे ही (हनुमान्) द्रोणाचल से औषधि लेकर जहाँ आये, वहाँ उस औषधि के प्रयोक्ता (जाम्बवान्) जानकार वैद्य कहे गये हैं और उन्होंने न केवल राघवों (राम-लक्ष्मण) को उस औषधि के प्रयोग से विशल्य किया अपितु वे राक्षसों का संहार करने वाले और अन्य रोगों (अथवा दुष्टों) का शमन करने वाले भी कहे जाते हैं ।। १४९ ।।

टिप्पणी – प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सत्तानबेवें सूक्त का छठाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र में रामकथा का वह प्रसङ्ग सङ्केतित है जिसमें युद्ध में लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर हनुमान् द्रोणाचण पर जाकर औषधि ले आते हैं और उसके प्रयोग से लक्ष्मण स्वस्थ हों जाते हैं। टीकाकार ने जाम्बवान् को उस औषधि का प्रयोक्ता कहा है जबकि रामकथा में औषधि के प्रयोक्ता वैद्य सुषेण कहे गए हैं।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वर-
नृतस्य योना समरन्त नाभयः।
त्रीन् स मूर्ध्नो असुरश्चक्रा आरभे
सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्।। १५०।।

अथ सीतादीन् स्तुवन्ति–स्रक्वे इत्यादिना नवर्चेन सूक्तेन।। आङ्गिरसः पवित्र-ऋषिः पवमानसोमो देवता सोम इति विष्णोरेव नाम- 'हविरातिथ्यं निरूप्यते सोमे राजन्यागते' इत्युपक्रम्य 'वैष्णवो भवति विष्णुर्वै यज्ञस्तस्मा एतद्धविरातिथ्यं निरूप्यते' इत्युपसंहरन् यथा दध्यादेर्द्रप्सः अत्यम्लतया बुद्बुदाकारेण उपर्यागतो भागः तद्वदुद्गीतस्य द्रप्सस्य रावणोधमतो लोकान् तापयतः कर्मणि षष्ठी। तं प्रति स्रक्वः सरणम् अभिसारः तस्मिन् कर्तव्ये सति समस्वरन् सम्यग् जयशब्दमकुर्वन् योद्धारः। ततश्च ऋतस्य योना योनौ ऋतस्य योनिरिति पदं जलनामसु प्रविष्टम् भाष्ये तु यज्ञस्योत्पत्तिस्थाने इति व्यााख्यातम्। नाभयः जलस्य गर्भे गताः 'अद्भ्यः पृथिवी' इति श्रुतेर्जलादुत्पन्ना वा भूमयः कविना दृष्टरूपाः समरन्त सम्यग् मज्जनं विना अगच्छन्त। यस्य स्रक्वं नाभयः जलेऽतरन्त, सः असुरो रावणख्यः त्रीन् 'कपिञ्जलानालभेत' इतिवत् बहुत्वम्। प्रातिपदिकार्थस्य त्रित्वस्य त्रित्वे पर्यवस्यति, तेन नव संख्यान् मूर्ध्नो मस्तकान् चक्रे छिन्नवान्, कदा आरभे आरभ्यत् इत्यारभो यज्ञस्तस्मिन्। रावणेन हि नव शिरांसि वह्नौ हुतानीत्युपाख्यायते अतस्तस्य वधार्थं महानेव यत्न आस्थेय इत्यर्थः। जले दृषत्सङ्गस्य किं फलमत आह-सत्यस्येति। सत्यस्य धर्मस्य सम्बन्धिन्यो नाव इव नावः तारकाः शिलाः सुकृतं शोभनकर्माणं रामं ससहायम् अपीपरन् अपारयन् समुद्रस्य पारं प्रापितवत्य इत्यर्थः। यथा-सत्यस्य बलेनाग्नेये दिव्ये तत्परशुग्रहणादौ वह्निः शीततां याति, एवं सीतायाः पातिव्रत्यधर्ममाहात्म्यात् तद्बन्धच्छेदार्थं शिला अपि समुद्रे तीर्णा इत्यर्थः। 'धर्मनावः शिला' इति ब्रह्मवैवर्ते सप्तमाध्याये तृतीयांशे दृष्टम्-

'इत्युक्ता सा शिला विप्रैः पातिता तज्जले शुभे।
चक्रुः शिवकथां पुण्यां काशिवासिजनैर्वृताः।।
क्षणान्तरे गौस्तृषिता सवत्सा समुपागमत्।
तयापीतं जलं तृप्ता साभवच्छृणु पार्वति।।

सा शिला मुनिमुख्यानां प्रभावाज्जलमध्यतः।
जलोपर्यभवच्छीघ्रं पश्यतां सर्वदेहिनाम् ।।
यथा तुम्बीफलं शुष्कं गच्छतीतस्ततो जले।
तथा लघुतरा जाता तस्या धर्मस्य गौरवम् ।।' इति ।। १५० ।।

हिन्दीभाषानुवाद - जैसे दही आदि के खट्टेपन के कारण बुद्बुदाकार भाग ऊपर आ जाता है वैसे ही लोकों को सन्तप्त करने वाले रावण की जयजयकार (राक्षसगण) करते थे। जल से उत्पन्न जिसकी भूमियाँ जल में विना डूबे तैरती हैं, उस असुर रावण ने अपने नौ सिर यज्ञ में हवन कर दिए। सत्य की नावों अर्थात् धर्मशिलाओं ने सुकृत (शोभन कर्म वाले) राम को समुद्र के पार पहुँचाया ।। १५० ।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र, ऋग्वेद के नौवें मण्डल के तिहत्तरवें सूक्त का पहला (मन्त्र) है। इस मन्त्र में रामकथा के पूर्ववृत्तों की अनुवृत्ति की गयी है। यथा-रावण द्वारा लोकों का सन्त्रास, उसकी जयजयकार, उसका अपने शिरों को अग्नि में हवन करना और तैरती हुई शिलाओं द्वारा राम का सागर-सन्तरण।

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत
सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीवियन्।
मधोर्धा[illegible]न्तो अर्कमित्-
प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ।। १५१ ।।

वस्वादिरूपेण सर्वान् वानरान् स्तुवन्ति-सम्यगिति ।। सम्यञ्चः सुगतयः सम्यक् चारु अहेषत अवर्धन्त, महिषा महान्तो वानराः त एव सिन्धोः समुद्रस्य ऊर्मौ एकदेशे शतयोजनविस्तीर्णे वेनाः शोभमानाः अधि उपरि अवीवियन् क्षिप्तवन्तः, सत्यस्य नावः शिलारूपा इत्यनुकृष्यते, मधोः आदित्यस्य-'असौ वाा आदित्यो यदेतन्मधु' इति छान्दोग्यश्रुतेः। धाराभिः राहिताध[illegible]भिः वसवो, रुद्रा, आदित्या, विश्वेदेवा, मरुत इति पञ्चगणाः अर्कम् अर्कतुल्यमात्मानमेव जनयन्तः उपासनाबलेनाविष्कुर्वन्तः, इत् एव इन्द्रस्य रामस्य प्रियां तन्वं तनुं सीताम् अवीवृधन् वर्धितवन्तः, रावणागारे निरुद्धां सीतां जयशब्दै-राह्लादयन्नित्यर्थः ।। १५१ ।।

हिन्दीभाषानुवाद - शोभन गति और सुन्दर (कीर्ति या महिमा की) वृद्धि वाले महान् वानरों ने समुद्र की लहरों के ऊपर शिलाओं का सुन्दर सेतु बना डाला। आदित्य की रोहित आदि पाँच धाराओं से वसु, रुद्र आदित्य, विश्वेदेवे और मरुत, इन पाँच गणों को सूर्य के समान अपने को ही उत्पन्न करते हुए, (रावण के कारागार में निरुद्ध) सीता (राम की प्रिय पत्नी) को जयकारों से आह्लादित किया ।। १५१ ।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह दूसरा मन्त्र (९.७३.२) है। इस मन्त्र में भी पूर्ववृत्त का अनुकथन है। राम के सहायक सभी वानर देवताओं के ही अवतार थे। उन्होंने समुद्र पर रामकृपा से सेतु बाँधा और सीता को आह्लादित किया। मन्त्र की तृतीय पङ्क्ति का यह भी अर्थ हो सकता है- ''उन महान् वानरों ने कानों के लिए मधुतुल्य (प्रिय) वाग्धाराओं से (वाक्य समूहों का निरन्तर उच्चारण करते हुए राम की जय, रावण को जीतेंगे, सीता को प्राप्त करेंगे इत्यादि) अर्क (=सूर्य=सूर्यवंशी राम) को पुनर्जीवन (हृदय में दृढ़ आशा और हर्ष का सञ्चार) प्रदान करते हुए।''

पवित्रवन्तः परिवाचमासते
पितैषां प्रत्नो अभिरक्षति व्रतम्।
महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे
धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम्।। १५२।।

अत्रावीवियन्नित्येतद्विवृणोति-पवित्रवन्त इति।। यथा पवित्रवन्तः अध्वर्यवः वाचं पर्यासते विध्यर्थं कृष्णमनुतिष्ठन्ति, एषां पिता भृतिदानेन पालयिता यजमानः व्रतं यज्ञं फलम् अभिरक्षति सर्वस्वीकृत्यास्ते, एवं यत्प्रयुक्ता वानराः सेतुं चक्रुः। स महो महान् वरुणे वरणीयः रामः समुद्रं तिरोदधे शिलाभिराच्छादितवान्। धीराश्च वानराः धरुणेषु भूमिधरणसमर्थेषु धरणेषु पर्वतेषु आरभितुं स्पर्शमेव शेकुः कर्तुमिति शेषः। न तु तान् वोढुं सलिले वा तारयितुं शेकुरिति भावः। यथोक्तमभियुक्तैः-

''ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परान्स्ते प्रस्तरा दुस्तरे
वार्द्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् सन्तारयन्ते च वै।
नैते ग्रावगुणा वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः
श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमारम्भः समुज्जृम्भते।।'' १५२।।

हिन्दीभाषानुवाद - जिस प्रकार अध्वर्यु वाणी के अर्थानुसार कर्म (यज्ञसम्पादन) करते हैं और यजमान प्रयत्नपूर्वक अपने व्रत की रक्षा करता है (अर्थात् यज्ञ फल प्राप्त करता है) उसी प्रकार उन महान् वरणीय (राम) ने शिलाओं से समुद्र ढँक दिया, वे बुद्धिमान् वानर तो केवल उन पर्वतखण्डों का स्पर्श करने में ही समर्थ थे (स्पर्श ही कर सके)।। १५२।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह तीसरा मन्त्र है। इस मन्त्र में राम की अचिन्त्य महिमा का वर्णन किया गया है। जैसे अध्वर्यु यज्ञकर्म कराता है किन्तु यज्ञफल का अधिकारी यजमान होता है, वैसे ही वन्दरों ने शिलाखण्डों का स्पर्श ही किया, वे शिलाखण्ड तो श्रीराम की महिमा से ही जल में तैर सके। वानरों में न तो उन शिलाखण्डों को लाने का सामर्थ्य था और न ही जल पर तैराने का-यह सब तो राम के प्रताप से सम्भव हुआ। वानर तो केवल

स्पर्श ही कर सके। वस्तुतः राम ने समुद्र को शिलाओं से पाट दिया। मन्त्र के इस भावार्थ से युक्त एक श्लोक को टीकाकार ने उदाहृत किया है। श्लोक का अर्थ इस प्रकार है-'जो स्वयं डूबते और दूसरों को डुबोते हैं वे ही पाषाण समुद्र में तैर रहे हैं और वानर योद्धाओं को पार पहुँचा रहे हैं। ये न तो पत्थरों के गुण हैं, न समुद्र के गुण हैं और न ही वानरों के गुण हैं, यह तो श्रीराम की प्रतापमहिमा सर्वतोभावेन समुज्जृम्भित हो रही है।' यह श्लोक हनुमन्नाटक (७.१६) से समुद्धृत है।

सहस्रधारे यत्ते समस्वरन्दिवो
नाके मधुजिह्वा असश्वतः।
अस्य स्पशा न निमिषन्ति भूर्णयः
पदे पदे पाशिनः सन्ति सेतवः।। १५३।।

अथ प्रतिष्ठास्रवः सर्वत्र निग्रहानुग्रहकर्त्ता त्वमेवासि अतः स्वस्थानस्थाने वास्मान् पाहीत्याशयेनाहुः -सहस्रधारे इति।। सहस्रधारे सोमे अभिषवणीये निमित्ते ते प्रसिद्धाः देवर्षयः समस्वरन् अवश्यं सोमः सोतव्य इति शब्दमकुर्वन्। कुत्र दिवो नाके स्वर्गे कर्मभूमौ मधुजिह्वाः मधुरभाषिणो हितैषिण इति यावत् असश्वतः सोमाभिषवणं विना गतिहीनान् त्रैवर्णिकान् प्रति समस्वरन्निति योजना। फलितमाह- अस्येति। अस्य सोमाभिमानिनो विष्णोः समुद्रतीरे धातुः रामस्य स्पशाश्चाराः पदे पदे सन्ति न ते निमिषन्ति अत्यन्तावहिताः सन्तीत्यर्थः। अनिमेषणोपलक्षिता देवा एवास्य चारास्ते च भूर्णयः बहुप्रदाः पाशिनः पाशवन्तश्च सेतवो बन्धनकर्तारश्च त्वमन्तर्यामी त्वत्प्रेरिताश्च देवाः सर्वत्रास्मान् पान्त्वित्यर्थः। इतः परः सूक्तशेषः प्रागेवोपोद्घाते व्याख्यातः।।१५३।।

हिन्दीभाषानुवाद - (स्वर्ग में) सहस्रों धाराओं में सोम का अभिषवण करने के लिए देवर्षि-गण स्वर भरते हैं (अभीष्ट मन्त्र का उच्चारण करते हैं) और कर्मभूमि में मधुरभाषी (सत्य-प्रिय कहने वाले) हितैषी स्वर भरते हैं अर्थात् कर्म के प्रति उत्साहित करते हैं, वे तुम्हारे ही अनुग्रह में हैं। इस सोमाभिमानी विष्णु अर्थात् श्रीराम के चर (सेवक) अत्यन्त सावधान हैं, वहुफलप्रद हैं और पाशयुक्त होकर बन्धन करने वाले भी हैं अर्थात् आप अन्तर्यामी हैं और आप से प्रेरित देवता सर्वत्र हमारी रक्षा करें।। १५३।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह चौथा मन्त्र है। इसमें भी श्रीराम का गुणानुवाद है।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१ स्परि।
देवां उपप्रैत्सप्तभिः परामार्त्ताण्डमास्यत्।। १५४।।

एवं स्तुत्वा गतेषु मुनिषु शेषमवतारकृत्यं 'वम्रस्य मन्ये मिथुनाविवक्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन्' इति उपोद्घाते एव किञ्चिद्व्याख्यातं ततोऽप्यवशिष्टमृषिराह

- अष्टाविति।। यथा लक्ष्मणादयो रामादनन्याः एवं तद्भार्या अपि सीतातोऽनन्याः, अतस्तासां पुत्राः अदितिशब्दितायाः सीताया एव पुत्राः ते चाष्टौ कुशलवादयः ते चादितेः पृथिव्यास्तन्वः शरीरस्य परि उपरि जाताः राजान इति शेषः। रामादीनां चतुर्णामष्टौ पुत्रा अष्टसु स्थानेषु राजानो जाता इति रामयणादौ स्पष्टम्। सा च जगन्माता देवान् द्युलोकं सप्तभिः पुत्रैः सह उपप्रैत् उपगता, ते च गार्हस्थ्यवन्तश्चत्वारो वर्णास्त्रय आश्रमाश्च तांश्च परा मार्त्तांडं सूर्यमण्डलात् परस्तात् ब्रह्मलोके आस्यत् क्षिप्तवती।। १५४।।

हिन्दीभाषानुवाद - (जैसे लक्ष्मण आदि राम से अनन्य हैं वैसे ही उनकी पत्नियाँ भी सीता से अनन्य हैं अतः उन चारों भाइयों के प्रत्येक के, दो दो पुत्र, इस प्रकार) अदिति अर्थात् सीता के जो आठ पुत्र उत्पन्न हुए वे पृथिवी पर आठ स्थानों के राजा हुए। वह जगन्माता अदितिरूपा सीता सात पुत्रों के साथ द्युलोक में गयीं और उन चारों को सूर्यमण्डल से परे ब्रह्मलोक में पहुँचा दिया।। १५४।।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के बहत्तरवें सूक्त का आठवाँ (मन्त्र) है। इसमें रामादि भाइयों के पुत्रों और उन चारों भाइयों सहित सीतादि भार्याओं की स्थिति का सङ्केत है।

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुपप्रैत्पूर्वं युगं प्रजायै मृत्यवे।
त्वत्पुनर्मार्त्तण्डमाभरत।।१५५।।

पूर्वं युगं ब्रह्मलोकं मृत्यवे मृत्युसम्बन्धिन्यै प्रजायै मर्त्यान् स्रष्टुं त्वत् एकं स्वांशमादाय पुनर्मार्त्तण्डम् आभरत् आप्यायितवती, ततो वृष्टिद्वारा पुनर्भूमौ प्रजावृद्धिं कृतवतीत्यर्थः।।१५५।।

हिन्दीभाषानुवाद - पूर्व युग में उन सात पुत्रों के साथ अदिति रूपी सीता मर्त्य प्राणियों की सृष्टि के लिए ब्रह्मलोक चली गयी और उनमें से एक अंश लेकर सूर्य को आप्यायित किया। तब वृष्टि द्वारा भूमि पर प्रजाओं की वृद्धि हुई।।१५५।।

टिप्पणी - पूर्वोक्त सूक्त का यह नवाँ मन्त्र (१०.७२.९) है। इसमें भी पूर्वमन्त्र का ही अर्थानुवाद है।

भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात्।
भूयास्म पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यताम्।।१५६।।

इतः प्रागेव सीतालक्ष्मणौ स्वं विग्रहमुपसञ्जहृतुरित्याह - भूमिरिति।। भूमिः सीता भूमिम् अगात् प्रविवेश, माताभूमेस्तोलयिता शिरसा धर्ता शेषरूपी लक्ष्मणः मातरं

स्वप्रकृतिमनन्तम् अप्यगात् अपि गतः। वयं च पुत्रैः पशुभिश्च सङ्गता भूयास्म, यो नो द्वेष्टि रजकादिर्निन्दको वा मृत्युर्वा स भिद्यतां नश्यतु।।१५६।।

हिन्दीभाषानुवाद - अन्ततः सीता भूप्रविष्ट हो गयीं और माता भूमि को शिर से धारण करने वाले लक्ष्मण भी (शेषनाग भी) अपनी प्रकृति अनन्त में लीन हो गए। हम अपने पुत्रों और पशुओं के साथ (सुखपूर्वक) रहें तथा जो हमसे द्वेष करे वह नष्ट हो जाय।।१५६।।

टिप्पणी - इस मन्त्र के मूलस्रोत का अनुसन्धान करणीय है।

इस मन्त्र के साथ ही 'मन्त्ररामायण' का उपसंहार आरम्भ होता है। इसमें सीता और लक्ष्मण के अपनी प्रकृति में लीन होने का वर्णन है, साथ ही 'मन्त्ररामायण' का अध्येता श्रीरामभक्त स्वयं के प्रति मङ्गलकामना करने के द्वारा प्राणिमात्र के मङ्गल की कामना करता है-

नावान क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः
स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वा-
वरेऽदधादापरेषु।। १५७।।

उपाधिपक्षपाती मायावी मायाकृतं सर्वमनुचकारेत्याह - नावानेति।। नावान नौकया यथा क्षोदो महारुद्र आक्राम्यते, एवं स्वस्तिभिः कल्याणैः पुष्पकादिभिः पृथिव्याः प्रदिशः प्रदेशान् आक्रम्य स्वां प्रजां विश्वा सर्वाणि दुर्गाणि संकटानि अतिपारयित्वा बृहदुक्थो महाकार्मा रामः महित्वा स्वमाहात्म्येन सन्ततिरूपां प्रजाम् अवरेषु भूलोकेषु जनरूपां प्रजां परेषु ब्रह्मलोकेषु य अदधात्। एतेन पौरजनपदानात्मलोकं प्रापयन् महाकारुणिको रामभद्र एव शरणीकरणीय इति दर्शितम्।। १५७।।

हिन्दीभाषानुवाद - जैसे नाव से नदी पार की जाती है, वैसे ही मङ्गलमय कृत्यों से पृथिवी के सम्पूर्ण प्रदेशों को स्वायत्त करके अपनी प्रजा की सभी सङ्कटों से रक्षा करके महान् कर्मशील श्रीराम अपने माहात्म्य से अपनी सन्तति-रूप प्रजा को तथा पृथिवी की जनरूप प्रजा को ब्रह्मलोक में ले गए।

टिप्पणी - प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दसवें मण्डल के छप्पनवें सूक्त का सातवाँ (मन्त्र) है। इस मन्त्र द्वारा प्रजा सहित श्रीराम का अपने धाम में जाने का निरूपण करके रामकथा अथ च मन्त्ररामायण का उपसंहार किया गया है। मन्त्र का अभिप्राय है कि महाकारुणिक श्रीराम की ही शरण में जाना श्रेयस्कर है।। शमस्तु।।

लक्ष्मणार्यपरतां गिरामिमां लक्ष्मणार्यपुरुषेण दर्शिताम् ।
साङ्गवेदपदवाक्यमानवित् कोऽपि वीक्ष्य सुमतिः प्रमोदताम् ।। १ ।।

श्रीरामरक्षाव्याख्यानं मन्त्ररामायणाभिधम् ।
व्याख्यातं राघवस्तेन प्रीयतां करुणानिधिः ।। २ ।।

दर्शितः सीतयाद्धायं वेदारण्ये निरध्वनि ।
सन्तो विपुलयन्त्वेनं यास्कभाष्यानुयायिनः ।। ३ ।।

।। इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणमर्यादाधुरन्धरचतुर्धरवंशावतंसगोविन्दसूरिसूनोः श्री नीलकण्ठस्य कृतिः स्वोद्धृतमन्त्ररामायणव्याख्या मन्त्ररहस्य-प्रकाशिकाख्या समाप्तिमगमत् ।।

।। डॉ. प्रभुनाथद्विवेदिकृत श्रीमन्त्ररामायण का सटिप्पण हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ।।

।। मन्त्रानुक्रम ।।